वनस्पतियों के स्वलेख

डॉ० रामदेव मिश्र

हिन्दी
समिति

श्री जगदीशचन्द्र वसु

जन्म : ३० नवम्बर, १८५८ ई० ।

जन्म-स्थान : ढाका जिले के विक्रमपुर परगने में रारीखल गाँव ।

शिक्षा : प्रारम्भिक शिक्षा ग्रामीण पाठशाला में किसानों और मछुओं के बच्चों के साथ । सेण्ट जेवियर कालेज, कलकत्ता से बी०ए० की उपाधि प्राप्त की । क्राइस्ट चर्च कालेज (कैम्ब्रिज) से वनस्पति शास्त्र में बी०ए० की उपाधि और फिर लन्दन विश्वविद्यालय से बी०एस-सी० की उपाधि ।

कार्य-क्षेत्र : कलकत्ते के प्रेसीडेन्सी कालेज में भौतिक विज्ञान के अध्यापक-पद पर कार्य करते हुए अनेक शोधपूर्ण लेख लिखे जो देश-विदेश की प्रतिष्ठित वैज्ञानिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए । उनके लेखों से प्रभावित होकर इंग्लैण्ड की रायल सोसायटी ने अनुसंधान कार्य के लिए उन्हें आर्थिक सहायता दी । बंगाल की सरकार ने भी आर्थिक सुविधा प्रदान की । लंदन विश्वविद्यालय ने उन्हें 'डाक्टर ऑफ साइंस' की उपाधि से सम्मानित किया ।

उपलब्धियाँ : बेतार के तार का आविष्कार किया और सिद्ध किया कि वनस्पतियों में भी जीवन होता है ।

निधन : नवम्बर, १९३७ ई० ।

हिन्दी समिति

हिन्दी समिति ग्रन्थमाला :: २२१

वनस्पतियों के स्वलेख

मूल लेखक

आचार्य जगदीशचन्द्र वसु

अनुवादक

डॉ० रामदेव मिश्र

[वनस्पति विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय]

उत्तर प्रदेश शासन

'राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन'

महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ

वनस्पतियों के स्वलेख

• प्रथम संस्करण : १९७४

• मूल्य
साढ़े आठ रुपये

• मुद्रक
सेण्ट्रल प्रेस, लखनऊ

प्रकाशक की ओर से

● ● ●

खेतों, बाग-बगीचों और जलाशयों में उगने वाले विविध प्रकार के पेड़-पौधे अपनी मनोमुग्धकारी हरितिमा और चित्ताकर्षक रंग-बिरंगे फूलों से जहाँ धरती को अतुलनीय और अप्रतिम सौन्दर्य प्रदान करते रहते हैं, वहीं वे मनुष्य के नित्यप्रति के जीवन में बड़े ही उपयोगी और जागरूक सिद्ध होते आये हैं। उनके सहज साहचर्य में मनुष्य असीमित सुख और सन्तोष का अनुभव करता आया है। किन्तु अपने इन गतिहीन मूक साथियों के सम्बन्ध में उसके सोचने और समझने के दृष्टिकोण में वस्तुतः एक प्रकार की जड़वत् उदासीनता ही रही है। कारण, यद्यपि पेड़-पौधों के उत्पत्ति, वृद्धि और मृत्यु-सम्बन्धी बाह्य व्यापारों को मनुष्य की आँखें देखने में समर्थ रही हैं, तथापि आँधी और धूप, जाड़ा और गर्मी, वृष्टि और अनावृष्टि से पड़ने वाले उनके आन्तरिक प्रभावों को देखने और समझने में वह सदैव ही असमर्थ रहा है।

वैज्ञानिक अनुसन्धानों और सूक्ष्म संपरीक्षणों से सिद्ध हो चुका है कि धरती पर फैली हुई विविध वनस्पतियों में जीवन की अजस्र धारा उसी प्रकार प्रवहमान है जिस प्रकार अन्य गतिशील प्राणियों में। अन्तर केवल इतना ही है कि विभिन्न आघातों और प्रतिघातों के प्रति प्राणियों में होने वाली प्रतिक्रियाओं से सहज तादात्म्य स्थापित किया जा सकता है, जब कि वनस्पति के भीतर ये प्रतिक्रियाएँ अगोचर रूप से घटित होती रहती हैं।

भारत के महान् वैज्ञानिक आचार्य जगदीशचन्द्र वसु ने सिद्ध किया है कि वनस्पति भी जीवन से पूर्ण अनुप्राणित है। वह भी अन्य प्राणियों की भाँति सोती और जागती है; अपने ऊपर पड़ने वाले आघातों का अनुभव करती है; शुद्ध, स्वच्छ और सरस पर्यावरण में स्वस्थ और प्रसन्नचित्त रहती है तथा दूषित और अस्वास्थ्यकर वातावरण में रोगग्रस्त होकर मृतप्राय हो जाती है। विष और अन्य सभी

प्रकार के निश्चेतकों का प्रभाव उस पर वैसा ही पड़ता है जैसा मनुष्य अथवा अन्य जीवधारियों पर। सूर्योदय और सूर्यास्त, दिन और रात तथा समस्त प्रकृति-व्यापारों को समझने और जानने के लिए वह सक्षम है। संक्षेप में वनस्पति सचेतन, सप्राण और संवेदनशील है।

अपनी इन मान्यताओं और तथ्यों को सिद्ध करने के लिए वसु महोदय ने अनेक जटिल और सूक्ष्म वैज्ञानिक यंत्रों और उपकरणों का आविष्कार किया और उनके माध्यम से वनस्पति की चेतनशीलता और संवेदनशीलता को प्रदर्शित कर संसार को न केवल आश्चर्य में डाल दिया अपितु वनस्पति के प्रति मनुष्य के दृष्टि-कोण में आमूल परिवर्तन कर दिया। उनके इन अनुसंधानों से वनस्पति-विज्ञान को नवीन दिशा मिली।

श्री बोस की ये सभी महान् उपलब्धियाँ और एतद्विषयक उनके प्रयोग और उनके प्रतिफल 'प्लाण्ट आटोग्राफ्स ऐण्ड देयर रिवीलेशन्स' नामक उनकी कृति में संकलित हैं। उनकी इसी कृति का हिन्दी रूपान्तर "वनस्पतियों के स्वलेख" शीर्षक से प्रस्तुत किया जा रहा है। इसमें श्री वसु के यंत्रों और उपकरणों के चित्रों और रेखाचित्रों को अविकल रूप से ज्यों-का-त्यों उद्धृत किया गया है। इसका हिन्दी अनुवाद काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध प्राध्यापक डाक्टर रामदेव मिश्र ने प्रस्तुत किया है।

पुस्तक की भाषा सँवारने और उसे इस रूप में प्रस्तुत करने का कार्य प्रमुखतः हमारी हिन्दी समिति के प्रधान सम्पादक श्री रमाकान्त श्रीवास्तव ने किया है। मैं उन्हें तथा सेण्ट्रल प्रेस के व्यवस्था विभाग को एतदर्थ धन्यवाद देता हूँ।

मुझे विश्वास है, श्री जगदीशचन्द्र वसु की इस प्रसिद्ध कृति का यह हिन्दी रूपान्तर लोकप्रिय होगा और हमारे पाठक इसके माध्यम से वसुधा के आँगन में सुविस्तृत वनस्पतियों की मूक कहानी के प्रति यथेष्ट अभिरुचि प्रदर्शित करेंगे।

(अक्षर)

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन
लखनऊ
कार्तिक पूर्णिमा, २०३० वि०

सचिव, हिन्दी समिति
उत्तर प्रदेश शासन

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक में 'बोस संस्थान' में किये गये अनुसन्धानों का एक सुसम्बद्ध और जनसुलभ विवरण प्रस्तुत किया गया है। जैसा कि परिशिष्ट में स्पष्ट है, इसका ध्येय ज्ञान की वृद्धि को यथासम्भव सर्वसाधारण में अधिकाधिक प्रसारित करना है।

'भौतिकी' (Physics) और शरीर-विज्ञान (Physiology) के सीमा-प्रदेश में अन्वेषण करते हुए, 'सजीव' और 'निर्जीव' प्रदेश के बीच की सीमा-रेखाओं को लुप्त होते और उनके बीच संस्पर्श-बिन्दुओं को उभरते देखकर मैं विस्मित हो गया। धातुएँ उत्तेजना से प्रतिचारित होती हैं, उन्हें थकावट होती है, वे कुछ औषधियों द्वारा उत्तेजित होती हैं और विष द्वारा नष्ट हो जाती हैं।

अजैव (Inorganic) पदार्थों और प्राणि-जीवन के बीच वनस्पतियों के मूक जीवन का एक बृहत् विस्तार है। अन्वेषण-कर्ताओं को पग-पग पर जो कठिनाई होती है, उसका कारण है जीवन-क्रिया की अन्योन्य प्रतिक्रिया, जो वृक्ष के अन्तःस्थ प्रकाशहीन निम्न तलों में होती है और जो हमारी दृष्टि से परे है। उसके जीवन के जटिल विन्यास को स्पष्ट करने के लिए जीवन की लघुतम इकाई 'जीवन-अणु' तक पहुँचना और उसके जीवन-स्पन्दनों का अभिलेखन करना आवश्यक है। अणुवीक्षण यन्त्र की दृष्टि जिस सीमा पर जाकर रुक जाती है, उसके बाद भी अदृश्य के क्षेत्र में अनुसन्धान करना शेष रह जाता है।

मैंने मूक वनस्पति द्वारा उसकी आत्मकथा लिखवाकर उसे अपने गुप्त जीवन और अनुभवों का सबसे अधिक प्रभावकारी वृत्त-लेख बनाने में सफलता पायी है। इस प्रकार के स्वरचित अभिलेख यह सिद्ध करते हैं कि उच्चतम प्राणी में भी ऐसी कोई जीवन-प्रतिक्रिया नहीं है जिसका वनस्पति-जीवन में पूर्वाभास न हो।

मैं अपने पाठकों को उसी क्रम से उन आश्चर्यों से परिचित कराऊँगा जिस क्रम से मेरा उनसे परिचय हुआ है। केवल असाधारण संवेदनशीलता वाले कृत्रिम अंगों (यंत्रों) द्वारा ही अदृश्यों के इस प्रदेश में अनुसन्धान किया जा सकता है। सजातीय दृश्य पदार्थों को विभाजित करने वाली सीमा इसमें लुप्त होती देखी जा सकेगी और वनस्पति तथा प्राणिवर्ग एक ही जीवन-सागर के बहुरूपी एकक दिखाई पड़ेंगे। सत्य के इस दर्शन में वस्तुओं का अन्तिम रहस्य किसी भी रूप में घटेगा नहीं, वरन् गहनतम होता जायगा। यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि अपनी इन्द्रियों की सीमितता तथा अपरिष्कृतता से सब ओर से घिरा रहने पर भी मानव अपरिचित सागरों में साहसिक यात्राओं के लिए एक विचार-तरी का निर्माण कर सका। अपनी इस अन्वेषण-यात्रा में उसे कभी-कभी उस अकल्पित की एक झलक मिल जाती है जो अब तक उसके लिए अदृश्य रहा था, यह दृश्य उसकी सब आत्मनिर्भरता को, उस सारे व्यवधान को जो उसे विश्व के आर-पार धकड़ते हुए महान् स्पन्दन से अनभिज्ञ रखे हुए था, नष्ट कर देता है। जो आनन्द मेरे जीवन में उठा है, मैं अपने पाठकों को भी उसका अनुभव कराना चाहता हूँ।

जगदीशचन्द्र वसु

बोस संस्थान
कलकत्ता, १९२६

विषय-सूची

अध्याय १

मूक जीवन

जीवन की निष्क्रिय अवस्था—अदृश्यों के प्रदेश में जीवन—अभिक्रिया—बाहरी उत्तेजना का सूक्ष्म प्रभाव—वनस्पति और प्राणी के जीवन-व्यवहार में दृश्य भेद—परिप्रश्न-आघातों से प्राप्त उत्तरों से भीतरी दशा का प्रकाशन—प्राणी और वनस्पति की प्रतिक्रिया में मूलगत एकता का प्रश्न। ... १–५

अध्याय २

वनस्पति-लिपि

मूक व्यक्ति के प्रत्युत्तर का अभिलेखन—संवेदनशील लाजवन्ती—अनुक्रिया-अभिलेखक—प्रेरक आघातों द्वारा उद्दीपना—एकरूप प्रतिक्रियाएँ—अनुनादी अभिलेखक (Resonant Recorder)—संवेदनशील एवं साधारण वनस्पति—साधारण वनस्पति का प्रतिक्रियात्मक संकुचन—तन्तु की मरोड़। ... ६–१४

अध्याय ३

वनस्पति का आचरण

अनुक्रिया का अव्यक्त काल (Latent Period)—अव्यक्त काल एवं अनुक्रिया-विस्तार पर श्रान्ति का प्रभाव—ऊपर से जाते हुए बादल का प्रभाव—अतिशीत द्वारा प्रेरक तंत्रिकास्तम्भ—ऊष्माघात से मृत्यु-प्रत्यक्ष ज्ञान की परिधि और तीक्ष्णता—दैहिक संरचना का विकास-सम्बन्धी विभेद—चेतना का प्रश्न—वनस्पति और प्राणी का व्यवहार। ... १५–२२

अध्याय ४

भेषज-उपचारित वनस्पति

वनस्पति और प्राणी की आकुंची (Contractile) संरचना—सक्रिय, अर्धसक्रिय एवं निष्क्रिय प्रेरक अवयव—पीनाधार की प्रेरक प्रतिक्रिया—अभिरंजन द्वारा पेशी-ऊतक का सीमांकन—सक्रिय पदार्थों की उपस्थिति पर निर्भर प्रतिक्रिया की द्रुतता—कार्बनिक अम्ल गैस का अनुक्रिया पर प्रभाव—सल्फ्यूरेट्येड हाइड्रोजन, ईथर, क्लोरोफार्म एवं अल्कोहल के प्रभाव। ... २३–३०

अध्याय ५

विद्युत्-अनुक्रिया

वैद्युत अनुक्रिया पाने की रीति—मात्रात्मक यांत्रिक उद्दीपना—एकरूप अनुक्रिया—श्रान्ति—विष का प्रभाव—क्लोरोफार्म से मृत्यु—द्रव दहन से वनस्पति की मृत्यु। ... ३१–३८

अध्याय ६

वनस्पति की निद्रा

सोने एवं जागने की परीक्षा—निद्रा-अभिलेखक—दिन के मध्य में अनुक्रिया—प्रातःकाल का शनैः शनैः जागना—संवेद्यता के अन्तर का दैनिक अभिलेख। ... ३९–४४

अध्याय ७

फरीदपुर का प्रार्थनारत ताड़ वृक्ष

वृक्ष की प्रातः और संध्या की स्थिति—ऊपर और नीचे की गति की आवर्तीय भिन्नता—दैनिक गति का अभिलेख—घटना का स्पष्टीकरण—स्वचालित अभिलेखक—विभिन्न वनस्पतियों का लाक्षणिक स्वलेख। ... ४५–५४

अध्याय ८

अकार्बनिक पदार्थों की अनुक्रिया

बेतार-तरंगों के लिए डिटेक्टर की श्रान्ति--विश्रामोपरान्त संवेदता का पुनः स्थापन--दीर्घकालीन निष्क्रियता के कारण जड़ता--धातु की वैद्युत अनुक्रिया--उद्दीपनाओं द्वारा अनुक्रिया-वृद्धि--विष द्वारा अनुक्रिया की समाप्ति--सजीव एवं निर्जीव। ... ५५-५९

अध्याय ९

जीवन और मृत्यु की वक्र रेखा

वनस्पति एक यन्त्र के रूप में--मृत्यु का संकेत--मृत्यु के समय विद्युत्-विसर्जन--स्मृति का पुनरुन्नयन--मृत्यु की ऐंठन--मृत्यु-अभिलेखक--मृत्यु-उत्तेजना का पारेषण--जीवन और मृत्यु के बीच सातत्य। ... ६०-६८

अध्याय १०

स्वचलता

शालपर्णी (Telegraph Plant) का लयबद्ध स्पन्दन--प्राणी एवं वनस्पति में स्वचालित स्पन्दन--आन्तरिक दाब के परिवर्तन के प्रभाव--स्वापक औषध (Narcotics) की क्रिया--विषों की विरोधी अभिक्रियाएँ--साधारणतः प्रतिक्रियाशील तथा स्वचालित प्रतिक्रियाशील वनस्पतियों के बीच संयोजक शृंखला का प्रकटीकरण--बहुविध प्रत्युत्तर--अर्ध स्वचलता--लयबद्ध संवेदना--क्षणिक एवं स्थायी स्वतःक्रिया। ... ६९-७८

अध्याय ११

वृद्धि का अभिलेख

वृद्धि का माप--उच्च प्रवर्धन वृद्धिलेखी--वृद्धि के स्पन्दन--आन्तरिक तरल स्थैतिक दाब का प्रभाव--उद्दीपना का प्रभाव--पीनाधारी और बढ़ते हुए अंगों की अनुक्रिया की समानता--ताप की विविधता का प्रभाव--निश्चेतकों (Anaesthetics) का प्रभाव--रासायनिक उद्दीपकों का प्रभाव--परोक्ष और प्रत्यक्ष उद्दीपना के प्रभावों का नियम--बल्य (Tonic) दशा का प्रभाव--परोक्ष एवं प्रत्यक्ष उद्दीपना के प्रभाव। ... ७९-८७

अध्याय १२

चुम्बकीय वृद्धिलेखी

संतुलित वृद्धिलेखी—तात्कालिक प्रकाश-स्फुरण के प्रभाव का अभिलेख—बेतार तरंगें और वृद्धि—वृद्धि का चुम्बकीय प्रवर्त्तन—गतियाँ—कायाकल्प—जीवन अनिश्चय की दशा में। ... ८८–९५

अध्याय १३

आहत वनस्पति

वृद्धि पर आघात का प्रभाव—सुई की चुभन और छुरी का आघात—पिछड़ी हुई वृद्धि पर पिटाई का प्रभाव—स्पंदनशील पत्तियों पर व्रण का प्रभाव—गहरे व्रणों द्वारा उत्पन्न प्रेरक पक्षाघात। ... ९६–१००

अध्याय १४

वनस्पति में दिशा-बोध

यांत्रिक और भास-जनित उद्दीपना—भू-अभिवर्त (Geotropic) क्षोभ—भू-अभिवर्ती प्रतिक्रिया पर तापमान का प्रभाव—ईथर का प्रभाव—साम्याश्म (Statolith) सिद्धान्त—विद्युत्शलाका द्वारा भूम्याप्रतिबोधी स्तर का स्थान-निर्धारण—क्रमिक झुकाव पर मांड़-कणों की फिसलन। ... १०१–१०६

अध्याय १५

प्रकृति में वनस्पति की गति

उष्णदेशीय गतियाँ—तन्तुओं (Tendrils) की मरोड़—सकारात्मक वक्रता—परोक्ष उद्दीपना का प्रभाव—उद्दीपना से विमुख झुकाव। ... १०७–११४

अध्याय १६

कमुदिनी का रात्रि-जागरण

कुमुदिनी की निद्रा और जागरण—समस्या की जटिलता—निरसन की प्रक्रिया—कुमुदिनी का दैनिक अभिलेख—प्रकाश की भिन्नता में कासमर्द (Cassia) की गति। ... ११५–१२२

अध्याय १७

रस का उत्कर्ष

शारीरिक सिद्धान्त--अन्त्य अंगों द्वारा खींचना और धक्का देना--जीवनीय क्रिया द्वारा रस का प्रणोदन (Propulsion)--रस-आरोह पर विष का प्रभाव--प्राणी में रक्त-प्रणोदन--रस-प्रवाह का निर्देशक पर्ण--वैद्युत वनस्पति आरेख (Electric Phytograph)--रस-उत्कर्ष पर बारी-बारी से रासायनिक अवसादकों और उद्दीपकों के प्रयोग का प्रभाव--ऊष्मता और शीतलता के क्रमिक प्रयोग का प्रभाव। ... १२३–१३२

अध्याय १८

प्रणोदक ऊतक

वनस्पति के 'हृदय' की खोज--विद्युत्शलाका द्वारा स्पन्दित-स्तर का स्थान-निर्धारण--हृदय की क्रिया की परीक्षा--स्पन्दन पर प्रावसादित और वर्धित आन्तरिक दाब का प्रभाव--अधिबल्य दशा का प्रभाव--निश्चेतकों का प्रभाव--स्वाभाविक और विपरीत क्रमाकुंचक तरंग--काष्ठ का कार्य। ... १३३–१४१

अध्याय १९

आम्र वृक्ष का रुदन

सावधिक 'रुदन'--रस-दाब की घण्टेवार भिन्नता--पर्णरहित वृक्षों में दाब-भिन्नता--पर्णयुक्त वृक्षों में दाब की भिन्नता--आम्र वृक्ष से स्राव--'रुदन' के कारण की खोज। ... १४२–१४७

अध्याय २०

ताड़ वृक्ष का दोहन

स्राव के माप के लिए स्वचालित अभिलेख--रस-उत्पाद में प्रति घंटे की भिन्नता--रात्रि में अधिक स्राव होने का स्पष्टीकरण--रस-स्राव के लिए बारंबार व्रण करने की आवश्यकता--खजूर (Palmyra Palm) के दोहन की विधि। ... १४८–१५२

अध्याय २१

प्राणी और वनस्पति पर ऐलकालायडों (Alkaloids) और नाग-विष की क्रिया

प्राणी की तंत्रिका गति का अभिलेख—वनस्पति-संवेग मापक—प्रकाशीय नाड़ीलेखी (Optical Sphygmograph)—उद्दीपकों और प्रावसाद के प्रभावान्तर्गत तंत्रिका-अभिलेख—एलकालायडों की लाक्षणिक क्रिया—उद्दीपकों का प्रभाव—प्रावसादकों की क्रिया—विरोधी अभिक्रियाएँ—उद्दीपक-प्रावसादक—कृष्ण सर्प-विष की क्रिया—सूचिकाभरण का हृत्स्पन्दन पर प्रभाव। ... १५३–१६६

अध्याय २२

कार्बन का परिपाचन

परिपाचन का स्वतः अभिलेख—परिपाचन की प्रति घंटे की भिन्नता—रासायनिक पदार्थों की अत्यल्प मात्राओं का प्रभाव—सूर्य-ऊर्जा के संचय करने में हरे पौधों की क्षमता। ... १६७–१७२

अध्याय २३

पौधों की तंत्रिका

संग्राहक 'संवाहक' और कार्यकारी—जल-नली या तंत्रिका (Nerve)—रस-गति का सिद्धान्त—तंत्रिका-आवेग का परीक्षण—आवेग के वेग का माप—दैहिक बाधा द्वारा आवेग का अवरोध—विद्युत्-धारा द्वारा ध्रुवीय उत्तेजना (Polar Excitation)। ... १७३–१८३

अध्याय २४

तंत्रिका का स्थान-निर्धारण

तंत्रिका-ऊतक के स्थान-निर्धारण के लिए विद्युत्-शलाका—प्रभावी अभिरंजन द्वारा तंत्रिका-वितरण का मानचित्र—एकाकीकृत वनस्पति-तंत्रिका से संपरीक्षण—अन्तर्ग्रंथित और संदृढ़ झिल्ली—बहुनंग या सुगमता—रुई का व्यवहार—पर्ण, उद्दीपना-ग्रहण के स्थान के रूप में। ... १८४–१९२

अध्याय २५

सूर्य और उसका पर्ण-रथ

सामान्य और तीव्र उद्दीपनाओं के विपरीत प्रभाव—सूर्य-सेवन—लाजवन्ती के प्रेरक अंग की जटिलता—सरल रेखात्मक और मरोड़ वाली गतियाँ—पर्ण और स्थूलाधार में तंत्रिका-सम्बन्ध—बँधा हुआ शलभ। ...१९३–१९८

अध्याय २६

वनस्पति में प्रतिवर्त चाप (Reflex Arc) की खोज

प्राणी में प्रतिवर्ती क्रिया—लाजवन्ती में प्रतिवर्त चाप—संवेदक और प्रेरक आवेग—कुचला का प्रभाव—निष्पादन—केन्द्र—निम्नावस्था। ...१९९–२०४

अध्याय २७

तंत्रिका-आवेग और संवेदना का नियंत्रण

तंत्रिका-परिपथ—तंत्रिका-नियंत्रण की समस्या—आवेग का परमाणविक पारेषण—तंत्रिका-आवेग पर परमाणविक पूर्व प्रवृत्ति का प्रभाव—इच्छा के निर्देशक नियन्त्रण की शक्ति—परिस्थिति पर विजयी मनुष्य। ...२०५–२११

परिशिष्ट

बोस संस्थान

जीवन तरंग—दो आदर्श—ज्ञान की उन्नति और प्रसार—दृष्टिकोण—विस्तृत संश्लेषण। ...२१२–२१६

वनस्पतियों के स्वलेख

अध्याय १

मूक जीवन

वनस्पति में जीवन की महती सम्भावनाएँ कभी-कभी गोपनीय और प्रायः अगोचर रहती हैं। विशाल वट-वृक्ष सरसों से भी छोटे पिण्ड में निवास करता है। बीज के छिलके से घिरा सुषुप्त जीवन उपयुक्त ऋतु और अनुकूल दशा में जागृत होने के लिए बहुत समय तक पड़ा रहता है। सुषुप्ति की दशा में जीवन की प्रतिरोध-शक्ति विलक्षण होती है। बीज को ऐसे शीत में रखे जाने पर भी, जिसमें वायु द्रवीभूत और पारा घनीभूत हो जाता है, देखा गया है कि बीज के छिलके के रक्षा-कवच के भीतर सभी बाहरी आपत्तियों का सामना करते हुए जीवन अक्षुण्ण बना रहता है। आँधी और बवंडर जीवित बीजों को बिखेर देते हैं। नारियल समुद्र की तरंगों पर बहता रहता है जब तक किसी निर्जन द्वीप पर सुरक्षित पहुँच नहीं जाता। उचित ऋतु में परिवर्तनों का आश्चर्यजनक क्रम आरम्भ होता है, सुप्त जीवन जागृत होता है; बीज का छिलका फटकर अलग हो जाता है और वृद्धि आरम्भ हो जाती है। लगता है मानों बीजांकुर में मानवोचित क्षमताएँ हों। इसे उलटकर रख दीजिये, फिर भी मुख्य जड़ बिना किसी असावधानी के नीचे मुड़कर पानी के लिए पृथ्वी में प्रवेश करती है और तना वायु और प्रकाश के लिए ऊपर उठता है। पत्थरों और अन्य बाधाओं को बचाती हुई जड़ धरती के अन्दर प्रविष्ट होती जाती है। तना प्रकाश की ओर मुड़ता है और तन्तु अवलम्बन से लिपटते हैं। ये दृश्य-व्यापार यथेष्ट आश्चर्य-जनक लगते हैं। किंतु वनस्पति के शान्त बाह्यरूप के भीतर अन्य शक्तिपूर्ण और सतत चलती रहने वाली क्रियाएँ हैं, जो अब तक निरीक्षा से बची रही हैं। जब तक हम इस अदृश्य के क्षेत्र में प्रवेश नहीं करते, उसके जीवन के रहस्य और उसकी विविध अभि-व्यक्तियों का समाधान नहीं हो सकेगा।

वनस्पति हमें सदैव बड़े दूरस्थ-से लगे हैं। क्योंकि इनका जीवन अत्यधिक गति-हीन और मूक होता है। अपनी दृश्य-जड़ता और निर्विकारता के कारण वनस्पति स्वतः क्रियाओं और स्पन्दित इन्द्रियों वाले शक्तिपूर्ण प्राणियों से अत्यधिक भिन्न है। फिर भी, उसी पर्यावरण से, जिसकी परिवर्तनशीलता का इतना अधिक प्रभाव प्राणियों पर पड़ता है, वनस्पति भी प्रभावित होते हैं। आँधी और धूप, ग्रीष्म की गर्मी और जाड़ों का कुहरा, अवर्षा और वर्षा, ये सब, तथा अन्य कितने ही अपना कौन-सा व्यापक प्रभाव पौधों पर छोड़ जाते हैं? भीतरी परिवर्तन अवश्य होता है किंतु हमारी आँखें उन्हें देखने में असमर्थ हैं।

प्रथम दृष्टि में वनस्पति की जीवन-क्रियाएँ हमें प्राणियों की जीवन-क्रियाओं से बहुत भिन्न लगती हैं। किंतु इन गोचर भिन्नताओं के बावजूद यदि यह प्रमाणित कर दिया जाये कि वे मूलतः समरूप हैं तो यह निःसंदेह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक सामान्यीकरण होगा। तब प्राणियंत्र की पेचीदा संरचना, जिसने आज तक हमें उलझन में डाल रखा है, सदैव दुर्बोध न रहेगी। क्योंकि वनस्पति के अपेक्षाकृत सरल जीवन की समान समस्याओं के अध्ययन में स्वभावतः प्राणि-जीवन के गहन प्रश्नों का भी उत्तर मिलेगा। इसके द्वारा शरीर-विज्ञान, कृषि, चिकित्सा-विज्ञान और सम्भवतः मनोविज्ञान में भी अत्यधिक उन्नति की सम्भावना है।

हम अब भी वनस्पति-जीवन की मूल अभिक्रियाओं से अनभिज्ञ हैं, कारण अन्वेषकों को बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जो ज्ञान हमें सुलभ है वह अधूरे तथ्यों से भरा है और उसी पर विरोधी और असंगत सिद्धान्त आधारित हैं। इस स्थिति में केवल वही मार्ग सही होगा जो हमें वादविवाद के कोलाहल से हटकर सत्य का अनुसरण करा सके। इसलिए हमें चाहिये कि पूर्व अवधारणाओं को त्यागकर प्रत्यक्ष प्रश्न सामने रखें और आग्रह करें कि केवल वे ही प्रमाण ग्राह्य होंगे, जिन पर वनस्पति के स्वयं के हस्ताक्षर हों।

रहस्य से संयुक्त एक विज्ञान के जानकारों का कहना है कि वे किसी के भी हस्ताक्षर का अध्ययन कर उसका चरित्र और स्वभाव बता सकते हैं। इस प्रकार के दावों की सच्चाई पर संदेह किया जा सकता है; किन्तु फिर भी इसमें संदेह नहीं कि किसी के हस्तलेख पर उसकी शारीरिक और मानसिक अवस्थाओं का पर्याप्त प्रभाव पड़ सकता है। हैटफील्ड हाउस (Hatfield House) में अभी तक गाइफाक्स (Guy-Fawkes) के हस्ताक्षर किये कागजात रखे हैं। जिन्होंने उन्हें देखा है उनका कहना है कि इन हस्ताक्षरों में भंयकर परिवर्तन है। इस पृथ्वी पर जो अन्तिम उलझे और विकृत शब्द गाइफाक्स ने अपने अपराध की लिखित स्वीकारोक्ति के लिए, वध के

दिन सूर्योदय से पूर्व की अँधेरी घड़ियों में लिखे थे; स्वयं उस प्राणान्तक रात्रि की एकाकी घड़ियों की गाथा कहते हैं।

यदि मनुष्य के हस्तलेख की रेखाओं और उनकी वक्रताओं से ऐसा रहस्य-भेदन आलोचक की आँखों द्वारा किया जा सकता है तो कदाचित् वनस्पतियों को भी स्वलेख देने के लिए तैयार किया जा सकता है जिससे उनकी आंतरिक अवस्था का भेद इसी प्रकार स्पष्ट हो सके। इसको सम्पन्न करने का एकमात्र बुद्धिगम्य उपाय इसके शरीर पर प्रश्नात्मक आघात की अभिक्रिया का अभिलेख प्राप्त करना है। जब किसी प्राणी को वाह्य आघात लगता है तो उससे नाना प्रकार की प्रतिक्रियाएँ हो सकती हैं—यदि वह बाचाल है तो चिल्लाकर, यदि मूक है तो अपने अंगों की गति से। वाह्य आघात प्रोत्साहक है और प्राणी के प्रत्युत्तर प्रतिक्रियाएँ हैं। यदि हम वनस्पति से भी आघात के प्रत्युत्तर में इसी प्रकार का प्रत्यक्ष उत्तर दिलवा सकें तो हम उसके ढंग से उसकी अवस्था का निर्णय कर सकते हैं। उत्तेजनशील दशा में हल्के से हल्के प्रोत्साहन के द्वारा भी असामान्य रूप से सबल प्रत्युत्तर प्राप्त होगा, शक्तिहीन अवस्था में सबल प्रोत्साहन द्वारा भी दुर्बल प्रत्युत्तर ही मिलेगा और अन्त में जब मृत्यु जीवन पर विजय पा लेती है, प्रत्युत्तर देने की शक्ति एकाएक समाप्त हो जाती है।

जब तक हम जीवित रहते हैं, किसी-न-किसी प्रकार से अपने आस-पास के आघातों या प्रोत्साहनों का प्रत्युत्तर देते ही रहते हैं। पदार्थ पर पड़ने वाले प्रोत्साहन से परमाणु-विक्षोभ उत्पन्न होता है जिससे उत्तेजना होती है और यह विक्षोभ अभिव्यक्ति के अनुसार नाना प्रकार से प्रदर्शित होता है। एक ही विद्युत्-धारा का विविध यन्त्रों पर पड़ने वाला अलग-अलग प्रभाव हम एक क्षण के लिए देखें। एक प्रकार से अभिलेखक यन्त्र पर व्यवहार करने पर यह गति उत्पन्न करती है, दूसरे यन्त्र पर यथा विद्युत् घण्टी में यह ध्वनि पैदा करती है तथा तीसरे में प्रकाश। इसी प्रकार जीवित तन्तुओं पर क्रियाशील प्रोत्साहन, उत्तेजना उत्पन्न करता है जो प्रकट करने वाले अवयवों के अनुसार विभिन्न रूपों में प्रस्तुत होता है।

सर्वप्रथम अंगविक्षेप द्वारा प्रत्युत्तर का सामान्य उदाहरण लीजिये, हाथ पर उबलते पानी की एक बूँद पड़ने से मांसपेशियों में संकुचन होने लगता है और हाथ खिंच जाता है। लाजवन्ती के संवेदनशील पौधे की पत्ती में भी यही देखा जाता है, जो आघात पाकर शीघ्रता से नीचे झुक जाती है। स्पर्श से, उत्तेजना से माक्षभिक्ष (Dionaea) की पत्ती भी अपने शिकार, मक्खी, को बन्द कर लेती है। इस यंत्रवत् अंग-संचालन के बजाय जैसा कि हम आगे देखेंगे प्रोत्साहन के उत्तर में विद्युत्-संचालन को भी ले सकते हैं। एक उपयुक्त वैद्युत-अभिलेखक, गैलवनोमीटर, प्रत्येक बार जब

जीवित तन्तु उत्तेजित किये जाते हैं, एक वैद्युतीय 'आघात' प्रदर्शित करता है और अन्ततः स्पष्ट होता है कि प्रत्युत्तरों के प्रकारों में से संवेदना स्वयं एक प्रकार है।

दृष्टिपटल का प्रत्युत्तर दृष्टि है, कान का श्रवण और इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों और चेतना में मस्तिष्क के विविध अंश विविध उत्तरदायी अवयवों के कार्य करते हैं। प्रयोगशाला में अनुसन्धान की दृष्टि से मान लीजिये, हम मेढक के दृष्टितन्तु को मस्तिष्क की जगह 'गैलवनोमीटर' से जोड़ दें तो यह पाया जायगा कि जब भी इस तन्तु पर प्रकाश पड़ता है, 'गैलवनोमीटर' आकस्मिक झुकाव के द्वारा प्रत्युत्तर देता है ठीक वैसे ही जैसे मस्तिष्क में प्रतिक्रिया विशेष संवेदनों के रूप में दिखाई देती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वनस्पति के प्रत्युत्तर का अभिलेख पाने की कुछ सम्भावना है, जिससे उसकी भीतरी दशा और उस दशा में होने वाले परिवर्तन ज्ञात हो सकते हैं। इसमें सफल होने के लिए हमें सर्वप्रथम किसी ऐसी विवश करने वाली शक्ति को खोजना होगा जो वनस्पति को यांत्रिक या वैद्युत संकेतमय उत्तर देने को बाध्य करे; द्वितीय, ऐसा उपाय निकाला जाय जो इन संकेतों को सुबोध अभिलेख में परिवर्तित कर दे। अन्त में हमें स्वयं संकेत लिपि के महत्त्व विशेष को समझने की कोशिश करनी होगी।

इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए कि क्या जीवों और वनस्पतियों की प्रतिक्रिया में कुछ मूलगत एकता है, यह देखने के लिए हमें पहले यह जानना होगा कि संवेदनशीलता केवल कुछ ही पौधों की विशेषता है अथवा सब पौधों की; और क्या उनके सब अवयव संवेदनशील होते हैं? तब हमें जीव और वनस्पति की तुल्य अवस्थाओं में विशिष्ट प्रतिक्रियाओं की तुलना करनी होगी और यह देखना होगा कि दोनों दशाओं में स्वाभाविक प्रतिक्रिया और परिवर्तित दशाओं में उनके रूपान्तर एक-से होते हैं अथवा नहीं।

कोई प्राणी आघात पाते ही तुरन्त प्रतिक्रिया नहीं दिखाता। आघात और उसके बाद उत्तर के आरम्भ में थोड़ा समय लगता है। यह समय 'अव्यक्त काल' (Latent Period) कहलाता है। मनोवैज्ञानिक इस व्यवधान द्वारा अपने मानव रोगी के विषय में उसके शब्दों द्वारा कथन से कहीं अधिक जान जाता है। वनस्पति में भी आघात और उसकी प्रतिक्रिया के बीच एक निश्चित काल व्यतीत होता है। क्या इस अव्यक्त काल में प्राणी की तरह उसकी भी बाहरी या भीतरी दशा में परिवर्तन के साथ रूपान्तर होता है? क्या यह सम्भव है कि हम वनस्पति द्वारा इस स्वल्प अव्यक्त काल को लिखा सकें? इसके अतिरिक्त क्या वनस्पति भी उन विविध क्षोभकों द्वारा उत्तेजित होता है जिनसे प्राणी उत्तेजित होता है? क्या यह उत्तेजना

स्थानीय है या यह एक ऐसा आवेग उत्पन्न कर देता है जो पौधे की पूरी लम्बाई तक जाता है और दूरी पर ही एक गति उत्पन्न कर देता है? यदि ऐसा है तो यह आवेग किस गति से चलता है, किन दशाओं में यह गति बढ़ जाती है और किन अन्य अवस्थाओं में यह विलम्बित या रुद्ध होती है? क्या वनस्पति से ही इस गति और उसमें होने वाले परिवर्तनों का अभिलेख बनवाया जा सकता है? क्या जीवों के तंत्रिकागत आवेग (Nervous impulse) और वनस्पति के उत्तेजनाजन्य आवेग में कोई समानता है?

जीवों के विषय में विविध औषधियों का लाक्षणिक प्रभाव न्यूनाधिक ज्ञात है। क्या वनस्पति भी इसी प्रकार उनकी क्रिया के प्रतिग्रहणशील है? क्या मात्रा के अनुसार विष के प्रभाव में अन्तर होगा? क्या एक विष के प्रभाव का दूसरे विष के प्रभाव से, जो प्रतिविष का कार्य करता है, प्रतिकार किया जा सकता है?

प्राणी में कुछ स्पन्दित होने वाले ऊतक (Tissues) हैं जैसे हृदय। क्या वनस्पति में भी ऐसे ही स्वतः प्रवृत्त स्पन्दनशील ऊतक हैं? यदि हाँ, तो क्या प्राणी और वनस्पति के ये स्वतः प्रवृत्त स्पन्दन बाहरी अवस्थाओं द्वारा एक ही प्रकार से प्रभावित होते हैं? और फिर स्वतः-प्रवृत्ति और स्वचलता (Automatism) का वास्तविक अर्थ क्या है?

दैहिक वृद्धि स्वचलता का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उदाहरण है; किन्तु वनस्पति में इस वृद्धि का क्रम इतना न्यून है कि हम उसे प्रत्यक्ष देख नहीं सकते। तब फिर किस प्रकार इस वृद्धि-दर को बढ़ाया जाय कि इसका तत्काल माप किया जा सके? इस अनन्त गति में प्रकाश, स्पर्श या विद्युत्-वाह के आघात के बाहरी उद्दीपकों से क्या परिवर्तन होते हैं? पानी देने या उसकी रुकावट, और विविध औषधियों के प्रभाव से क्या परिवर्तन होते हैं; कौन-सी मुख्य अवस्थाएँ सर्वोपरि हैं, जो वृद्धि को उद्दीप्त या अवरुद्ध करती हैं।

अन्त में जब जीवनान्त के बहुमुखी प्रकार में से किसी प्रकार से जीवन अन्ततः समाप्त होता है, तो क्या उस क्षण-विशेष का पता लगा सकना सम्भव होगा? क्या मृतप्राय पौधा उस क्षण का कोई ऐसा सुस्पष्ट संकेत देता है जिसके उपरान्त उसकी क्रियाशीलता सदैव के लिए समाप्त हो जाती है?

अध्याय २

वनस्पति-लिपि

हमारे सम्मुख उपस्थित इन सभी पूर्ववर्ती प्रश्नों के साथ हमें इस कठिनाई का सामना करना है कि वनस्पति मूक और देखने में निष्क्रिय जन्तु प्रतीत होती है, फिर भी क्या वे हमें कुछ ऐसे संकेत नहीं दे सकतीं जिनसे हम उनका आन्तरिक इतिहास पढ़ सकें ? मूक व्यक्ति अपनी अँगुलियों द्वारा अपने भावों को व्यक्त करते हैं, अब हमें यह देखना चाहिये कि हम कैसे उनकी प्राणभूत अवस्था के विषय में कुछ सीख सकते हैं। हम एक मूक व्यक्ति की अँगुलियों पर प्रहार करते हैं; यह हुआ प्रश्नकारक आघात या उत्तेजना और अँगुलियां उत्तर में झटका देती हैं। लेकिन किस हद तक ? यह इस पर निर्भर करता है कि वह व्यक्ति कितना सजीव है ? यदि वह अत्यधिक सजीव है तो उसकी अँगुलियों का झटका शक्तिशाली होगा, यदि उदासीन है तो उसी आघात के बदले में हल्का झटका देगा; यदि वह मृत होगा तो आघात का कुछ भी प्रभाव नहीं होगा।

कल्पना कीजिये, हमने उसकी अँगुली में एक पेंसिल बाँध दी और एक कागज उस पेंसिल के नीचे सरक रहा है, इन वर्णित प्रयोगों में हमें तीन प्रकार के अभिलेख प्राप्त होने चाहिये। यदि मूक व्यक्ति पूर्ण जीवित होगा तो झटके द्वारा प्रभावित रेखा लम्बी होगी; यदि खिन्न अवस्था में होगा तो उत्तर-अभिलेख छोटा होगा और मृत अवस्था में कुछ भी अभिलेख-गति न होगी। इस प्रकार रेखाओं की लम्बाई से हम मूक व्यक्ति की अवस्था का निश्चय कर सकते हैं।

लगभग इसी प्रकार हम परीक्षण-आघात के उत्तर में की गयी गति द्वारा पौधों की जीवन-शक्ति के विषय में जान सकेंगे। यद्यपि सभी पौधों में परिसीमित गति-शक्ति होती है तथापि किसी में भी प्राणी की शक्ति से तुलना करने योग्य ऐसी सक्रिय गति नहीं होती जैसी तथाकथित संवेदनशील पौधों में सामान्य रूप से और लाजवन्ती (Mimosa Pudica) में विशेष रूप से होती है। चित्र १ में लाजवन्ती की एक जोड़ा पंत्तियाँ दिखायी गयी हैं। बायां पर्ण सामान्य फैली हुई अवस्था में है, दाहिना आघात द्वारा नीचे झुका हुआ है।

लाजवन्ती की गतियों का अध्ययन एक मनोहारी दृश्य होता है। बंगाल में इसे इस प्रकार स्पर्श से सिकुड़ने के कारण "लज्जावती युवती" कहते हैं। सब तरह की गति के कारण बच्चे इससे घंटों खेलना पसन्द करते हैं।

लाजवन्ती का पूरा पर्ण हमारी समतल फैली हुई अँगुलियों वाली बाँह की तरह है। लम्बी वर्णनात्मक पद्धति के स्थान पर पर्ण के विभिन्न भागों के संक्षिप्त नामों को प्रयोग में लाना उपयुक्त होगा। मुख्य पर्ण डण्ठल बाँह की तरह और चारों अनु-डंठल फैली हुई अँगुलियों की तरह हैं। हाथ पर आघात करिये, वह झुक जायगा और अँगुलियाँ बन्द हो जायेंगी। इसी प्रकार लाजवन्ती का पर्ण भी आघात पाकर

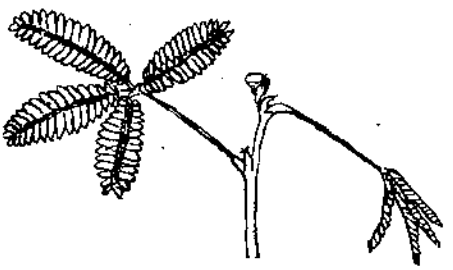

चित्र १—लाजवन्ती के विस्तृत पर्ण (बायीं ओर) और उद्दीपना के पश्चात् संकुचित पर्ण (बायीं ओर)।

नीचे झुक जाता है और अनु-डंठल सिकुड़ जाते हैं। अनु-डंठलों में पत्तियों के बहुत से जोड़े होते हैं जो खुद भी संवेदनयुक्त होते हैं और ऊपर को बन्द हो जाते हैं। यह गति पेड़ के विभिन्न जोड़ों पर स्थित संवेदनशील गद्दी की तरह गठित ऊतक संस्थान के संकुचन द्वारा जिसे 'पीनाधार' कहते हैं, प्राणी की मांसपेशियों की तरह सिकुड़ती हैं। पत्ती और टहनी के जोड़ पर एक बड़ा पीनाधार रहता है। मुख्य टहनी और चारों छोटे उपपत्र वृन्तों के जोड़ पर चार छोटे उप-पीनाधार होते हैं। उपपत्तियों और उपपर्णवृन्त के जोड़ पर अत्यधिक छोटे असंख्य उपपीनाधार होते हैं।

लाजवन्ती की यह एक बहुत ही अद्भुत पर्ण-संरचना है कि उसके एक ही पर्ण में तीन स्पष्ट और भिन्न गतियाँ होती हैं। मुख्य पर्णवृन्त गिर जाता है, चारों उप-पर्णवृन्त पार्श्व से घूमकर इकट्ठे हो जाते हैं; और छोटी पत्तियों के जोड़े ऊपर को

मुड़ जाते हैं। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि हम एक पौधे में इस तरह की गति का प्रकाशन देखकर मुग्ध होते है ?

यदि किसी भी अन्तिम पत्ती के जोड़े को चिकोट लिया जाय या कैंची से काटा जाय या गर्म शलाका से छुआ जाय तो एक आवेग-सा अन्दर की तरफ यानी तने की ओर चलता है। भिन्न-भिन्न पत्तियों के जोड़े एक के बाद दूसरे यथाक्रम ऊपर की ओर मुड़ते जाते हैं। उप-पर्णवृन्त एकत्रित होते जाते हैं और मुख्य पर्णवृन्त झुक जाता है। यदि बहुत अधिक होता है तो प्रदीपना पूरे स्कन्ध की लम्बाई में फैल जाती है जिससे दूर के दूसरे पर्ण भी झुक जाते हैं।

अब हम अपना ध्यान पर्णवृन्त की गति पर सीमित रखकर यह अनुसंधान करें कि यह गिरता क्यों है। ऊतकों की गद्दी, पत्तों के जोड़ या पीनाधार को देखिये जो चर अंग है और जो पर्ण की गति के लिए कब्जे का काम करता है। पीनाधार का निम्नार्ध अत्यधिक संवेदनपूर्ण है, और ऊर्ध्व अर्ध उससे कम। सावधानी से मापकर मैंने देखा है कि पीनाधार का निम्नार्ध ऊर्ध्वार्ध से अस्सी गुना अधिक संवेदनपूर्ण है। केवल यही नहीं, निम्नार्ध ऊर्ध्वार्ध से कहीं अधिक सक्रियतापूर्ण चर है। इसलिए हम जब पर्ण को उत्तेजित करते हैं तो दोनों आधे सिकुड़ते हैं किन्तु निम्नार्ध के अधिक सिकुड़ने से पर्ण नीचे झुक जाता है। पीनाधार के निम्नार्ध की वास्तविक सिकुड़न बहुत कम होती है, किन्तु चूँकि लम्बा पर्णवृन्त आवर्धक अभिसूचक का काम करता है, अनुक्रिया की गति बहुत ही स्पष्ट हो जाती है।

अनुक्रिया-अभिलेखक

अब मैं उत्तेजना द्वारा अनुक्रिया की गति के अभिलेख की विधि का वर्णन करूँगा। लाजवन्ती की एक पत्ती एक पतले धागे के द्वारा उत्तोलक या लीवर (जो मणि-भार से विवर्तित रहता है) के एक छोर से बँधा रहता है। उत्तोलक के दूसरे छोर पर एक छोटा भार बँधा रहता है जो धागे को तना हुआ रखता है। उत्तोलक के मध्य भाग से और उसके समकोण पर एक पतला और आखिरी हिस्से में मुड़ा हुआ तार जुड़ा रहता है, जो अभिलेखक का काम करता है। इस तार का एक छोर एक धूमित काँच पट्ट को छूता है जिस पर अभिलेख किया जाता है, जो गुरुत्व-क्रिया (Action of gravity) द्वारा घड़ी से नियमित गति पर फिसलने दिया जाता है।

हम पौधों को उन्हीं अभिकर्ताओं द्वारा उद्दीप्त कर सकते हैं जो मनुष्य को उद्दीप्त

करते हैं जैसे चिकोटी, एक गर्म तार या एक बूंद अम्ल। किन्तु ये पौधों को तुरन्त गम्भीर हानि पहुँचा सकते हैं इसलिए उपयुक्त नहीं हैं, मुख्यतः पुनरावृत्ति के लिए। इससे अच्छा उपाय है प्रेरण कुंडली (Induction coil) द्वारा विद्युत्वाह से आघात करना जिससे ये लाभ होते हैं—यदि आघात अत्यधिक शक्तिशाली न हो तो इससे पौधे को चोट नहीं लगती; दूसरे क्रमिक आघात सदैव स्थिर रखे जा सकते हैं, तीसरे आवश्यकतानुसार आघात की तीव्रता धीरे-धीरे बदली जा सकती है। प्ररोचन-यंत्र में दो कुंडली होती हैं—एक मुख्य और दूसरी गौण। आघात की तीव्रता धीरे-धीरे गौण कुंडली को मुख्य कुंडली के समीपतर लाकर बढ़ायी जा सकती है (चित्र ३)।

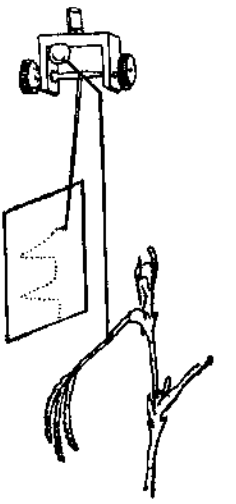

चित्र २—अनुक्रिया-अभिलेखक का आरेखीय निरूपण।

जब पर्ण उद्दीपन द्वारा गिरता है तो वह उत्तोलक का दाहिना सिरा नीचे गिराता है जिससे अभिलेखक ऊपर की ओर रेखा खींचता हुआ बायीं ओर चलता है। शनैः शनैः पर्ण पर से आघात का प्रभाव समाप्त हो जाता है और वह फिर

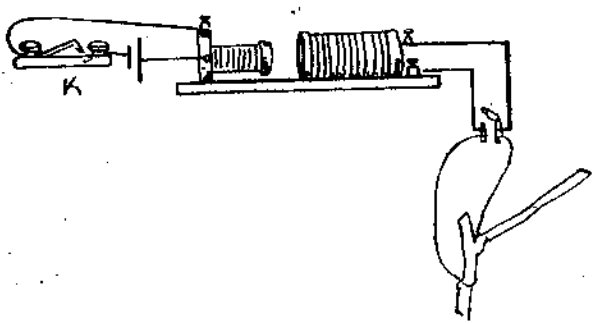

चित्र ३—प्ररोचन आघात देने की व्यवस्था। K, मुख्य परिपथ में कुञ्जी।

खड़ा हो जाता है और स्वस्थ होने की निम्न रेखा बनाता है। ऊपर और नीचे के घुमाव मिलकर अनुक्रिया का एक स्पन्दन बनाते हैं। ऊपर का घुमाव जो सिकुड़न

का निर्देश करता है, एक सेकेण्ड से कुछ ही अधिक में पूरा हो जाता है परन्तु इससे विमुक्ति में बारह मिनट तक का समय लग जाता है।

चित्र ४ में लाजवन्ती की अनुक्रिया का अभिलेख है; यह हमारे ऊपर भी आघात के प्रभाव की संवेदनशीलता स्पष्ट रूप से दिखाता है। हमें आघात के कष्ट

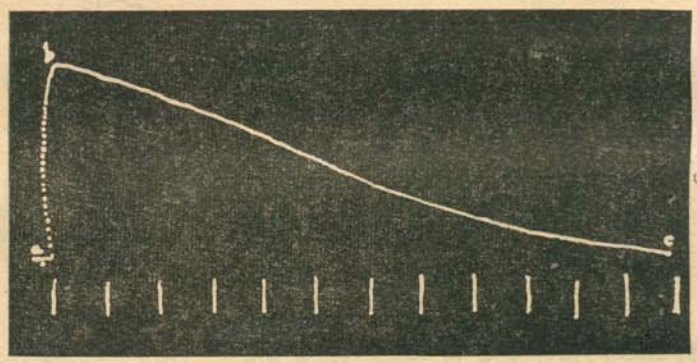

चित्र ४—लाजवन्ती के मुख्य पर्ण का अनुक्रिया-वक्र। अभिलेख के नीचे की उदग्र रेखाएँ, प्रत्येक एक मिनट का अंतर बताती हैं। (a b), पर्ण का पतन; (b c) पुनरुन्नयन।

की अनुभूति लगभग तत्काल ही होती है, किन्तु कष्ट के संवेदन को समाप्त होने में कुछ समय लगता है। लाजवन्ती के पूरी तरह स्वस्थ हो जाने के बाद हम फिर से उसे उसी तीव्रता के साथ आघात दें। यदि आस-पास की दशाएँ वैसी ही हों जैसी पहले थीं तो दूसरी अनुक्रिया भी वैसी ही होगी, और उसके बाद वाली भी सब वैसी ही होंगी (चित्र ५)। यदि पौधा किसी प्रकार से अवसाद-युक्त होगा तो अनुक्रिया में भी अवसाद तत्काल स्पष्ट हो जायगा।

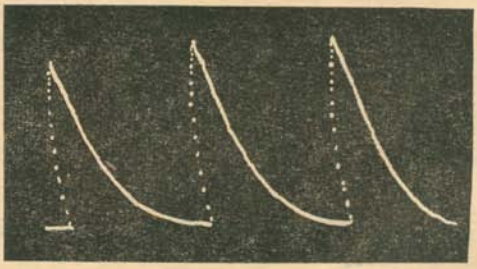

चित्र ५—लाजवन्ती की क्रमिक समान अनुक्रियाओं का अभिलेख।

प्रतिस्वन-अभिलेखक

मैंने अभी तक सही वनस्पति अभिलेख पाने की एक गम्भीर कठिनाई का उल्लेख नहीं किया है। जहाँ तक पेशी का सम्बन्ध है, सिकुड़न में काफी बल रहता है इसलिए अभिलेख तल पर रगड़ प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं होती। परन्तु वनस्पति में चर अंग का खिंचाव क्षीण होता है। यदि उत्तोलक को धूमित काँच के साथ लगातार जुड़ा रहने दिया जाय तो उसकी गति को रोकने या बदलने के लिए यथेष्ट होगा। संस्पर्श यदि स्थायी न होकर रुक-रुक कर हो तो यह कठिनाई दूर हो सकती है, और इस तरह एक सतत रेखा के स्थान पर अभिलेख में बिन्दुओं की

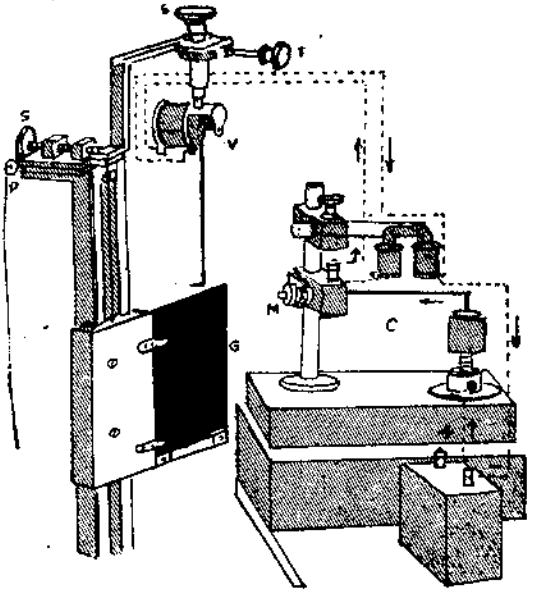

चित्र ६—अनुनादी अभिलेख का ऊपरी भाग। (एक छविचित्र से।)

एक श्रेणी बनेगी। यह मेरे प्रतिस्वन-अभिलेखक द्वारा निष्पादित किया जा चुका है, (चित्र ६) जिसका सिद्धान्त सांवेदनिक कम्पन पर आधारित है।

यदि दो वायलिन के तार एक स्वर में मिलाकर रखे जायें तो एक वायलिन पर छेड़ा गया स्वर दूसरे में भी सहानुभूति के कारण कम्पन उत्पन्न कर देगा। मान लीजिये हम अभिलेखक 'ब' को एक सेकेण्ड में सौ बार कम्पन करने के हिसाब से

ध्वनित करें और फिर उसके बाद ऐसी ध्वनि पैदा करें जो एक सेकेण्ड में सौ बार की गति से वायु-कम्पन करे तो अभिलेखक सहानुभूति में तदनुसार ही कम्पन करेगा। यह अभिलेख-पट्ट के लगातार संस्पर्श में नहीं रहेगा, बल्कि एक सेकेण्ड में सौ बार

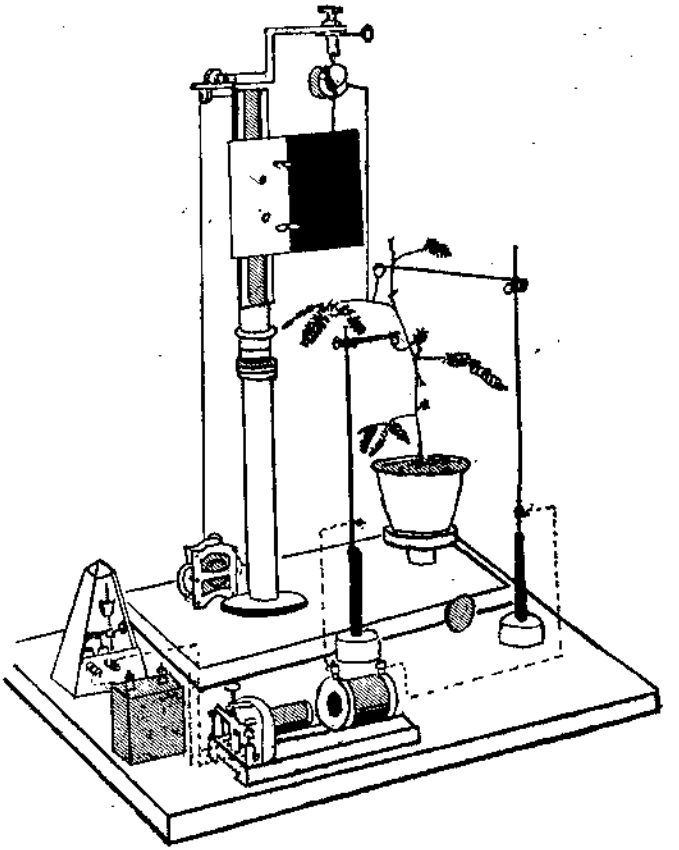

चित्र ७—लाजवन्ती की अनुक्रिया के स्वतः अभिलेख का पूर्ण उपकरण।

क्रमिक थपथपाहट अभिलिखित करेगा। अभिलेख इसलिए बिन्दुओं की एक श्रेणी होगी और एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु की दूरी एक सेकेण्ड का सौवां हिस्सा बतायेगी।

अधिक परिष्कृत अभिलेखकों द्वारा समय का अन्तर एक सेकेण्ड के हजारवें भाग तक माप लेना सम्भव है। अब यह समझा जा सकता है कि कैसे प्रतिस्वन-अभिलेखक यन्त्र द्वारा न केवल संघर्षण-सम्बन्धी कठिनाई ही दूर हो जाती है; बल्कि अभिलेख द्वारा ही समय का भी माप हो जाता है, अपेक्षित अन्तराल चाहे कितने ही संक्षिप्त क्यों न हों।

इस प्रकार एक निश्चित परीक्षणात्मक उद्दीपन के उत्तर में वनस्पति से स्वयं में एक उत्तरात्मक लिपि लिखवाने में सफल हुआ हूँ, और परिणाम किसी व्यक्तिगत पक्षपात से प्रभावित न हो इसलिए ऐसी व्यवस्था की गयी कि अभिलेखक-यन्त्र में उपयुक्त पौधे को सर्वथा स्थायी उद्दीपना द्वारा अपने आप उद्दीप्त किया जाय, और वह अपना मुक्ति-काल पूर्ण कर अपनी अनुक्रिया का उल्लेख करे और पर्यवेक्षक की ओर से उसी चक्र की, बिना किसी सहायता या बाधा से, पुनरावृत्ति करता रहे। चित्र ७ सम्पूर्ण यन्त्र दिखाता है।

सचेतन और सामान्य वनस्पति

हम वनस्पति-जगत् को अचेतन मानने के अभ्यस्त हैं जिसके लाजवन्ती और कुछ दूसरे पौधे अपवाद माने जाते हैं। वनस्पति को इन दो भागों में बाँटने का कारण यह है कि लाजवन्ती आघात पाकर सक्रिय गति दिखाती है किन्तु अन्य पौधे प्रत्यक्षतः निष्क्रिय और अचल दिखाई देते हैं। तब भी क्या इस चर-गति की अनुपस्थिति का कारण चेतनशीलता की कमी है या किसी विरोधी शक्ति का होना है जो गति को प्रत्यक्ष होने से रोकती है।

कल्पना कीजिये कि एक ही डील-डौल एवं शक्ति वाले दो व्यक्ति एक-दूसरे की पीठ से बँधे हैं, और उन पर एक साथ प्रहार किया जाता है। हरेक सामने झुकने का प्रयत्न करेगा और इस प्रकार एक, दूसरे की गति का अवरोध करेगा। तब क्या हमारा इन दोनों व्यक्तियों का आघात के प्रति अचेतन मानना उचित होगा?

अब लाजवन्ती की गति के विषय में देखिये। हम एक क्षण के लिए सोच लें कि यदि लाजवन्ती के पीनाधार का ऊर्ध्व अर्ध उतना ही संवेदनशील होता जितना उसका निम्नार्ध तो इसका परिणाम क्या होता। दोनों भाग विरोधी पेशियों का कार्य करते और सभी गति रुक जाती। यह विरोधाभास मालूम हो सकता है किन्तु लाजवन्ती की इस संवेदनशीलता का कारण यही है कि उसके चर अंग का आधा भाग अपेक्षाकृत निष्क्रिय है। यह ऐसा है जैसे यदि हम अपने मानव सम्बन्धी उदा-

हरण में एक शक्तिशाली मनुष्य के साथ एक निर्बल मनुष्य को बाँध दें। तब पहले मनुष्य की अनुक्रिया सबकी आँखों में स्पष्ट हो जायगी।

साधारण वनस्पति के तने का ऊतक बराबर संवेदनयुक्त होता है जिससे एक भाग की सकोची गति का विरोध ठीक उसके विपरीत भाग की गति करती है। फलतः जब सममित (Symmetrical) उद्दीपना होती है, स्कन्ध एक तरफ या दूसरी तरफ झुकने की अनुक्रिया नहीं करता। उसकी सारी लम्बाई संकुचित होकर छोटी हो जाती है, लेकिन यह इतनी कम होती है कि वह अन्तर दिखाई नहीं देता। किन्तु सामान्य पौधों के इस संकुचन का अभिलेख आवर्धक अभिलेखक द्वारा लिया जा सकता है। वास्तव में साधारण स्कन्ध की अनुक्रिया, सचेतन लाजवन्ती के समान ही है। यद्यपि उतनी स्पष्ट नहीं है।

तन्तु की मरोड़

सामान्य पौधों की चेतनता को प्रदर्शित करने वाला एक चमत्कारी प्रयोग इस प्रकार है। किसी अवलम्बन में लिपटा हुआ एक तन्तु काट कर अवलम्ब से अलग कर दिया गया, ऐसा लगता है कि वह बिलकुल अचेतन है। किन्तु तीव्र विद्युत् आघात करने पर कुन्तलित तन्तु तुरन्त मुड़ने लगता है और उसकी ऐंठन पीड़ित कृमि की ऐंठन की तरह ही तीव्र होती है।

इस विलक्षण घटना को यह तर्क स्पष्ट करता है—तन्तु जब किसी टहनी को छूता है तब, जैसा सभी जानते हैं, वह अवलम्बन से लिपटने लगता है। कुन्तल के अन्दर की सतह निरन्तर रगड़ से कड़ी हो जाती हैं, और उसकी बाहरी सतह उसकी तुलना में अधिक सचेतन रहती है। कुन्तल का बाहरी या उदुब्ज हिस्सा वस्तुतः पीनाधार के अधरार्ध की तरह है और उद्दीपन द्वारा प्रबलता से सिकुड़ता है। विद्युत्-उद्दीपना द्वारा उदुब्ज हिस्से के गुरुतर सिकुड़ने से कुन्तल खुल जाता है। अब तक के इस प्रकार के प्रयोग से यह सिद्ध होता है कि सचेतन और 'सामान्य' पौधों में अब तक का भेद अकारण हैं। उनमें अन्तर केवल आंशिक है।

अगले अध्याय में हम देखेंगे कि बाह्य दशाओं के परिवर्तन से पौधों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है और वनस्पति द्वारा स्वयं इन विलक्षण आन्तरिक परिवर्तनों को प्रश्नात्मक वैद्युतिक आघातों से उत्पन्न अनुक्रियाओं द्वारा प्रकट कराना संभव है।

अध्याय ३

वनस्पति का आचरण

प्राणियों की विभिन्न गतियाँ पेशी-यन्त्र-रचना द्वारा होती हैं, जो इन सभी में एक निश्चित उद्देश्य की पूर्ति करती है। जब द्रुत गति की आवश्यकता होती है तो प्रतिक्रिया तीव्र होती है। मन्दगति प्राणियों में अनुक्रिया धीमी होती है। विभिन्न प्रकार के प्राणियों की पेशी-प्रतिक्रिया के अध्ययन से इस तथ्य की पुष्टि होती है। इस प्रकार जब हम मेढक के पैर की पेशी में विद्युत् द्वारा आघात पहुँचाते हैं, तब पेशी-यन्त्र को सक्रिय होने में कुछ समय लगता है। आघात पहुँचाने और अनुक्रिया-गति के बीच समय लगता है। इस नष्ट समय को "अव्यक्त काल" कहते हैं। मेढक में यह प्रायः एक सेकेण्ड का सवाँ भाग है। यह "अव्यक्त काल" मन्दगति कछुए में बहुत ही अधिक होता है। प्रेरक यन्त्र की तीव्रता का अन्तर किस बात पर निर्भर है? बाद के अध्याय में इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न किया जायगा।

मनुष्य में भी आघात की प्रतिक्रिया अविलम्ब नहीं होती। उद्दीपना और अनुक्रिया में कुछ समय का अन्तर होता है। इस "अव्यक्त काल" का भी समय एक ही व्यक्ति में दिन के सब समय एक-सा नहीं रहता। प्रातः उठने के समय हम कुछ-न-कुछ मन्द रहते हैं; मध्याह्न में पूर्ण सक्रिय और दिन के अन्त में थके होने के कारण अनुक्रिया मन्द हो जाती है।

क्या वनस्पति के चर-यन्त्र में भी ऐसी ही विलक्षणताएँ होती हैं जैसी प्राणी में? क्या वनस्पति में आघात की अनुक्रिया अविलम्ब होती है? या इससे पूर्व कोई निश्चित अव्यक्त काल रहता है? इसका ठीक-ठीक माप करने के लिए हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ पर्याप्त प्रखर नहीं हैं। इसीलिए यह आवश्यक है कि स्वयं वनस्पति द्वारा सेकेण्ड के इन सूक्ष्म अंशों का अभिलेख कराया जाय। प्रतिस्वन अभिलेखक, किस प्रकार गुरुत्वाकर्षण-गति द्वारा फिसलते हुए धूमित-काँच पर अनुक्रिया अभिलेख करता है, यह स्पष्ट किया जा चुका है। नीचे जाते समय एक निश्चित विराम-स्थान पर गतिमान् काँच पट्ट एक विद्युत्-सम्बन्ध स्थापित करता है जिससे पौधे को

आघात् पहुँचाया जाता है। यह स्मरण रखना चाहिये कि इस बीच कम्पायमान अभिलेखक निरन्तर समय चिह्न (बिन्दु के रूप में) बनाता जा रहा है। प्रस्तुत प्रयोग में इन क्रमबद्ध बिन्दुओं का अन्तर सेकेण्ड का $\frac{1}{100}$ था। यद्यपि वनस्पति को

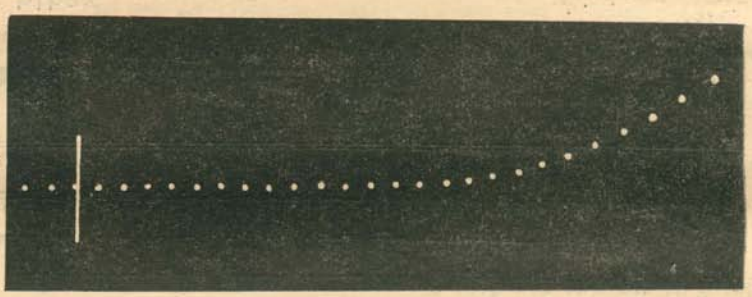

चित्र ८—लाजवन्ती की गुप्त अवधि का अभिलेख, २०० कम्पन अभिलेखक सहित।

उदग्र चिह्न (चित्र ४) पर आघात पहुँचा था परन्तु तत्काल कोई उत्तर नहीं मिला। दस बिन्दु तक कोई उत्तर नहीं मिला। पन्द्रह बिन्दुओं के बाद ही पौधा गतिमान् हुआ। इसलिए इस प्रादर्श (Specimen) का "अव्यक्त काल" सेकण्ड का ०·०७५ था।

थकावट

अब हम 'अव्यक्त काल' पर श्रान्ति के प्रभाव के बारे में खोज करेंगे। एक विशिष्ट प्रादर्श का "अव्यक्त काल" ताजे रहने की दशा में ०.१ सेकेण्ड था। दूसरा अभिलेख, पूर्व आघात से पौधे के स्वस्थता-लाभ करने के पहले ही लिया गया जिसके कारण उस समय पौधा श्रान्त था। अब "अव्यक्त काल" ०·१० सेकण्ड से बढ़कर ०·१४ सेकण्ड हो गया था। ताजे होने की दशा में उत्तर प्रबल है और मोड़ अधिक सीधी रहती है। श्रान्ति की दशा में उत्तर मन्द और मोड़ अधिक झुकी रहती है।

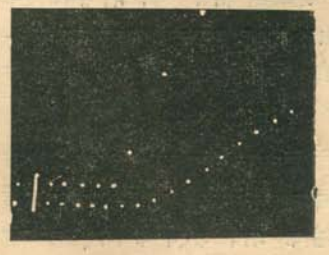

चित्र ९—गुप्त अवधि को बढ़ाने में थकावट का प्रभाव। ऊपरी अभिलेख, सामान्य; नीचे का अभिलेख, थकावट; प्रति सेकेण्ड कम्पन की आवृत्ति ५०।

(चित्र सं० ९)।

इस प्रकार पौधा विश्रान्त होने पर मन्द और अकर्मण्य हो जाता है। अत्यधिक श्रान्त

पौधा उत्तर देना बिलकुल ही अस्वीकार कर देता है। इस घबरायी हुई स्तब्ध स्थिति में, उसे फिर से अपनी स्थिरता प्राप्त करने के लिए कम से कम आधा घंटा लगता है।

एक और दिलचस्प तरीका है जिससे पौधा अपनी श्रान्ति का प्रदर्शन करता है, जैसे अनुक्रिया-विस्तार में कमी। इस प्रयोग में बीच-बीच में पूरी तरह पौधे को आराम देने के लिए १५ मिनट का अन्तर देकर पहले तीन स्वाभाविक अनुक्रियाएँ प्राप्त कर ली जाती हैं। फिर प्रागामी तीन अनुक्रियाओं या प्रतिचारों के बीच आराम का समय घटाकर दस मिनट कर दिया जाता है। विश्रान्ति के कारण अवसाद दिखाई देता है। अब हम फिर एक बार पौधे को स्वास्थ्य-लाभ का पूरा समय देते हैं और पाते हैं कि पौधे की उसकी स्वाभाविक शक्ति पुनः लौट आती है (चित्र १०)।

चित्र १०—विश्राम की लघु अवस्था में थकावट। पहली तीन समान अनुक्रियाएँ १५ मिनट के अंतराल में मिलीं, दूसरी तीन, १० मिनट के लघु विश्राम में थकावट प्रदर्शित करती हैं। पुनः १५ मिनट का अन्तराल करने पर अन्तिम अभिलेख स्वाभाविक अनुक्रिया का प्रदर्शन करता है।

इस सब से हम देखते हैं कि वनस्पति के व्यवहार और मानवोचित व्यवहार में कितना

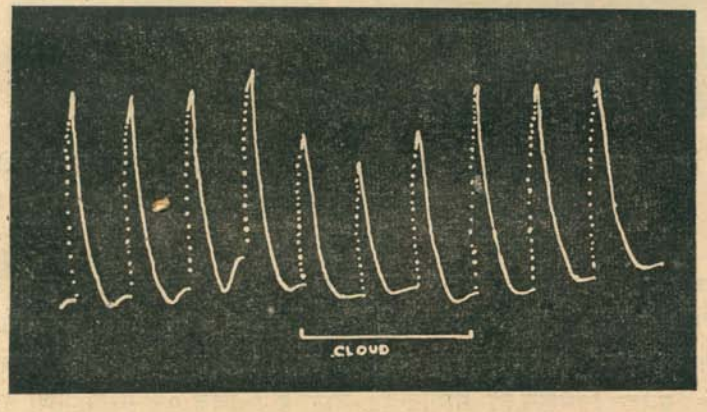

चित्र ११—जाते हुए बादल का प्रभाव

साम्य है और किसी-किसी बात में तो वनस्पति मनुष्य से भी बढ़कर होती है। मुझे इसका अनुभव एक दिन अपनी प्रयोगशाला में लाजवन्ती का अभिलेख लेते समय हुआ। मुझे एक-सी अनुक्रिया मिल रही थी किन्तु उसमें अकस्मात् अवसाद पैदा हुआ, जिसका पहले कोई कारण समझ में नहीं आया, क्योंकि सब तरफ की अवस्था अपरिवर्तित ही प्रतीत हुई। किन्तु तभी खिड़की से बाहर झाँकने पर मैंने देखा कि सूर्य के सामने से एक बादल का टुकड़ा गुजर रहा है। पौधों ने उस हल्की-सी छाया को देख लिया जिस पर मैंने ध्यान नहीं दिया था। जैसे ही बादल हटा, पौधे की स्वाभाविक ओजस्विता लौट आयी, जैसा चित्र ११ के अभिलेख से ज्ञात होता है।

तापमान का प्रभाव

वनस्पति पर केवल प्रकाश के परिवर्तन का ही नहीं, तापमान के परिवर्तन का भी प्रभाव पड़ता है। लाजवन्ती के सबसे अधिक सक्रिय होने

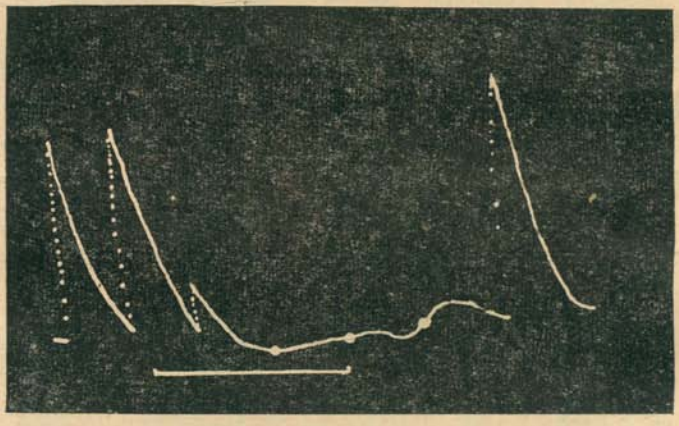

चित्र १२--अतिशीत में अनावृत होने का प्रभाव। उत्तेजना को रोक देने पर आकस्मिक अवनमन पर ध्यान दीजिये और बाद के निरंतर प्रभाव पर भी ध्यान दीजिये।

के लिए लगभग एक निश्चित तापमान आवश्यक है। यह अनुकूलतम तापमान ३३°C या ९१°F होता है। जब तापमात ११°C पर गिराया जाता है तब वनस्पति शीत के कारण ठिठुर कर लगभग शक्तिहीन हो जाती है। एकाध डिग्री और नीचे आने पर इसका संवेदन बिलकुल ही समाप्त हो जाता है। चित्र १२ में देखा जा सकता है कि अत्यधिक शीत के कारण पौधे ने चेतना पूर्णतः खो दी है। निम्न रेखा शीत-स्थिति

की वह अवधि बताती है जिसके बाद पौधे को स्वाभाविक और अनुकूल तापमान मिलने दिया गया। किन्तु शक्तिहीनता की यह स्थिति काफी समय तक बनी रही, जैसा कि मोटे बिन्दुओं से अंकित चिह्नों पर आघात की अनुक्रिया न होना दिखाता है। जब तापमान अधिक ऊपर उठा दिया जाता है, वनस्पति ताप के कारण पीड़ित हो जाती है और उसकी अनुक्रिया की शक्ति घट जाती है। अत्यधिक तापमान में उसे ऊष्माघात-सा हो जाता है और वह मृत हो जाती है।

बोध की अभिसीमा

मनुष्य के इस दर्प को कि वह अत्यधिक सचेतन जीव है, एक कठोर आघात लगता है जब किसी-किसी पौधे में सृष्टि की इस श्रेष्ठतम कृति से भी कहीं अधिक चेतना पायी जाती है। हाँ, यह तो मानना होगा कि वनस्पति लगभग बधिर है, क्योंकि ध्वनि का उस पर लगभग नहीं के बराबर प्रभाव पड़ता है। दृश्य और अदृश्य प्रकाश-किरणों के विभिन्न अष्टकों के प्रतिबोधन के विषय में स्थिति बिलकुल भिन्न है। लाखों व्योम-तरंगों में से एक ही अष्टक को, जो लाल और बैंगनी के बीच है, मनुष्य की दृष्टि पकड़ पाती है। वनस्पति न केवल दृश्य प्रकाश को ही बल्कि वर्णक्रम (स्पेक्ट्रम) की दोनों सीमाओं पर अदृश्य-पार नीललोहित (अल्ट्रावायलेट) और वितन्तु अधोरक्त (वायरलेस इन्फारेड) तरंगों को भी देख लेती है।

बोध की तीक्ष्णता

मनुष्य का सबसे अधिक सचेतन अंग अनुशासनहीन जिह्वा है। परिष्कृत विद्युत्-यन्त्रों के आविष्कार के पहले जिह्वा से ही अत्यधिक क्षीण विद्युत्-वाह का पता लगाया जाता था। इसे जिह्वा के छोर के ऊपर और नीचे एक चाँदी का और एक ताँबे का सिक्का रखकर सहज ही सिद्ध किया जा सकता है। जैसे ही दोनों सिक्के एक-दूसरे का स्पर्श करते हैं, दोनों भिन्न धातुओं के स्पर्श से एक क्षीण विद्युत्-वाव उत्पन्न होता है। वाह की गति से उत्पन्न क्षोभ के कारण एक विचित्र स्वाद उत्पन्न हो जाता है। साधारण यूरोपीय व्यक्ति अपनी जिह्वा से छः माइक्रोएम्पियर जितने क्षीण विद्युत्-वाह का पता लगा सकते हैं [एक माइक्रोएम्पियर विद्युत्-वाह के एकक (Unit) का प्रयुतांश होता है]। ऐसा लगता है कि यह शक्ति भिन्न-भिन्न जातियों में जातिगत विशेषताओं के अनुसार थोड़ी-बहुत बदलती रहती है। हो सकता है कि केल्टों की जिह्वा अरसिक ऐंग्लोसैक्सनों की जिह्वा से अधिक उत्तेजनामय हो! कुछ भी हो, मेरे हिन्दू विद्यार्थियों की संवेदनशीलता इस सम्बन्ध में साधारण यूरोपियनों की संवेदन-शीलता से दूनी है। परन्तु पंक्तिपत्र (वायोफाइटम्) का पौधा किसी यूरोपीय से आठ

गुना और हिन्दू से चौगुना अधिक संवेदनशील पाया गया। ये निरूपण जितने ही अप्रत्याशित हैं, उतने ही आश्चर्यजनक भी हैं। ये सिद्ध करते हैं कि मनुष्य और पशुओं के ये दावे कि वे अपने "तुच्छ समझे जाने वाले भाई वनस्पति" से संवेदनशीलता में उच्चतर हैं, गहराई से देखने पर खरे नहीं उतरते।

इस सामान्य वर्णन में मैं वनस्पति पर आघात के प्रभाव के विषय में, उत्तर-दाता शक्ति को क्षीण करने वाली श्रान्ति के प्रभाव और प्रकाश के तनिक भी घटने-बढ़ने के इसके ज्ञान के बारे में, जो मनुष्य के ज्ञान से कहीं अधिक है, कह रहा था।

यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि क्या वनस्पति पर चेतना का आरोपण उचित है। कठिनाई यह है कि किस प्रकार चेतना को स्पष्ट किया जाय और एक ऐसी रेखा खींची जाय जिसके नीचे चेतना वर्तमान न हो और जिसके ऊपर वह जीवन-क्षेत्र में पदार्पण करती हो।

दो प्रकार से जीवन-सम्बन्धी ज्ञान की सीमा बढ़ायी जा सकती है। हम इस सिद्धान्त से आरम्भ कर सकते हैं कि विभिन्न प्रकार के जीवों की सृष्टि विशेष रूप से हुई है। उनके शारीरिक और मानसिक गुण विशिष्ट हैं। या सम्बन्धित रूपों में समानता पाने पर हम क्रमिक विकास में विश्वास कर सकते हैं। हम इस सम्बन्ध में डारविन के आजीवन-कार्य के लिए आभारी हैं, जिसके कारण विभिन्न जीवों के (विकास-जन्य) उद्भव का यह सिद्धान्त मान्य हो चुका है। उद्विकास की यह प्रक्रिया न केवल नये रूपों के विकास में ही बल्कि विभिन्न जीवनावश्यक प्रकार्यों के निष्पादन के लिए आवश्यक विशेष अंगों के विकास में भी सक्रिय रही है। चिर काल से प्रचलित यह विचार कि प्राणियों और वनस्पति की शारीरिक रचनाएँ, चूंकि उनकी वृद्धि विपरीत स्तर पर हुई है, मूलतः भिन्न हैं, अभी भी चल रहा है। किन्तु इस कृति में जो साक्ष्य प्रस्तुत किया जा रहा है, वह यह स्पष्ट करने के लिए यथेष्ट है कि यह विचार बिलकुल निर्मूल है।

अब चेतना के प्रश्न पर फिर से विचार किया जाय। हम साधारणतया कहते हैं कि हमारे प्रिय पशुओं, उदाहरण के लिए कुत्तों में चेतना होती है। हम सहानुभूति के कारण इसे अनुभव कर पाते हैं। किन्तु क्या मछली में भी चेतना है? कुछ लोगों की सम्मति में है, कुछ की सम्मति में नहीं है। जन्तु-जगत् में चेतना जीवन के किस स्तर पर आरम्भ होती है? बर्गसाँ ने इस प्रश्न पर अपनी 'माइण्ड एनर्जी' नामक पुस्तक में विचार किया है।

चेतना के लिए मस्तिष्क अनिवार्य है—यह बात कहीं से सिद्ध नहीं होती। प्राणि-श्रेणी में हम जितने ही नीचे जाते हैं, तंत्रिका-संस्थान केन्द्र (नर्व सेंटर्स) उतने ही

अधिक सरल और एक-दूसरे से अलग होते जाते हैं। अन्त में वे बिना किसी विशेष अलगाव के जीवधारी की रचना के सामान्य समूह में लुप्त हो जाते हैं। फिर यदि प्राणि-श्रेणी के उच्चतम शिखर पर चेतना का सम्बन्ध जटिल तंत्रिका संस्थान के केन्द्रों से है, तो क्या हमें यह नहीं मान लेना चाहिये कि चेतना का विस्तार पूरी श्रेणी के अन्त तक है और जहाँ तंत्रिकाएँ स्वतंत्र रूप छोड़कर अविभेदित जीवनयुक्त पदार्थ (अनडिफरेन्शियेटेयड लिविंग मैटर) में भी समा जाती हैं, वहाँ भी चेतना हलकी भले ही पड़ गयी हो किन्तु बिलकुल लुप्त नहीं होती ? ऐसी स्थिति में सिद्धान्त रूप से सभी जीवनयुक्त वस्तुएँ चेतनामय हो सकती हैं। सिद्धान्त रूप से चेतना और जीवन सहविस्तारी हैं। जब अमीबा किसी ऐसी चीज के सामने आता है जिसे वह अपना भोजन बना सकता है तो वह अपने प्रतन्तु (फिलेमेंट्स) उसकी ओर बढ़ाता है जिससे वह बाह्य पदार्थों को खींचकर अपने में समेट ले। ये कूटपाद (Psundopodium) वास्तविक अंग हैं और इसलिए शरीरयन्त्र की संरचना के अन्तर्गत आ जाते हैं; किन्तु वे अस्थायी अंग होते हैं जिनका सर्जन कार्यविशेष के लिए होता है। यह अत्यधिक सम्भव है कि चेतना; जो आरम्भ में सब जीवों में मौलिक रूप से स्थित रहती है, जहाँ स्वतः स्फूर्त गति नहीं रह जाती वहाँ सुषुप्त रहती है और जब जीवन स्वतः स्फूर्त हो जाता है तब जाग्रत हो जाती है।

इस प्रकार प्राणि-जीवन में चेतना का सम्बन्ध अन्तःस्थ अप्रत्यक्ष कारणों से स्वतःस्फूर्त या स्वेच्छाप्रेरित गति से सम्बद्ध माना जाता है। यह तंत्रिका प्रतिक्रियाओं (नर्वस रियेक्शन) से भी सम्बन्धित है। यह माना जाता है कि ये दो विशिष्ट गुण वनस्पति में बिलकुल नहीं हैं।

इन अति सूक्ष्म प्रश्नों को छोड़कर, जिन पर अधिकारी जनों का विचार अत्यधिक विभक्त है, हम यहाँ परीक्षणात्मक तथ्य और उनके निहितार्थ पर विचार करेंगे। अब यह स्पष्ट हो जायगा कि उच्चतम प्राणियों की कोई भी ऐसी विशेषता नहीं है जो वनस्पति में पूर्वाभासित न हो। हम पायेंगे कि सभी वनस्पति, यहाँ तक कि स्थिर एवं परिदृढ़ वृक्ष भी देखते हैं, अनुभव करते हैं और उनमें प्रत्यक्ष रूप से बाह्य उद्दीपना के प्रति अनुक्रिया होती है। यहाँ तक कि ऐच्छिक गति भी, जो प्राणी का विशिष्ट गुण है, वनस्पति में अनुपस्थित नहीं है, सुप्त भी नहीं है वरन् सक्रिय रूप से विद्यमान हैं। मैं बाद के अध्याय में उन प्रयोगों का वर्णन करूँगा जिनसे यह सिद्ध होगा कि बहुत-सी वनस्पतियों का तंत्रिका-संस्थान ऐसा है जिसमें विभेद पहचानने की शक्ति उच्च श्रेणी की है।

वनस्पति के संवेदनांग विलक्षण होते हैं, जिनके निर्देशन में वनस्पति के विभिन्न अंग अपने आपको अपने चारों ओर के पर्यावरण के अनुकूल बना लेते हैं। इस प्रकार के समायोजन हमें प्राणि-व्यवहार का स्मरण कराते हैं।

मनुष्य में भी, जब से वह गर्भ में आता है और जब तक वह वृद्धि की पूर्णता प्राप्त करता है, चेतना अस्तित्व में कब आती है? क्या हम नहीं जानते कि वह सदैव उपस्थित रहती है, भले ही पहले गुप्त रहे किन्तु पूरे समय अलक्षित रूप से पूर्ण विकास की ओर अग्रसर होती रहती है। दूसरे शब्दों में, विकास का क्रम अविराम चलता रहता है जिसमें हम अपूर्ण एवं अविकसित तत्त्वों से आरम्भ करके अधिकाधिक पूर्णता की ओर बढ़ते जाते हैं। इसलिए सृष्टि के निम्नतम रूप से भी यदि हमारा सम्बन्ध हो तो इसमें कोई लज्जा की बात नहीं, बल्कि मनुष्य के लिए यह गर्व की ही बात है कि प्राणि-श्रेणी के निरन्तर संघर्ष में वह प्ररसीय श्लेष्मक (Protoplasmic jelly) से अपनी वर्तमान स्थिति पर पहुँच गया है।

अध्याय ४

भेषज-उपचारित वनस्पति

लाजवन्ती के चेतनाशील पीनाधार के संकुचन से हम पौधे की यान्त्रिक अनुक्रिया का अभिलेख पा सकते हैं। पीनाधार और पेशी, दोनों संकुचनशील अवयवों की कार्यपरक समानता केवल बाह्य गति के प्रकाशन तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उसकी बुनियादी प्ररसीय संरचना तक पहुँची हुई है।

कूर्म और शशक

जैविक पेशी की गति-त्वरता के सम्बन्ध में कूर्म और शशक स्पष्ट भिन्नता प्रस्तुत करते हैं। शीघ्रगामी प्राणी में प्रतिक्रिया त्वरित होगी ही, जब कि मन्दगामी प्राणी में प्रतिक्रिया मन्द होती है। बाज के समान शिकारी पक्षियों की पक्षपेशी बहुत सक्रिय होती है, जब कि कलहंस की कम सक्रिय और पालतू मुर्गे की पेशी प्रायः निष्क्रिय-सी ही होती है, इनकी उड़ने की शक्ति व्यवहारतः लुप्त हो चुकी रहती है। वह कौन-सी वस्तु है जो गति की इस अत्यधिक तीव्रता का कारण है? आश्चर्य की बात भले ही लगे किन्तु वनस्पति के पर्ण में भी प्राणी के तीन प्रकार के अंगों के अनुरूप तीन प्रकार के प्रेरक अंग होते हैं---सक्रिय, अर्ध-सक्रिय और निष्क्रिय।

पीनाधार की प्रेरक प्रतिक्रिया

सामान्य लाजवन्ती में उद्दीपना की अनुक्रिया बहुत त्वरित होती है। संकोची गिराव एक सेकेण्ड से थोड़े समय के भीतर ही पूरा हो जाता है। दूसरे चेतनाशील पौधों में गति की त्वरता अपेक्षाकृत मन्द होती है। उदाहरण के लिए, नैपचूनिया ओलेरेसिया (Neptunia Oleracea) देखने में बहुत कुछ सामान्य लाजवन्ती की तरह ही होता है। नैपचूनिया सरोवरों में होता है और पानी में तैरने के लिए अपने स्कन्धों के चारों ओर एक त्वक्षा-पट्टक (Cork-belt) बना लेता है। नैपचूनिया के पर्ण की गति इतनी मन्द होती है कि इसके गिरने में एक मिनट से अधिक समय लग जाता है। अन्त में, रनरबीन नामक सेम के पौधे (Phaseolus) के पीनाधार की गति अत्यधिक मन्द होती है।

अब सक्रिय अंग की ओर ध्यान दें। लाजवन्ती के पीनाधार की बाह्य कोशिकाओं का संकुचन ही पत्तियों के गिराव का कारण है। जैसा पहले कहा जा चुका है, सेम का पीनाधार निष्क्रिय होता है, यद्यपि शरीर-रचना के अनुसार इसकी बाह्यक कोशिकाएँ लाजवन्ती की कोशिकाओं के समान ही होती हैं। अंग की सही क्रिया के लिए अब तक शारीरिक समानता को व्यर्थ ही इतना महत्त्व दिया जाता था। यह मापदण्ड कितना भ्रामक है, यह ऊपर दिये गये तथ्यों से ही सिद्ध हो जाता है। शारीरिक बनावट नहीं, बल्कि ऊति अथवा तन्तु की प्रसीय (Protoplasmic) अन्तर्वस्तु ही किसी अंग के कार्य विशेष के लिए शारीरिक दक्षता निर्धारित करती है। अंग की क्रियाशीलता प्रसव में कुछ सक्रिय पदार्थ की उपस्थिति पर निर्भर है। जैसा हम अभी देखेंगे।

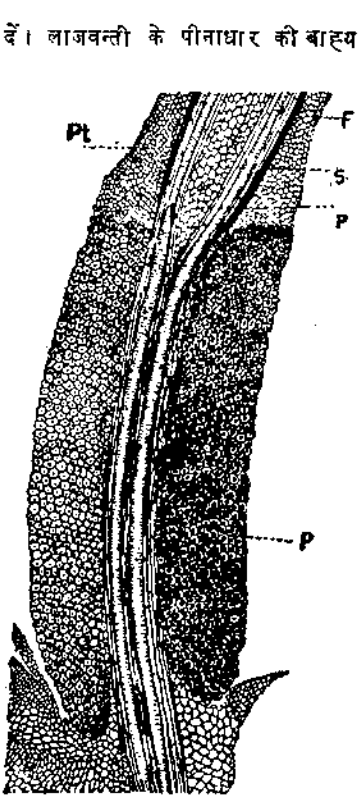

चित्र १३—लाजवन्ती के पर्णवृन्त और पीनाधार का लम्बा भाग, ऊपरी और निम्नवाही पूलों से होकर जा रहा है। Pt पर्णवृन्त की बाह्यक कोशिकाएँ जो अनभिरंजित रहती हैं। नीचे का P दाहिनी तरफ, पीनाधार की संकोची कोशिकाएँ गहरी अभिरंजित।

पेशीय ऊतकों का सीमांकन

किसी सक्रिय पदार्थ की उपस्थिति कैसे निश्चित हो? यदि हम अणुवीक्षक में लाजवन्ती के पीनाधार के अन्वायाम कटे हुए टुकड़े (Longitudinal section) की परीक्षा करें तो यह ज्ञात करना असम्भव है कि संकोचन-कोशिकाएँ कहाँ से आरम्भ होती हैं, कहाँ समाप्त होती हैं और वे किस प्रकार से वितरित रहती हैं। किन्तु मुझे इसमें कुंकुमी (Safranin) द्वारा वरणात्मक अभिरंजन (Selective staining) करने से सफलता मिल गयी। इस अभिरंजन द्वारा आश्चर्यजनक परिणाम मिले। ऐसा लगता था जैसे किसी हाथ ने अत्यधिक सावधानी के

साथ एक-एक सक्रिय संकोची कोशिका को चुनकर उसकी प्ररसीय अन्तर्वस्तु को गहरे किरमिजी रंग (Crimson) से रँग दिया हो। संकोची ऊतक की रेखा अब स्पष्टतः निश्चित थी (चित्र १३)।

तीव्र अणुवीक्षक द्वारा विशालन में सक्रिय कोशिकाओं की अभिरंजित प्ररसीय अन्तर्वस्तु स्पष्टतः कणात्मक रूप में दिखाई दी। अर्ध-सक्रिय नैपचूनिया में अभिरंजित

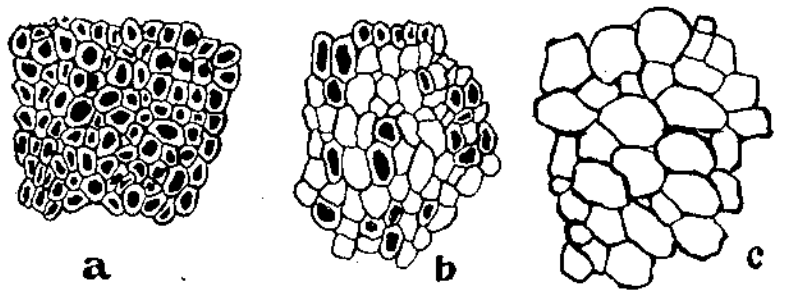

चित्र १४—(a) सक्रिय लाजवन्ती, (b) अर्धसक्रिय जल-लाजवन्ती और (c) निष्क्रिय सेम के स्थूलाधार भागों के भाण्ड चित्रों की प्रतिकृति। संकोची कोशिकाओं के अभिरंजित भाग गहरे रंग के है।

प्ररसीय कोशिकाओं का वितरण विकीर्ण रहता है, लाजवन्ती की कोशिकाओं की तरह सघन नहीं। निष्क्रिय सेम (Bean-plant) की पीनाधारी कोशिकाओं में कोई

चित्र १५—(a) बाज, (b) बत्तख और (c) घरेलू कुक्कुट की अंसपेशियों के तिर्यक् भाग। कणात्मक पदार्थ (गहरा रंग) की सम्बन्धित मात्रा, पक्षी की निरन्तर उड़ान से प्रत्यक्ष परिवर्तित होती है।

अभिरंजन नहीं हुआ, क्योंकि सक्रियताकारक पदार्थ इनमें पूरी तरह अनुपस्थित था (चित्र १४)। यह बड़ी ही विलक्षण बात है कि जन्तु-पेशी की सक्रियता भी किसी

सक्रिय पदार्थ की उपस्थिति और उसके आपेक्षिक वितरण पर निर्भर रहती है (चित्र १५)। लाजवन्ती का पीनाधार इस प्रकार कार्यशीलता में सक्रिय जन्तु-पेशी की ही तरह माना जा सकता है।

सब प्रकार की गतिशीलता अन्ततः जारण या दहन की क्रिया पर निर्भर है। एक इंजन में गति शील मशीनरी का वेग ईंधन के उपभोग की मात्रा के अनुपात में होता है। दहन की मात्रा जितनी ही अधिक होगी, गति भी उतनी ही अधिक वेगवती होगी। इसी प्रकार जीवित यन्त्र में भी तीव्र गति के लिए दहन की मात्रा महत्त्वपूर्ण है। प्रस्तुत मामले में उपस्थित सक्रिय वस्तु अत्यधिक जारणीय है।

अनुक्रिया की विभिन्नता

अब हम परिवर्तित बाह्य परिस्थितियों में वनस्पति की अनुक्रिया की विभिन्नता का अध्ययन करेंगे। पिछले परिच्छेद में यह दिखाया गया था कि वनस्पति की प्रतिक्रिया किस प्रकार प्राणी की, और यहाँ तक कि मनुष्य की प्रतिक्रिया से मिलती-जुलती है, किस प्रकार हमारी ही तरह उन पर भी प्रकाश और अन्धकार, ऊष्मा और शीत तथा विश्राम और थकान का प्रभाव पड़ता है। और भी कुछ कारक हैं जिनका हम पर काफी प्रभाव पड़ता है, उदाहरणार्थ, जिस हवा में हम साँस लेते हैं, उसकी शुद्धता और अशुद्धता। फिर बहुत-सी ऐसी औषधियाँ हैं जिनका हम पर एक खास तरह का प्रभाव पड़ता है, जो कभी लाभकर और कभी हानिकर होता है।

उदाहरणार्थ, हम जिस हवा में साँस लेते हैं उसी को लें। नगर की दूषित वायु हममें अवसाद उत्पन्न करती है और पूरे स्वास्थ्य के सामान्य स्तर को नीचे गिरा देती है। किन्तु दूसरी ओर यदि हम खुले देहातों की ओर जायँ तो वहाँ की या चीड़-वृक्षों के नीचे की प्रजारक वायु हमारे खोये हुए स्वास्थ्य और शक्ति को फिर लौटा देती है। एक वायुहीन बन्द कमरे की हानि और उचित संवातन की आवश्यकता को सोचिये। मनुष्य की बुरी आदतों की ओर भी ध्यान दीजिये। किस प्रकार उसे सुरा की आदत पड़ जाती है और किस प्रकार सुरा उसका अन्त कर देती है।

फिर विभिन्न प्रकार के प्रमीलकों (Narcotics) को ही लीजिये, जिनका प्रयोग हम नींद लाने के लिए या सर्जन की छुरी से बेखबर बने रहने के लिए करते हैं। इन औषधियों में से कुछ, जैसे कि ईथर, लगभग खतरनाक नहीं होतीं क्योंकि इनसे मनुष्य को बेहोश करने के बाद वाष्प को उड़ाकर चेतना लौटायी जा सकती है।

क्लोरोफार्म इससे अधिक तीव्र प्रमीलक है और यद्यपि यह अधिक प्रभावी है किन्तु इसकी मात्रा सहज ही बढ़ायी जा सकती है जिसका परिणाम घातक हो सकता है।

आइये अब देखें कि ये सब या इनमें से एक भी प्रतिक्रिया, जो मनुष्य और पशुजीवन में इतनी स्पष्ट है, क्या वनस्पति जीवन में भी है। सर्वप्रथम हमें एक ऐसा उपाय ढूँढ़ना पड़ेगा जिससे वनस्पति पर विभिन्न गैसों और प्रमीलक वाष्पों का प्रभाव डाला जा सके। इसके लिए हम पौधे को एक काँच-मण्डल (ग्लास-चैम्बर) में, जिसमें प्रवेश और निष्क्रमण की दो नलियाँ लगी रहती हैं, बन्द कर देते हैं। तब इस मण्डल में गैसें और वाष्प भरी जाती हैं। वायु निष्क्रमण-नली से बाहर निकल जाती है। फिर उसके पश्च-प्रभाव की परीक्षा के लिए शुद्ध वायु भरी जा सकती है। यदि गैसों का पौधे पर प्रमीलक-प्रभाव अस्थायी है, तब तो शुद्ध वायु द्वारा उसे पुनः चेतन किया जा सकता है। किन्तु यदि प्रमीलक की मात्रा सुरक्षा-सीमा को पार कर जाती है या यदि गैस अत्यधिक विषाक्त होती है, तो मृत्यु विजयी होती है, और चेतना के लौटने की सम्भावना नहीं रहती।

तरल औषधियों को हम पौधों की जड़ों में डालते या उनकी कटी शाखाओं के छोरों पर लगाते हैं और वनस्पति के चूषण से वे सभी ऊतकों में फैल जाती हैं। अनुसार जो प्राणी के लिए मृत्युदात्री है वही वनस्पति के लिए जीवनदात्री है। यह

कार्बनिक अम्ल गैस

मैं सर्वप्रथम कार्बनिक अम्ल गैस के प्रभाव का वर्णन करूँगा। लोकमत के अनुसार जो प्राणी के लिए मृत्युदात्री है वही वनस्पति के लिए जीवनदात्री है। यह

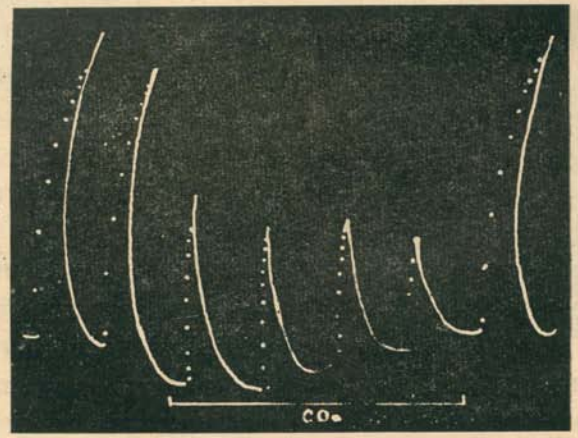

चित्र १६—कारबोनिक एसिड गैस का प्रभाव।

माना जाता है कि पौध कार्बनिक अम्ल गैस के घातक वातावरण में फलते-फूलते हैं। किन्तु अभिलेख यह दिखाता है कि ऐसी स्थिति में फलने-फूलने के बजाय वनस्पति का भी मनुष्य की तरह ही दम घुटने लगता है। शुद्ध वायु पुनः मिलने पर लिया गया गहरा मुक्ति-निःश्वास नोट करने के लायक है (चित्र १६)। इस विषय में हमें स्मरण रखना चाहिये कि अधिकतर जीवित पदार्थों को, जिनमें वनस्पति भी है, श्वास के लिए ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। किन्तु प्राणियों के विपरीत हरित वनस्पतियों में प्रकाश रहते वायु से ग्रहण की गयी कार्बनिक अम्ल गैस को विशुद्ध कर देने की क्षमता होती है। वे उसके ऑक्सीजन वाले अंश को बाहर कर देती हैं और कार्बन को अपने पोषण के लिए रख लेती हैं।

इस कार्बन के आत्मीकरण की शक्ति को उनके श्वास के लिए ऑक्सीजन की आवश्यकता के साथ न मिला देना चाहिये। यह (ऑक्सीजन) वनस्पति और प्राणी दोनों के जीवन के लिए अनिवार्य है।

कार्बनिक अम्ल गैस के प्रभाव के विपरीत ओजोन (Ozone) का प्रभाव बहुत ही शक्तिप्रद होता है, जिसके कारण अनुक्रिया में भी तेजी आ जाती है।

सल्फ्यूरेट्येड हाइड्रोजन (H_2S)

यह तो सर्वविदित है कि बहुत-से पौधे नगर के वायुमण्डल में नहीं पनपते। उदाहरण के लिए सामान्य पक्तिपत्र (Biophytum sensitivum), जिसकी अत्यधिक छोटी पत्तियाँ, अल्पतम उद्दीपना से ही फड़फड़ाने लगती हैं, मेरी कलकत्ते की प्रयोगशाला में प्रसन्न नहीं रखे जा सके। नगर से सात मील की दूरी पर बाहर मैंने उसे जीवन से परिपूर्ण और अत्यधिक सचेतन पाया। नगर के वातावरण में बहुत-सी गैसें मिली रहती हैं, जैसे सल्फर डाइआक्साइड और सल्फ्यूरेटेयेड हाइड्रोजन, जो दोनों ही पौधे के लिए बहुत हानिकारक होती हैं। इसे चित्र १७ में देखा जा सकता है। यहाँ सल्फ्यूरेटेयेड हाइड्रोजन के प्रयोग ने सारे संवेदन समाप्त कर दिये हैं। तीन मोटे बिन्दु उन तीनों शक्तिशाली आघातों

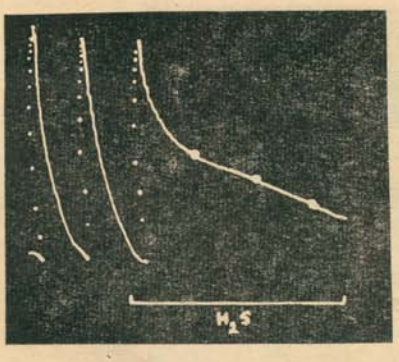

चित्र १७—सल्फ्यूरेट्येड हाइड्रोजन का प्रभाव।

को बताते हैं जिनकी कुछ भी प्रतिक्रिया नहीं हुई। बाद में वह पौधा मरा पाया गया।

ईथर

ऐसे घातक विषों के बाद अब हम प्रमीलकों की ओर बढ़ते हैं। सर्वप्रथम ईथर को लीजिये। इस अभिलेख (चित्र १८) से ज्ञात होता है कि इसके प्रयोग के

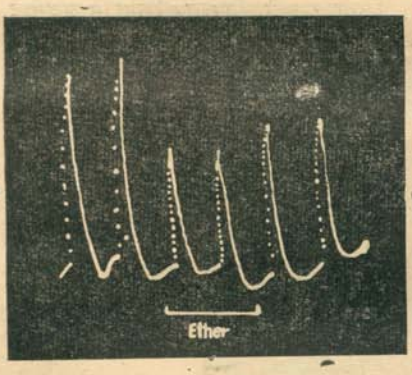

चित्र १८—ईथर का प्रभाव।

चित्र १९—क्लोरोफार्म का प्रभाव।

बाद वनस्पति की उत्तेजनशीलता समाप्त होने लगती है। ठीक वैसे ही जैसे ईथर देने के पश्चात् मनुष्य की चेतना नष्ट हो जाती है। प्रमीलक वाष्प को उड़ा देने पर पौधा पुनः धीरे-धीरे अपनी स्वाभाविक संवेदनशीलता को प्राप्त कर लेता है।

दूसरे प्रयोगों के फलस्वरूप यह ज्ञात हुआ कि ईथर की बहुत ही अल्प मात्रा चेतना को बढ़ाती है। इससे एक विलक्षण तथ्य प्रकट होता है कि किसी भी भेषज का प्रभाव उसकी मात्रा बदल देने से बदल जाता है। साधारणतया अत्यधिक अल्प मात्रा का प्रभाव अधिक मात्रा के प्रभाव का ठीक उलटा होता है।

क्लोरोफार्म

चिकित्सीय दृष्टि से ईथर क्लोरोफार्म से अधिक सुरक्षित प्रमीलक पाया गया है। क्लोरोफार्म की तनिक भी अधिक मात्रा घातक हो सकती है। चित्र सं०

१६ में पौधे पर क्लोरोफार्म की अधिक मात्रा का प्रभाव दिखाया गया है। इसके द्वारा न केवल उत्तेजनशीलता का पूरी तरह ह्रास हो गया बल्कि एकाएक ही एक ऐंठन-सी होने लगी जो ऊपर की ओर उठती हुई रेखा के रूप में दिखाई पड़ती है। इसके बाद वाष्प को उड़ाने पर भी पादप फिर से जीवित नहीं हो पाया। इससे मृत्यु के विवर्णता-विशेष का पता चलता है।

अल्कोहल (सुषव)

अक्सर सुषव की मन्द वाष्प का तात्कालिक प्रभाव थोड़ी देर के लिए उत्तेजनशीलता में वृद्धि के रूप में होता है। किन्तु इसकी निरन्तर क्रिया से अवसाद

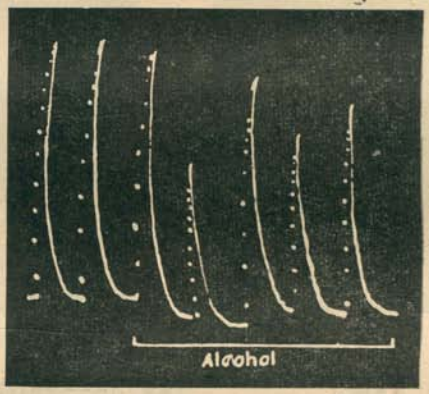

चित्र २०—अल्कोहल का प्रभाव।

पैदा होता है। नशे में धुत वनस्पति की यह भद्दी एवं अस्थिर गति (चित्र २०) निश्चय ही किसी संयम-सम्बन्धी भाषण में उदाहरण के लिए उपयोग की जा सकती है।

अध्याय ५

विद्युत्-अनुक्रिया

जीवित ऊतक इसीलिए सचेतन समझा जाता है, क्योंकि यह बाहरी उद्दीपना के प्रति अनुक्रिया करता है। जब तक यह जीवित है तब तक अनुक्रिया करता रहेगा। अनुक्रिया के बाद विश्राम से तरोताजा होकर यह पुनः नये सिरे से अनुक्रिया के लिए तैयार हो जाता है। थोड़ी देर के लिए विक्षुब्ध हो गये जीवन के सन्तुलन को पुनः अपने आप प्राप्त कर लेने वाली बात पहाड़ से धक्का देकर लुढ़काये हुए पत्थर की बात से भिन्न है। क्योंकि पत्थर पुनः अपने आप मूल स्थिति को नहीं पा सकता। किन्तु जीवित ऊतक उद्दीपना समाप्त होते ही पुनः अपनी स्थिरता प्राप्त कर लेता है।

जैसा पिछले अध्यायों में अभिलिखित है, वनस्पति की उद्दीपना-अनुक्रिया चर अंग के संकोचन से प्रदत्त यान्त्रिक क्रिया है। यह देखा गया है कि अनुक्रिया की गहनता अंगों की कोशिकाओं में वर्तमान एक सक्रिय पदार्थ की उपस्थिति पर निर्भर है। साधारणतया उस अनुक्रिया-गति के प्रदर्शन पर, जिसे हमने अभी तक ऊतक की संवेदनशीलता के प्रमाण के रूप में स्वीकार किया है, वनस्पति-ऊतकों में एक प्रकार का शारीरिक नियन्त्रण रहता है। एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि जो ऊतक गति नहीं प्रदर्शित करते वे भी क्या उद्दीपना के प्रति संवेदनशील हैं? क्या सभी पौधे और उनके विविध अंग, पर्ण, स्कन्ध, मूल, फूल और फल उद्दीप्य हैं? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए एक ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता है जो गति की अनुपस्थिति में भी जीवित अंगों की उत्तेजना का पता लगा सके।

केवल गति ही उत्तेजना की प्रतिक्रिया का लक्षण नहीं है। उद्दीपना, उद्दीप्य ऊतक में एक विद्युत्-परिवर्तन लाती है। यदि हम जीवित स्कन्ध का एक टुकड़ा लें तो उसकी सतह के ऊपर के कोई दो बिन्दु 'A' और 'B' यदि विश्राम की दशा में हैं तो एक ही वैद्युत स्थिति में पाये जायेंगे। इन दोनों बिन्दुओं 'A' और 'B' की वैद्युत स्थिति गैलवनोमीटर (Galvanometer) से, जो विद्युत्-वाह ज्ञात का एक बहुत ही संवेदनशील यन्त्र है, उपयुक्त रूप से जोड़ देने पर प्रदर्शित की जा सकती है। जब दोनों बिन्दु विश्राम की दशा में होते हैं, तब दोनों की विद्युत्-स्थिति एक-सी रहती

है और गैलवनोमीटर के भीतर कोई विद्युत्-वाह नहीं होता। अब यदि हम चिकोटी काट कर या आघात देकर बिन्दु 'B' को उद्दीपना पहुँचायें तब बिन्दु 'A' के सम्बन्ध में बिन्दु 'B' का विद्युत्-तल बाधित होगा और गैलवनोमीटर के भीतर 'A' से 'B' तक एक विद्युत्-वाह जायगा जिससे एक अवनमन दिखाई पड़ेगा। गैलवनोमीटर में उद्दीप्त बिन्दु 'B' बिन्दु 'A' के सम्बन्ध में ऋणात्मक रहेगा।

बिन्दु 'A' को उद्दीप्त करने पर विपरीत दिशा में विद्युत्-वाह होगा (चित्र सं० २१)। सुविधा के लिए अब से हम उद्दीप्त बिन्दु के इस विद्युत्-परिवर्तन को ऋणात्मक (Negative) कहेंगे। कुछ समय पश्चात् जब ऊतक पुनः सँभल जाता है तो उद्दीपना द्वारा किया गया विद्युत्-परिवर्तन भी लुप्त हो जाता है।

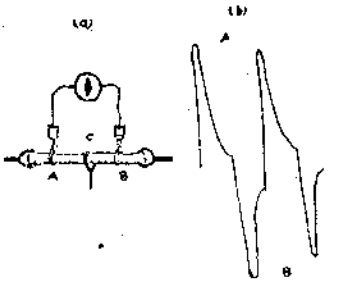

चित्र २१—जब A उद्दीप्त होता है तब अनुक्रिया की धारा→ जब B उद्दीप्त होता है, तब अनुक्रिया की धारा→ (a) वैद्युतअनुक्रिया पाने की प्रणाली। (b) A पर उद्दीपना देने से गैलवनोमीटर के आर-पार अनुक्रिया की धारा B से A तक जाती है (ऊपरी मोड़); B पर उद्दीपना द्वारा विपरीत दिशा में धारा जाती है (नीचे का मोड़)।

निम्नलिखित रीति को प्रेरित विद्युत्-परिवर्तन के अभिलेख के लिए अपनाया गया। अनुक्रियात्मक विद्युत्-वाह का अभिलेख करने वाले गैल्वनोमीटर में एक तार रहता है, जिसके मध्य में एक चुम्बक लटकता है, जिसकी लम्बाई उस तार के समतल के समानान्तर रहती है। जब भी कोई विद्युत्-वाह इस तार के चारों ओर बहता है तो चुम्बक एक या दूसरी दिशा में, जो विद्युत्-वाह की दिशा पर निर्भर है, घूमता है। इस चुम्बक में एक दर्पण जोड़ दिया जाता है और इस दर्पण से प्रतिबिम्बित प्रकाश-बिन्दु चुम्बक के परिभ्रमण को विशालित करता है। यह प्रतिबिम्बित प्रकाश-किरण भाररहित लम्बे विशालन के सूचक का कार्य करती है। अभिलेखन के लिए हम एक संवेदनशील पट्ट का व्यवहार करते हैं और प्रकाश की घूमती हुई किरण अनुक्रिया तथा स्वाभाविक स्थिति में लौटने का अभिलेख फोटोग्राफिक ढंग से करती जाती है। अभी हम देखेंगे कि अनुक्रिया का विद्युत्-स्पन्दन ऊतकों की जीवन-शक्ति का ठीक-ठीक निर्देशन करता है और ऊतकों की मृत्यु के बाद विद्युत्-स्पन्दन लुप्त हो जाता है।

आगे बढ़ने से पहले उत्तेजना की नाना प्रकार की अभिव्यञ्जनाओं या उनके विपरीतों की स्पष्ट अवधारणा कर लेना उचित होगा। सामान्य अवस्थाओं में पौधे का ऊतक रस से आतत (Tense) या फूला हुआ आशून होता है। यह स्थिति आशूनता की स्थिति है। उद्दीप्त करने के पश्चात् इसमें नाना प्रकार के लक्षण दिखाई देते हैं। उत्तेजना के ये संकेत हैं—(१) संकुचन (२) आशूनता का ह्रास (३) गति, जैसे लाजवन्ती के पर्ण का गिरना और (४) ऋणात्मक विद्युत् परिवर्तन। विरोधी प्रक्रिया के, जो पुनः स्वास्थ्य लाभ कराती है और कभी-कभी स्वास्थ्यलाभ अतिरेक पर पहुँचा देती है, ये लक्षण हैं—(१) विस्तार (२) आशूनता की वृद्धि (३) सीधे होने की गति, जैसे लाजवन्ती की पत्ती में और (४) धनात्मक विद्युत्-परिवर्तन।

ऊतकों की उद्दीपना

साधारण सिद्धान्तों के वर्णन के बाद अब हम वैद्युत अनुक्रिया प्राप्त करने की व्यावहारिक रीति बतायेंगे। वनस्पति को उद्दीप्त करने में सर्वाधिक कठिनाई उद्दीपना को स्थिर रखने या उसे क्रमशः बढ़ाने या घटाने की है विद्युत्-आघात उद्दीपना की सबसे अधिक संतोषप्रद रीति है। किन्तु प्रस्तुत मामले में उसका प्रयोग नहीं हो सकता था, कारण विद्युत्-धारा के आघात का च्यवन (Leakage) अनुक्रिया-धारा में विघ्न उपस्थित कर सकता है। अतः विमोटन (Torsional) कृत कम्पन (Vibration) द्वारा उत्तेजित करने की विद्युत्-रहित विधि से काम लिया गया।

यदि हम अपनी अँगुली पकड़कर उसे धीरे-धीरे मोड़ें तो उद्दीपना धीमी होगी, किन्तु यदि विमोटन (Torsional) एकदम किया जाय तो उद्दीपन अत्यधिक उग्र हो जायगा और संवेदन कष्टकर होगा। सामान्य रूप से, आघात की आकस्मिकता पर उद्दीपना की प्रखरता निर्भर करती है।

वनस्पति-सम्बन्धी प्रयोग में हम स्कन्ध का एक टुकड़ा 'A' 'B' लेते हैं और उसे एक शिकंजे (Vice) 'C' से बीच में पकड़ते हैं। यह शिकंजा एक अवरोध का कार्य करता है और आधे स्कन्ध को उद्दीपना को दूसरे आधे भाग में जाने से रोकता है। एक सिरा मान लीजिये 'B' तीन संधर जबड़ों (Clamping Jaws) 'H' में बँधा रहता है। अब मूठ (Handle) 'K' द्वारा इस सिरे में विमोटन-कम्पन (Torsional vibration) किया जाता है। 'K' कोण, जो विमोटन-कम्पन की तीव्रता निश्चित करता है, अंशांकित वृत्त (Graduated Circle) द्वारा ठीक-ठीक नापा जा सकता है। विसर्प रोधन (Sliding stop) द्वारा इसकी माप का पहले से पता लगाया जा सकता है। E, E' द्वारा 'A' 'B' का विद्युत्-संपर्क स्थापित किया जाता है जो उसे गैलवनोमीटर तक ले जाता है। पौधे को एक काँच के प्रकोष्ठ में रखा जाता

है जिसमें विद्युत् कुण्डल 'R' को गरम कर उस प्रकोष्ठ को उच्चताप तक पहुँचाया

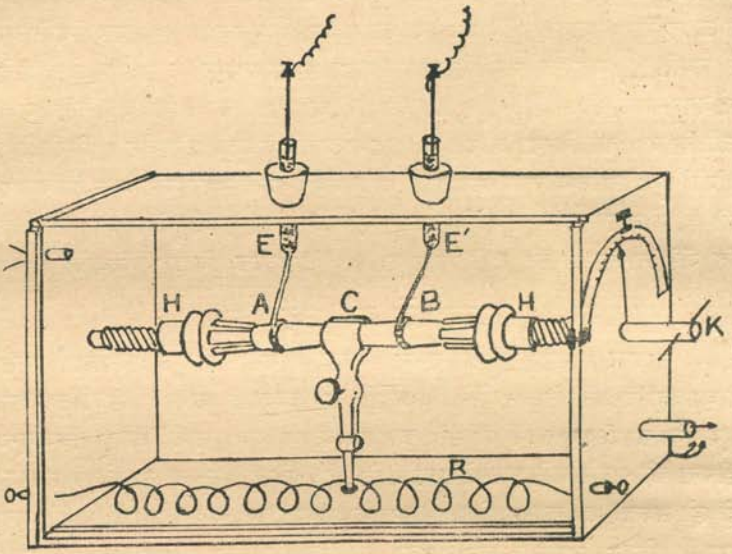

चित्र २२--बाह्य परिवर्तन द्वारा वैद्युत अनुक्रिया के आपरिवर्तन के अवलोकन के लिए उपकरण।

जा सकता है। प्रमीलकों के प्रभाव से सम्बन्धित प्रयोग के लिए, वाष्प को पार्श्व-नलिका द्वारा उड़ाया जा सकता है (चित्र २२)।

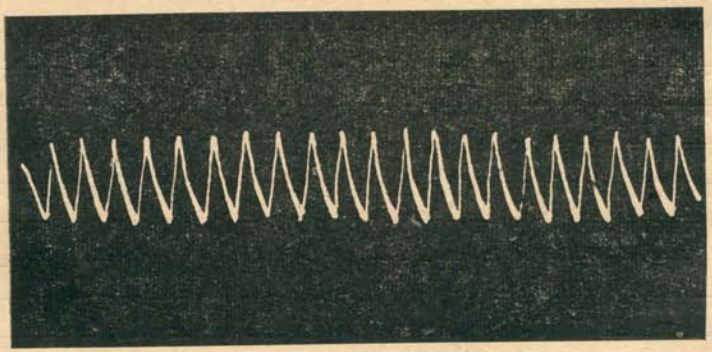

चित्र २३–विमोटित उद्दीपना (गाजर) द्वारा समान वैद्युत अनुक्रिया।

एकसमान अनुक्रिया

अब मैं वनस्पति की विद्युत्-अनुक्रिया और विभिन्न बाह्य परिस्थितियों में उनकी संपरिवर्तनशीलता का अभिलेख प्रस्तुत करूँगा। जहाँ तक पौधों की सामान्य संवेदनशीलता का प्रश्न है, गाजर से अधिक संवेदन-शून्य और निष्क्रिय वनस्पति की कल्पना नहीं की जा सकती। यह अत्यधिक उत्तेजनापूर्ण होती है और एक लम्बी अवधि तक उसकी अनुक्रियाएँ बड़ी प्रबल और क्रमिक होती हैं जिन्हें देखकर आश्चर्य होता है।

श्रान्ति

गाजर एकसमान अनुक्रिया की एक लम्बी शृंखला प्रस्तुत करती है। दूसरी ओर, कुछ पौधे शीघ्र थक जाते हैं, जैसे प्रयवानी (Celery)। किन्तु जब विश्राम की अवधि कम कर दी जाती है तब सभी पौधे थकते हुए पाये जाते हैं (चित्र २४)। लाजवन्ती की यान्त्रिक अनुक्रियाओं में भी इसी प्रकार का प्रभाव पाया गया था (चित्र १०)।

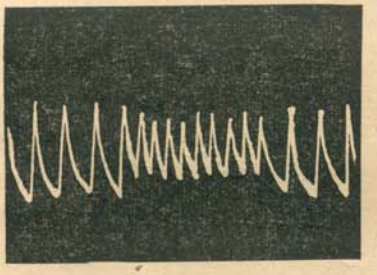

चित्र २४–विश्राम की लघुकृत अवधि में वैद्युत अनुक्रिया की थकावट।

तापमान का प्रभाव

न्यूनतम तापमान घातक होता है और उष्णकटिबंधीय वनस्पति इसकी शिकार जल्दी हो जाती है। इस प्रकार उष्णदेशीय यूकैरिस लिली (Eucharis lily) को जब पन्द्रह मिनट तक हिमांक पर रखा गया तब उसकी वैद्युत अनुक्रिया पूर्ण रूप से समाप्त हो गयी। किन्तु उसी तापमान में जब उत्तरांचल की वनस्पति जैसे हौली (Holly) और आइवी (Ivy) को रखा गया तब उनकी विद्युत्-अनुक्रिया मिलती रही।

विष का प्रभाव

मैंने अश्वफल (Horse-Chestnut) के बीस पर्णवृन्त लेकर उन्हें दस-दस के दो समूहों में बाँटा। एक समूह को पानी में नियन्त्रण के लिए रखा और दूसरे दल के कटे हुए छोरों को पारद नीरेय (मर्क्यूरिक क्लोराइड) नामक विख्यात विष के घोल में रखा। इन पर बहुत से जूँ (प्लाण्ट लाइस) निवास कर रहे थे। चौबीस घंटे के बाद देखा गया कि पानी में रखे हुए पर्णवृन्त की औसत विद्युत्-अनुक्रिया गैलवनोमीटर स्केल के संभार-श्रेणी के तेईस भाग तक थी, तथा उसके जूँ, अभी तक जीवित थे। दूसरी

तरफ जो पर्णवृन्त पारद-नीरेय में रखे गये थे, उन्हें उद्दीपित किये जाने पर उनकी विद्युत्-अनुक्रिया कुछ भी नहीं थी। स्पष्ट है कि वे विष के प्रभाव से मर गये थे। इसकी पुष्टि इन पौधों पर के जूँ के मर जाने से भी हो रही थी।

क्लोरोफार्म से मृत्यु

ऊपर के उदाहरण में केवल अन्तिम घातक क्षणों का ही निरीक्षण किया गया था। किन्तु घातक विष को देकर मृत्यु तक उसके क्रमिक प्रभाव का निरीक्षण करना भी आवश्यक लगा। उसके लिए यह विधि अपनायी गयी—पहले एकसमान उद्दीपना

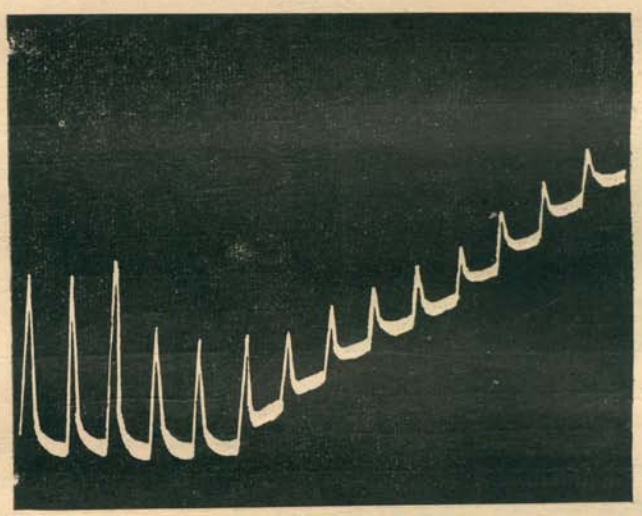

चित्र २५–क्लोरोफार्म के प्रभाव में अनुक्रिया की क्रमिक समाप्ति।

द्वारा साधारण अनुक्रिया-शृंखला प्राप्त की गयी। तदुपरान्त इसमें व्याघात उत्पन्न किये बिना विषैले तत्त्व क्लोरोफार्म की वाष्प को पौधे के कोष्ठ में फैलाया गया।

किस प्रकार, इस निश्चेतक ने उद्दीपना-शक्ति को क्रमशः समाप्त कर दिया, यह चित्र सं० २५ में दिखाई पड़ रहा है। उसमें अनुक्रिया का घटाव निरन्तर बढ़ता जा रहा है। निश्चेतक की लम्बी और सतत क्रिया का परिणाम घातक हुआ और उसने विद्युत्-अनुक्रिया की पूर्ण समाप्ति ही कर दी।

वनस्पति की द्रवदहन द्वारा मृत्यु

ये तथ्य यह प्रमाणित करने के लिए यथेष्ट हैं कि विद्युत्-अनुक्रिया द्वारा महत्त्वपूर्ण जीवन-क्रियाओं के परिवर्तन को सही-सही आँका जा सकता है, जो जीवन

शक्ति के निम्नन (Depression) या विनाश का स्पष्टतम संकेत देता है। इसका आश्चर्यजनक उदाहरण एक मामले का निम्नांकित अभिलेख है जिसमें वनस्पति-प्रकोष्ठ में वाष्प जनित द्रवदहन द्वारा पौधे की क्रमशः मृत्यु हो गयी। पहले दो अभिलेख कमरे के तापमान में, जो २० सें० था, लिये गये। क्रमशः वाष्प छोड़ी गयी, इससे प्रथम तो क्षणिक उद्दीपना हुई, फिर तीव्रता से ह्रास होने लगा और अन्ततः द्रवदहन द्वारा मृत्यु होने पर अनुक्रिया पूर्णतया लुप्त हो गयी (चित्र २६)।

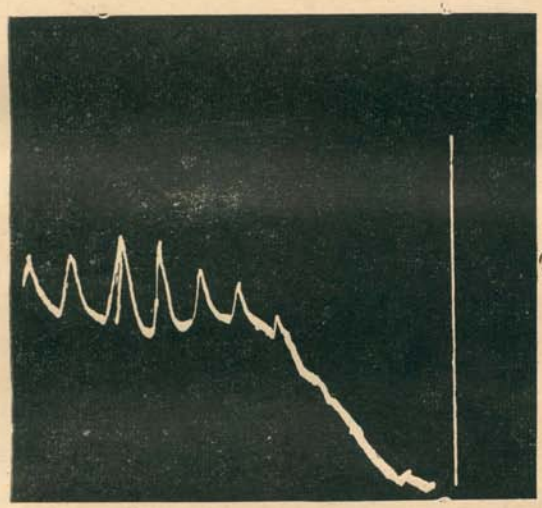

चित्र २६—वाष्प द्वारा अनुक्रिया की समाप्ति। पहली दो अनुक्रियाएँ (बायीं) १७° सें० तापमान पर हुईं। तब वाष्प दी गयी। ५ मिनट बाद गाजर की मृत्यु हो गयी और अनुक्रिया समाप्त हो गयी। दाहिनी ओर की उदग्र रेखा ०·१ वोल्ट बताती है।

ऊतकों की जीवन-दशा की परीक्षा है—विद्युच्चरता (Electro-motility) यानी उद्दीपना द्वारा विद्युत्-प्रेरक परिवर्तन दिखाने की शक्ति। प्राणि-ऊतकों में इस प्रकार की प्रतिक्रियाएँ तो बहुत पहले ही से ज्ञात थीं किन्तु अब यह भी ज्ञात हुआ है कि वनस्पति में भी उसी प्रकार की प्रतिक्रिया होती है। इस परीक्षा से हम यह प्रमाणित कर सके हैं कि पौधे का प्रत्येक अंग संवेदनशील है। और एक निश्चित विद्युत्-अनुक्रिया द्वारा प्रत्येक उद्दीपना का उत्तर देता है। यह भी दिखाया जा चुका है कि श्रान्ति, उच्च या निम्न तापमान और विषों के प्रयोग द्वारा होने वाली विद्युत्-अनुक्रिया में आपरिवर्तन ठीक उसी प्रकार के होते हैं जैसे कि पशु-ऊतक में।

इस अध्याय में और पिछले अध्यायों में उद्दीपना के प्रति वनस्पति की अनुक्रिया पर विचार किया गया। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सब वनस्पतियों में ऋण विद्युत्गत (Negative electric) विभिन्नता की अनुक्रिया होती है। कुछ पौधे, जिनकी संरचना विशेष गतिशील (Motile) है, गति की यांत्रिक अनुक्रिया करते हैं। ये दोनों ही अनुक्रियाएँ संपूर्णतया समवर्ती हैं।

अध्याय ६

वनस्पति की निद्रा

अनेक पौधों के पर्णक प्रकाश के प्रति संवेदनशील होते हैं। अन्धकार होते ही वे पूर्णतः बन्द हो जाते हैं और प्रकाश होने पर फिर खुल जाते हैं। हमारी आँखें निद्रा की अवस्था में बन्द रहती हैं। यही देखकर यह मान लिया गया था कि पर्णकों का बन्द होना ही वनस्पति का सोना है। यह समानता केवल कल्पना-मात्र है। पर्णकों का इस प्रकार बन्द होना दोपहर के तेज प्रकाश की उद्दीपना के कारण भी पाया जाता है।

जीवन की कितनी ही अनैच्छिक (Involuntary) क्रियाएँ कभी विराम नहीं लेतीं, वे दिन-रात लगातार चलती रहती हैं, प्राणियों में, हृदय की धड़कन बराबर होती रहती है। पाचन और ऊतकों की वृद्धि-सम्बन्धी क्रियाएँ भी बिना रुके होती रहती हैं। इसी प्रकार वनस्पति में भी सारे दिन अंगों की स्थानीय माँग पूरी करने के लिए खाद्य पदार्थों का परिवाह होता रहता है और दूसरे दिन के लिए भी सामग्री एकत्र होती रहती है। वृद्धि भी होती रहती है। अंग भी चोटों को भरते हुए बढ़ते जाते हैं। जीवन एक निद्रा-रहित क्रिया-कलाप है।

फिर भी थोड़े समय के लिए हम अचेतन हो जाते हैं और बाह्य घटनाओं के प्रति चेतना-रहित हो जाते हैं। इस प्रकार हम प्रतिदिन एक चक्र से गुजरते हैं जिसे सोना और जागना कहा जाता है। वनस्पति सोती है या नहीं, इस प्रश्न का निश्चित उत्तर इस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है कि क्या वनस्पति दिन और रात दोनों ही समय बाह्य घटनाओं से एक-सा अवगत रहती है। यदि नहीं, तो क्या कोई ऐसा समय होता है जब इसकी प्रतिबोधन-शक्ति खो जाती है और फिर क्या कभी ऐसा भी समय होता है जब यह सजगता की चरम सीमा तक जाग्रत होती है?

फिर यह कैसे जाना जाय कि वनस्पति सोती है या नहीं? जब हम यह जानना चाहते हैं कि हमारा मित्र सोया है या नहीं तब हम उसे झकझोर कर पूछते हैं, क्या तुम जगे हो? यदि वह जगा है तो चिल्लाता है—"हाँ"। यदि वह आधा जगा है तो कुछ अस्पष्ट उत्तर देता है। परन्तु यदि वह पूरी तरह सोया रहता है तो कुछ भी

उत्तर नहीं देता। जब उसकी निद्रा पूरी हो चुकती है तभी वह उत्साहपूर्वक स्वाभाविक उत्तर देता है।

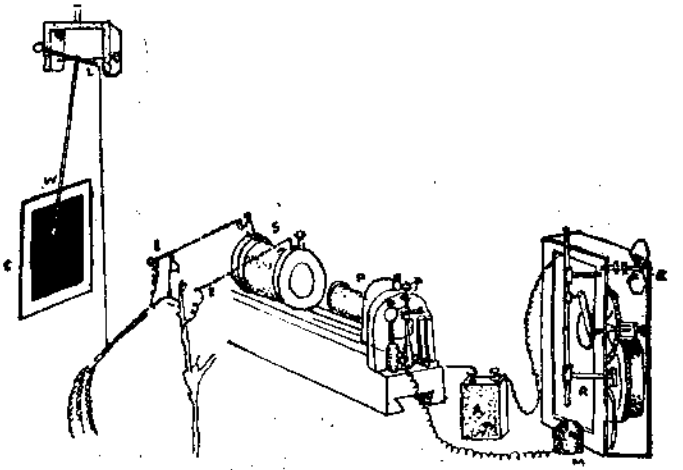

चित्र २७—उत्तेजनशीलता की दैनिक भिन्नता को निश्चित करने के लिए सम्पूर्ण उपकरण का आरेखीय प्रदर्शन। लाजवन्ती का पर्णवृन्त उत्तोलक L में एक डोर द्वारा बाँधा जाता है; अभिसूचक W घूमित काँच पट्ट G पर अनुक्रिया के पतन और पर्ण के पुनरुन्नयन का प्रदर्शन करता है। P प्राथमिक और S गौण (संवाहन कुंडली का) विद्युदग्र E,E द्वारा पौधे के मध्य से उत्तेजक आघात जाता है। C आघात के समय का नियमन करने के लिए घंटी क्रिया। घुसती हुई शलाका R द्वारा, जो पारद के प्याले M में डूबी है, पूरा किया गया कुंडली का प्राथमिक परिपथ।

बहुत कुछ इसी प्रकार की विधि वनस्पति के विषय में भी हमें अपनानी होगी। हम संवेदनशील लाजवन्ती को लेकर उससे एक-एक घंटे पर पूछते हैं—"क्या तुम हो ?" "क्या तुम जागी हो ?" "क्या तुम जागी हो?" और भिन्न-भिन्न समय पर उसके उत्तर की बदलती हुई तीव्रता से हमें पता चलता है कि वह कितनी सोयी या जगी है।

इस समस्या की कठिनाई केवल यह है कि उसे किस तरह रात और दिन बराबर हर घंटे इस तरह का प्राणिक (अन्वेषक) आघात पहुँचाया जाय और

किस प्रकार वनस्पति के उत्तर की अनुक्रिया की गति का अभिलेखन किया जाय।

चित्र सं० २७ में एक विशेष निद्रा-अभिलेखक का रेखाचित्र है। इसीसे इस समस्या का समाधान किया गया है।

निद्रा-अभिलेखक

लाजवन्ती के पर्ण को धागे द्वारा अल्मूनियम के एक उत्तोलक की बाँह में बाँधा जाता है। अभिलेखक हस्तक के लम्बकोण पर रहता है जो काँच के एक धूमित पट्ट पर इस पर्ण की अनुक्रिया-गति को लिखता जाता है। इसे एक निश्चित गति से गिराया जाता है। एक निश्चित उद्दीपना द्वारा पर्ण गिर जाता है और नियत समय पर अनुक्रिया का विस्तार, पौधे की उत्तेजना-शक्ति का माप लेता है। एक निश्चित समय बाद, मान लीजिये एक घंटे बाद, फिर से दूसरी उद्दीपना दी जाती है और तब संवादी अनुक्रिया से ज्ञात होता है कि पौधे की उद्दीपना-शक्ति या चेतना उसी प्रकार की है या परिवर्तित हुई है।

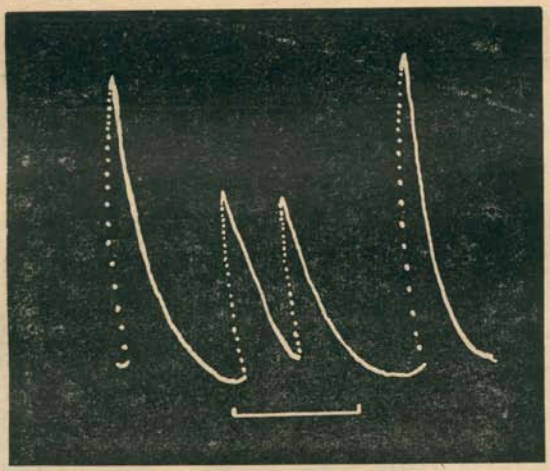

चित्र २८—इस अवधि में, मध्यम शीतलता का प्रभाव नीचे क्षैतिज रेखा द्वारा दिखाया गया है।

प्रश्न करने वाला आघात वैद्युतिक होता है जिसकी प्रभावी मात्रा को पूर्ण रूप से समान रखना पड़ता है। द्वितीय कुण्डल को मुख्य कुण्डल से उपयुक्त दूरी पर रखा जाता है और मुख्य विद्युत् परिवहन को एक निश्चित समय में पूरा करने के लिए आघात का समय समान रखा जाता है। डूबी हुई शलाका द्वारा मुख्य परिवहन

को पूरा किया जाता है। यह शलाका पारद की एक कटोरी में केवल ०.२ सेकेण्ड के लिए डूबती है। अनुक्रिया का अभिलेख धूमित पट्ट पर लिखता जाता है और यह पट्ट दक्षिणावर्त प्रदोलित होता है।

अब यह दिखाया जायगा कि किस प्रकार वनस्पति का प्रतिदिन, संवेद्यता और असंवेद्यता का चक्र रहता है। इसी को उपयुक्त रूप से सोना और जागना कहा जा सकता है। अन्य स्थान[1] पर इसके कारण का पूर्ण विश्लेषण किया गया है। यहाँ मैं संक्षेप में वनस्पति की निद्रा या असंवेद्यता के कुछ कारणों का उल्लेख कर रहा हूँ। वनस्पति अधिक देर तक अँधेरे में रखने पर असंवेदी हो जाती है। तापमान के निम्नन द्वारा उसकी उत्तेजना-शक्ति का और भी अधिक अवनमन होता है। (चित्र २८)।

यह याद रखना चाहिये कि एक पूरे दिन में वनस्पति को भिन्न-भिन्न तापमानों का सामना करना पड़ता है। यह तापमान प्रातःकाल न्यूनतम और मध्याह्न में प्रायः अधिकतम हो जाता है।

मध्याह्न में अनुक्रिया

पूरे मध्याह्न भर वनस्पति की संवेदनशीलता या उत्तेजना-शक्ति अधिकतम रहती है। यह यहाँ पर उद्धृत अभिलेख (चित्र २९) में देखा जा सकता है। इससे

चित्र २९—एकसमान और अधिकतम उत्तेजनशीलता प्रदर्शन करने वाला मध्याह्न से तीन बजे अपराह्न तक का मध्याह्न अभिलेख।

विदित होता है कि इस समय वनस्पति की अनुक्रिया कितनी उत्साहपूर्ण और एक-समान है। इस समय को "कार्यालय-समय" कहा जा सकता है।

---

१. Bose — "The Diurnal Variation of Moto-Excitability in Mimosa" — "*Annals of Bombay*," Oct. 1913.

प्रातः और सायं इसकी जागृति में आश्चर्यजनक भिन्नता दीखती है।

प्रातःकाल का जागना

लाजवन्ती देर से जागती है। यह चौबीस घंटे के पूर्ण अभिलेख में स्पष्ट दिखेगा। यहाँ (चित्र ३०) मैं आधे-आधे घंटे पर लिये गये अभिलेख को उद्धृत कर रहा हूँ। यह

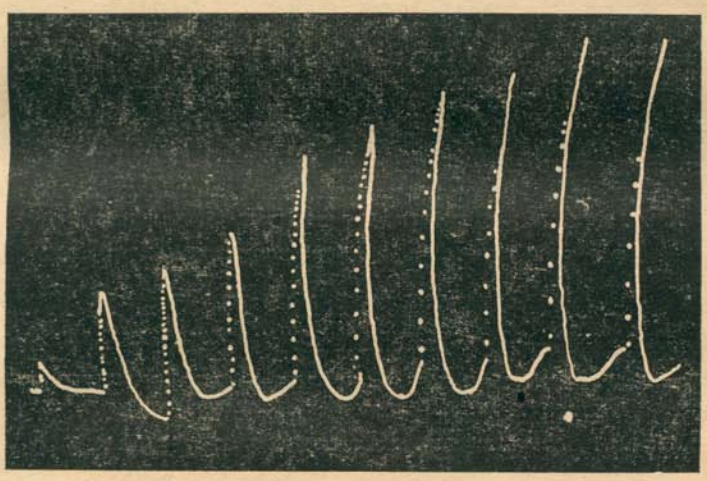

चित्र ३०—पौधे का क्रमिक जागरण (८ बजे प्रातः से १२ बजे मध्याह्न तक)

धीरे-धीरे प्रातः नौ बजे तक जागृत होने की क्रिया को चित्रित करता है। यहाँ देखा जा सकता है किस तरह यह किसी आदमी की तरह ही धीरे-धीरे पूरी तरह जागने की चेष्टा कर रही है।

दिन और रात का अभिलेख

यह अभिलेख ५ बजे सन्ध्या से प्रारम्भ किया गया था। दिन और रात के प्रत्येक घंटे पर चौबीस घंटे तक लिया गया था। पहले दो घंटे तक पौधा पूर्ण-रूप से जागृत रहा। ९ बजे रात्रि से २ बजे प्रातः तक इसे थोड़ी-थोड़ी नींद आने लगी। किंतु ६ बजे प्रातः तक यह जगा रहा। इसके बाद यह गहरी नींद में सो गया और ८ बजे प्रातः तक सोता रहा (चित्र ३१)।

रूसों ने कहा है कि आधुनिक जीवन ह्रास की ओर जा रहा है और आदिम जीवन की ओर लौट जाने में ही कल्याण की आशा की जा सकती है। निश्चय

ही, निश्छल वनस्पति-जीवन से अधिक आदिम और अदूषित जीवन की ओर नहीं

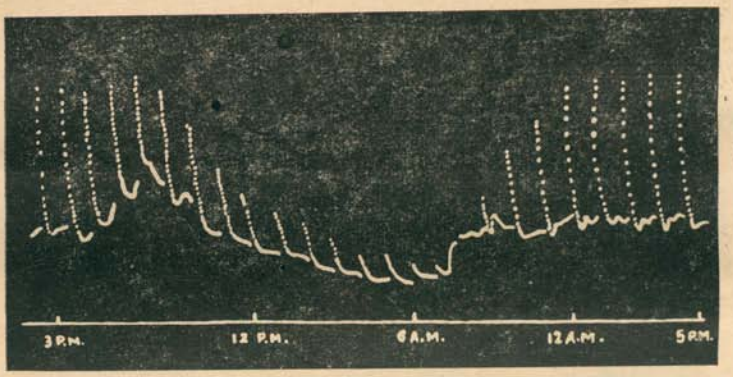

चित्र ३१—५ बजे संध्या से दूसरे दिन ५ बजे संध्या तक लाजवन्ती की संवेदन-शीलता में होने वाले परिवर्तन को प्रदर्शित करने वाला दैनिक अभिलेख ।

लौटा जा सकता । किंतु तथ्य क्या है ? स्पष्ट ही लाजवन्ती ने तो लंदन, पेरिस और न्यूयार्क-जैसे आधुनिक बेबीलोनों के व्यसनी जीवन को भी मात कर दिया। वह सारी रात जागती है और सूर्योदय के बाद ही सोती है ।

अध्याय ७

फरीदपुर का प्रार्थनारत ताड़ वृक्ष

मानों इस असंयत जीवन-पद्धति का विरोध करने के लिए ही कुछ पेड़ बहुत धार्मिक दिखने वाला जीवन अपना लेते हैं। कम-से-कम, प्रार्थना करने वाले ताड़ वृक्ष के विचित्र क्रिया-कलाप का भोली-भाली जनता पर तो ऐसा ही प्रभाव पड़ा। संध्या को जिस समय प्रार्थना के लिए मन्दिरों के घंटे सभी का आवाहन करने के लिए बजने लगते थे, यह पेड़ प्रार्थना में नत हो जाता था। प्रातः यह फिर सीधा हो जाता था। यह क्रम नित्य-प्रति पूरे वर्ष चलता था। इस विस्मयकारी घटना को दैवी समझा जाता था और काफी लोग इसके दर्शन के लिए आने लगे। यह भी कहा जाने लगा कि पेड़ को भेंट चढ़ाने से बहुत-से रोग आश्चर्यजनक रूप से ठीक हो जाते हैं। इस विषय में कोई मत प्रकट करने की आवश्यकता नहीं है। पाश्चात्य देशों में आजकल प्रचलित श्रद्धा उपचारों (Faith cures) की ही तरह ये उपचार भी प्रभावकारी हो सकते हैं या हुए होंगे।

यह खजूर (Phoenix sylvestris) एक प्रौढ़ और अनमनशील वृक्ष था और इसके तने का व्यास दस इंच था। यह आँधी में गिर गया होगा, और इसलिए इसका झुकाव उदग्र (Vertical) का ६०° कोणांश था। दैनिक गति में इसके तने की पूरी लम्बाई प्रातः उठी रहती थी और अपराह्न में झुक जाती थी और इस प्रकार तने का ऊपरी सिरा प्रायः तीन फुट ऊपर-नीचे होता था। तने का ऊपरी भाग या 'गर्दन' जिसमें पत्तियाँ होती हैं, प्रातः आकाश की ओर उठा रहता था और अपराह्न में झुकाव इस के विपरीत हो जाता था। इस प्रकार प्रातः आकाश की ओर ऊँची उठी हुई, बड़ी और लम्बी पत्तियाँ अपराह्न तक लगभग पन्द्रह फुट की उदग्र दूरी को पार करती थीं।

जनसाधारण की धारणा थी कि यह वृक्ष एक जीवित दैत्य था। प्रातः यह अपने सिर को मनुष्य से दुगनी ऊँचाई तक उठाये रहता और सायंकाल उस चरम ऊँचाई से अपनी गर्दन को तब तक झुकाता जाता जब तक कि पत्तियों के सिरे प्रार्थना की मुद्रा में पृथ्वी को न छू लेते।

मैंने इस वृक्ष के दो चित्र लिये, एक प्रातःकाल और दूसरा अपराह्न में (चित्र ३२)। मैं इस वृक्ष के विचित्र व्यवहार को देखकर उलझन में पड़ गया। प्राकृतिक

विज्ञान किसी रहस्य में विश्वास नहीं करता, क्योंकि उसके लिए अशारीरिक कुछ

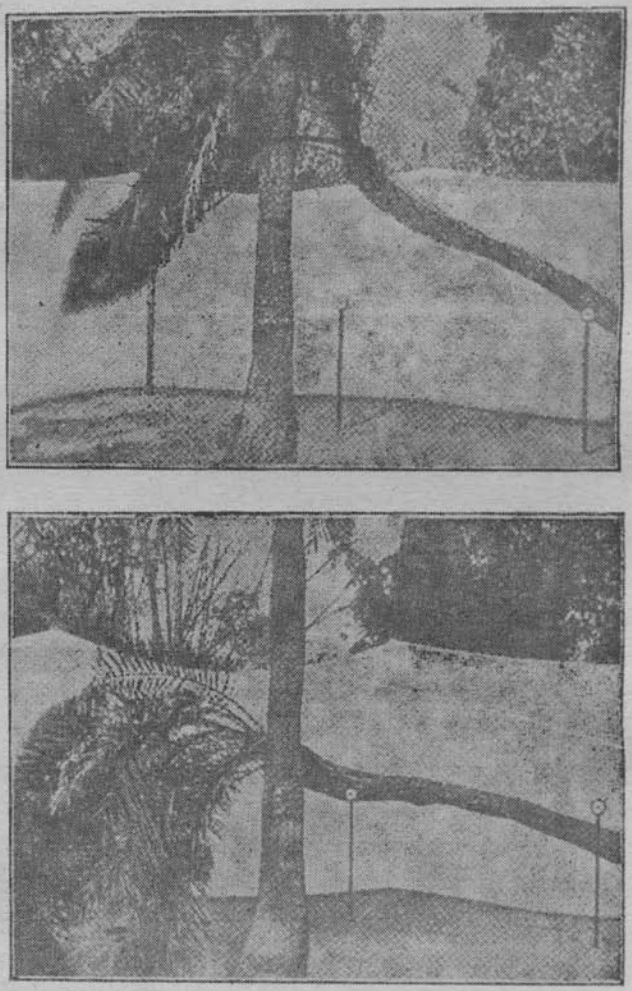

चित्र ३२—प्रार्थनारत ताड़। ऊपर का चित्र प्रातः की स्थिति को और नीचे का चित्र सन्ध्या की स्थिति को प्रस्तुत करता है।

नहीं है। यदि कोई रहस्य है तो वह केवल इसीलिए है कि उसका कारण तब तक निर्धारित नहीं हुआ।

इस रहस्य के पीछे क्या कारण हो सकता था? प्रतिदिन यह घटना घटती थी और बदलने वाले कारक केवल प्रकाश और तापमान ही थे। तब क्या इसका कारण प्रकाश था? यह सम्भव नहीं था क्योंकि इस क्रिया के लिए यह आवश्यक था कि जीवित ऊतकों से प्रकाश का मेल हो। किन्तु मृत पत्तियों के निचले भाग जीवित ऊतकों पर ऐसे छाये थे कि प्रकाश वहाँ तक नहीं पहुँच सकता था। केवल बदलता हुआ तापमान ही एक और कारक था। यह वृद्धि पर प्रभाव डालकर गति उत्पन्न करता है। जैसा कि आगे के अध्याय में नलिनी (Water lily) की गति के वर्णन से स्पष्ट है। किन्तु यह खजूर का पेड़ प्रौढ़ था और इसकी सक्रिय वृद्धि की अवस्था नहीं थी।

इस समस्या का समाधान केवल एक ऐसे यन्त्र से ही हो सकता था, जो दिन-रात बराबर उस वृक्ष की गति का अभिलेख लेता—ऊपर की गति का अभिलेख ऊपरी झुकाव में और नीचे की गति का निचले झुकाव में। साथ ही साथ उसी अभिलेख-पट्ट पर एक धात्विक तापमान यन्त्र (Mettallic thermometer) द्वारा बदलते हुए तापमान का भी अभिलेख होता। तापमान की वृद्धि तापवक्रता द्वारा विदित होती और इसका क्षय इसके विपरीत वक्र से। आगे चित्र ३४ में दिये हुए चित्र द्वारा अभिलेख-यन्त्र का सिद्धान्त समझा जा सकता है।

आरम्भ में अभिलेखक को वृक्ष में लगाने की आज्ञा, उद्यान-स्वामी से मिलने में कुछ कठिनाई हुई। उसको भय था कि इस अधार्मिक विदेशी लगने वाले यन्त्र के सम्पर्क से उस वृक्ष की दैवी शक्ति लुप्त हो जायगी। मैंने उसका यह भय यह अश्वासन देकर किसी प्रकार दूर किया कि यह यन्त्र मेरी ही प्रयोगशाला में भारत में बनाया गया है तथा इसको उस वृक्ष से संयुक्त करने वाला मेरा सहकारी एक पुजारी का पुत्र है।

इसके द्वारा प्राप्त होने वाले परिणाम आश्चर्यजनक थे। सामान्यतया देखने वालों को लगता था कि यह वृक्ष सूर्योदय के समय उठ जाता था और सूर्यास्त के समय नत हो जाता था। किन्तु जो सतत अभिलेख लिया गया, उससे ज्ञात हुआ कि यह कभी आराम नहीं करता था। इसकी गति सतत थी जो समय-समय पर बदलती रहती थी (चित्र ३३)। यह गति निष्क्रिय नहीं थी अपितु एक ऐसे सक्रिय बल से प्रभावित थी जो एक मनुष्य को पृथ्वी से उठा लेने के लिए यथेष्ट था।

इस वृक्ष की सबसे अधिक ऊँचाई प्रातःकाल सात बजे होती थी। इसके बाद तेजी से यह गिरने लगता था। नीचे गिरने की गति ३·१५ बजे अपराह्न तक अपने चरम तक पहुँच जाती थी। इसके पश्चात् यह धीरे-धीरे अपने को उठाना आरम्भ करता था, फिर कुछ जल्दी-जल्दी, जब तक, जैसा पहले कहा गया है, दूसरे दिन प्रातः सात बजे तक यह अपनी चरम ऊँचाई तक नहीं उठ जाता था।

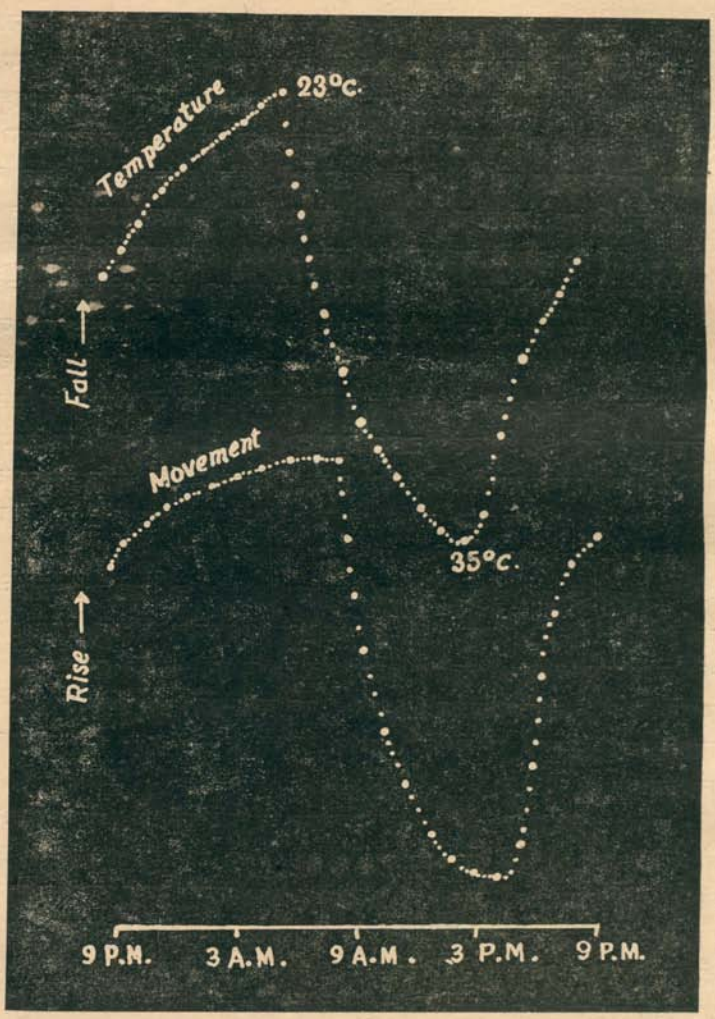

चित्र ३३—प्रार्थनारत ताड़ की दैनिक गति का अभिलेख। २४ घंटे का तापलेखी वक्र ६ बजे सन्ध्या में आरम्भ होता है। इसे ऊपरी अभिलेख में दिया गया है जिसमें आरोही वक्र द्वारा तापमान का गिराव दिखाया गया है। नीचे, वृक्ष की गति का तदनुरूपी दैनिक वक्र दिया गया है। क्रमिक बिन्दु १५ मिनट के अन्तराल के चिह्न हैं; मोटे बिन्दु एक घंटे के अन्तराल के चिह्न हैं।

स्वयं वृक्ष द्वारा किये गये अभिलेख से ही यह स्पष्ट हो गया कि इसका नत होना अपने चरम तक ठीक प्रार्थना के समय पर नहीं पहुँचता था; किन्तु जो मनुष्य दैवी शक्ति का अभ्यारोपण करने पर तुले ही हुए हैं, उनके विश्वास पर इतनी तुच्छ भिन्नता का कोई प्रभाव नहीं होता।

गति के कारण का प्रकटीकरण

प्रति दिन की गति के संभव स्पष्टीकरण समय-समय पर बदलती हुई अवस्थाएँ, जैसे प्रकाश और तापमान आदि हो सकते हैं। जैसा हम पहले देख चुके हैं, प्रकाश प्रभावी कारक नहीं हो सकता था। इसकी पुष्टि नित्य की गति के वक्र के और अधिक सूक्ष्म अध्ययन से भी हुई। यदि गति का कारण प्रकाश होता है तो 'एक चरम' मध्याह्न में और दूसरा उसके विपरीत मध्य रात्रि में होता। किन्तु बजाय इसके हमने पाया है कि उच्चतम बिन्दु मध्याह्न में न होकर सात बजे प्रातः होता है। और उधर 'न्यूनतम बिन्दु' मध्य रात्रि में न होकर अपराह्न में होता है।

दूसरी ओर, तापमान की भिन्नता को लेने पर फौरन देखा गया कि वृक्ष की गति का वक्र तापमान की भिन्नता के वक्र का लगभग एकदम प्रतिरूप था। वृक्ष का उठना तापमान के गिरने का अनुसरण कर रहा था और वृक्ष का गिरना तापमान के उठने से सम्बन्धित था। वृक्ष की गति तापमान की भिन्नता से कुछ पिछड़ रही थी और उसके दो कारण थे। वृक्ष के मोटे धड़ को अपने आस-पास के तापमान को ग्रहण करने में समय लगता था। प्रतिक्रिया के विलम्ब का दूसरा कारण था—दैहिक जड़ता।

भौतिक या दैहिक

यह प्रमाणित करने के बाद कि गति का कारण तापमान की भिन्नता थी, अब यह देखना बाकी है कि यह केवल भौतिक विस्तार और संकुचन के ही कारण थी या जीवन की किसी विशिष्ट प्रतिक्रिया के कारण। इसकी निश्चित परीक्षा तो तभी होगी जब देखा जाय की वृक्ष की मृत्यु के बाद क्या हुआ। इस प्रकार की स्थिति में भौतिक गति तो चलती रहेगी, किन्तु दैहिक गति लुप्त हो जायगी। इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने के लिए इस अद्वितीय वृक्ष के, जिसकी इतनी श्रद्धा की जाती थी, जीवन से खेलना तो असम्भव था।

किन्तु एक वर्ष बाद एक बार जब बंगाल के राज्यपाल लार्ड रोनाल्ड ने, जो मेरे इसी विषय के एक भाषण में सभापतित्व कर रहे थे, भाषण के बीच में ही बताया कि उनके पास अभी-अभी उसी समय उनके फरीदपुर—स्थित एक

अधिकारी का तार आया है कि "ताड़ वृक्ष की मृत्यु हो गयी, उसकी गति समाप्त हो गयी है।" वृक्ष की इस अत्यधिक दुःखद मृत्यु से समस्या का हल निकालने का रास्ता निकल आया। यह दुर्भाग्य की बात थी कि वृक्ष को मरकर यह बताना पड़ा कि इसकी गति का कारण इसकी जीवन-क्रिया थी।

अन्धविश्वासियों ने भले ही वृक्ष की मृत्यु का कारण, मेरे द्वारा उसकी गति के अभिलेख लेने की स्वच्छन्दता को माना हो। किन्तु यह कहना निरर्थक ही है कि दोनों में कोई सामयिक सम्बन्ध नहीं था। वृक्ष प्रौढ़ था और मेरे अनुसन्धानों के एक वर्ष बाद मरा। तब भी मैं इस विषय में दुःखी था और चाहता था कि यह मामला पूर्ण रूप से दब जाय। किन्तु ऐसा होने वाला नहीं था, क्योंकि समाचारपत्रों ने इस मामले को तूल दिया और तरह-तरह की आलोचना करने लगे। जैसे उसका एक नमूना यह है—

"उच्च-जीवन में दुःखान्त घटना!" जैसा पहले समाचार दिया जा चुका है, फरीदपुर के प्रार्थना करने वाले ताड़ वृक्ष का डॉ० बोस के भाषण वाले दिन ही अकस्मात् देहान्त हो गया। उसने यह अवश्य सुन लिया होगा कि ये विख्यात वैज्ञानिक एक पाखण्ड का भण्डाफोड़ करने वाले हैं। हम लोगों को बताया गया है कि उसका यह धार्मिक दिखने वाला क्रियाकलाप केवल उसका अपने को गरम रखने का प्रयत्न था। इसी प्रकार हम यह भी सोच सकते हैं कि यह कोई रोग होगा क्योंकि अन्य ताड़ तो कभी प्रार्थना नहीं करते!"

इस बार समाचारपत्र वालों की सर्वज्ञता दोषपूर्ण थी। क्योंकि यह 'प्रार्थना करने का स्वभाव' केवल फरीदपुर के उसी पवित्र ताड़ वृक्ष का ही नहीं वरन् और दूसरे ताड़ वृक्ष तथा अन्य सामान्य वृक्षों का भी है। मुझे सरोवर के किनारे दूसरे ताड़ वृक्ष के विषय में संवाद मिला है। इस वृक्ष का तना उसी सरोवर की ओर झुका हुआ है। ऊपर उठी हुई उसकी पत्तियाँ सन्ध्या के समय घूमकर सरोवर के जल में डूब जाती हैं।

ऊपर उद्धृत घटना केवल रहस्यमय 'पूर्व' का ही चमत्कार नहीं है। नीरस लिवरपूल (यूनाइटेड किंगडम) के पड़ोस में भी एक ऐसी ही घटना घटी। मेरे एक आंग्ल मित्र ने मुझे १३ दिसम्बर १८९१ के "लिवरपूल मरकरी" नामक पत्र का निम्न-लिखित सारांश भेजा—

"आश्चर्यजनक घटना": शिप्टन के पास श्री वासने (Rev. Mr. Wasney) की सम्पत्ति टबसिल नामक फार्म की एक छोटी नदी के किनारे एक विलो (Willow) का वृक्ष है। यह बहुत ऊँचा है और इसकी परिधि करीब तीन फुट होगी। यह वास्तव

में प्राणयुक्त मालूम होता है। कभी-कभी यह पृथ्वी पर पूरी लम्बाई में लेट जाता है और फिर अपनी पूरी लम्बाई में सीधा खड़ा हो जाता है। भले ही यह अविश्वसनीय मालूम होता हो पर यह सत्य है और इसने उन सैकड़ों लोगों को आश्चर्यचकित किया है, जिन्होंने इसे देखा है।"

हाल ही में दक्षिणी अफ्रीका के एक नारिकेल कृषक ने भी एक ऐसी ही घटना का उल्लेख मुझसे किया। समुद्र की शक्तिशाली वायु के कारण उसके खेत में जो नारिकेल वृक्षों की कतारें हैं वे सब एक ओर को कुछ झुकी हुई हैं। उसके लिए यह एक सतत आश्चर्य का विषय रहा है कि प्रातःकाल ये वृक्ष पूरी तरह से सीधे खड़े रहते हैं और फल तोड़ना लगभग असम्भव-सा होता है और अपराह्न में वे ही वृक्ष इतने उदार हो जाते हैं कि झुक जाते हैं और उनके फलों को तोड़ना अत्यधिक सुगम हो जाता है।

वृक्ष का थोड़ा भी झुकाव उसकी ऊपर-नीचे की गति की विशिष्टता का आभास देता है। यह गति इतनी मन्द होती है कि यों ही देखने वाले को उसका आभास नहीं होता। किन्तु स्वतः अभिलेखक द्वारा जो गति अभिलिखित होती है वह अत्यधिक स्पष्ट और निश्चित होती है।

फरीदपुर के ताड़ वृक्ष की तरह वृक्षों की गति दो कारणों से इतनी अधिक स्पष्ट होकर ध्यान आकर्षित करती है; प्रथम भू-अभिवर्तनीय (Geotropic) क्रिया, जिसकी भिन्नता पर इसकी गति निर्भर है। यह क्रिया पेड़ के झुके रहने पर अधिक शक्तिशाली होती है और उसके सीधे रहने पर कम। झुके हुए वृक्ष की गति अधिक ध्यान आकर्षित करती है, क्योंकि उसके संदर्भ के लिए पृष्ठभूमि में स्वयं पृथ्वी एक स्थिर वस्तु का काम करती है। किन्तु सीधे खड़े वृक्ष की गति अदृश्य होती है क्योंकि उसकी पृष्ठभूमि में केवल शून्य आकाश होता है।

घटना का स्पष्टीकरण

आगे के अध्याय में कुमुदिनी की पंखुड़ियों की गति का उल्लेख किया जायगा। यह गति तापमान की भिन्नता से प्रेरित वृद्धि की भिन्नांशिकता द्वारा सम्पादित होती है। प्रौढ़ और दृढ़ वृक्षों के विषय में किसी और स्पष्टीकरण की खोज करनी होगी। मैं यहाँ उन बहुत से संपरीक्षणों का विवरण नहीं दे सकूँगा जिनके द्वारा उन बहुत सी क्रियाओं के बारे में पता चला जो पहले अज्ञात थीं, जैसे भूम्यावर्ती प्रतिक्रिया पर तापमान का प्रभाव।

वृक्ष का कोई भी अंग, स्तम्भ, शाखा या पत्ती जब टेढ़ी उगती है, गुरुत्वाकर्षण (Gravity) की उद्दीपना उसे ऊपर की ओर उठाती है। पृथ्वी पर किसी गमले के

पौधे को लिटाकर रख दें, तो कुछ ही दिनों में देखेंगे कि उसका स्तम्भ और पत्तियाँ पृथ्वी के खिचाव के विपरीत ऊपर की ओर उठ जायेंगी। इसीलिए भूम्यावर्ती प्रतिक्रिया को वनस्पति के ऊतकों की आतति (Tension) को परास्त करना पड़ता है। जब ये दोनों प्रतिकारी शक्तियाँ एक-दूसरे को संतुलित करती हैं तभी साम्यावस्था प्राप्त होती है। संपरीक्षणों से यह ज्ञात हुआ कि तापमान के परिवर्तन से भूम्यावर्ती प्रतिक्रिया में थोड़ा परिवर्तन आ जाता है। तापमान में वृद्धि भूम्यावर्ती झुकाव को कम करती है तथा तापक्रम का पतन उसे बढ़ाता है। इस प्रकार तापमान की वृद्धि या पतन से एक या दूसरी दिशा में प्रवैगिक संतुलन (Dynamic balance) उलट जाता है और यही ऊपर और नीचे की दैनिक गति का कारण होता है।

सिद्धान्ततः तो सभी नत अंगों को, जो गुरुत्वाकर्षण जनित उद्दीपना के प्रति संवेदनशील हैं, तापमान के परिवर्तन के साथ ही विशिष्ट गति प्रदर्शित करनी चाहिये। क्षैतिज (Horizontally) फैली हुई वृक्ष की पत्तियाँ भी गुरुत्वाकर्षण की उद्दीपना से प्रभावित हैं, क्या ये भी "प्रार्थना करने वाले ताड़ वृक्ष", की ही तरह दैनिक गति प्रदर्शित करती हैं ?

स्वतः अभिलेखक

यह संपरीक्षण एक स्वतः अभिलेखक द्वारा किया गया, जो विशेष रूप से इसी काम के लिए बनाया गया था। इस यन्त्र में चार अभिलेखक उत्तोलक (लीवर) थे। पहले तीन उत्तोलक भिन्न-भिन्न पौधों की पत्तियों (या उनकी क्षैतिज शाखाओं) की गति का अभिलेख लेते हैं और चौथा उत्तोलक एक धात्वीय तापमापी (Metallic thermometer) द्वारा तापमान के परिवर्तन का अभिलेख लेता है (चित्र ३४)। काँच का धूमित पट्ट पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के अन्तराल पर घंटीचक्र के द्वारा प्रदोलित होता था। इस प्रकार चार अभिलेख एक साथ होते थे—सबसे ऊपर वाला होता था ताप-लेख (Thermograth) और बाकी तीन भिन्न-भिन्न पर्णों के उद्पादप लेख (Phytographs)।

पर्ण-स्वलेख

अभिलेख से ज्ञात होता है कि पत्तियाँ सतत गतिशील रहती हैं और सबकी सब तापमान के पतन से ऊपर उठती हैं और उसकी वृद्धि से गिरती हैं। फिर भी वनस्पति की प्रत्येक जाति की अपनी विशिष्ट प्रकृति होती है, जो उसके विशिष्ट प्रकार के स्वलेख से विदित होती है (चित्र ३५)। पपीता के कम्पित अभिलेख को देखिये !

जयपाल (Croton) के हस्ताक्षर अधिक दृढ़ मालूम पड़ते हैं। अवश्य ही यह अपने

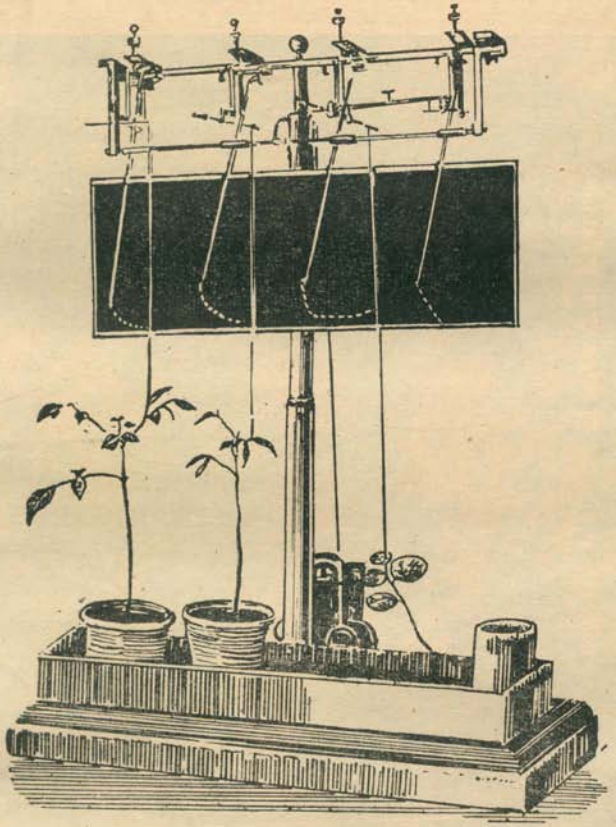

चित्र ३४—पर्ण-अभिलेखक

अक्षरों की मात्राएँ अधिक दृढ़ता और निश्चयपूर्वक अंकित करता है। इस प्रकार विशेष हस्तलिपि द्वारा कोई भी पौधा पहचाना जा सकता है।

अतः यदि देखा जाय तो वनस्पति जगत् निष्क्रिय नहीं है बल्कि पूर्णतया अनुक्रियाशील है। प्रौढ़ और देखने में अनमनशील वृक्ष भी स्वल्पातिस्वल्प बाह्य परिवर्तनों के प्रति संवेदनशील हैं। यहाँ तक कि यदि आकाश से बादल गुजर रहे हों तो ये एक निश्चित गति द्वारा इस परिवर्तन का संकेत दे देते हैं। इससे "सामान्य" और "संवेदनशील" वनस्पति का मनमाने रूप से किया गया भेद भी समाप्त हो जाता है, प्रश्न केवल

मात्रा का रह जाता है। तथ्यों से यही सिद्ध होता है कि न केवल "प्रार्थना करने वाला ताड़" बल्कि प्रत्येक वृक्ष और उसके विभिन्न अंग वातावरण की विभिन्नता से भिज्ञ

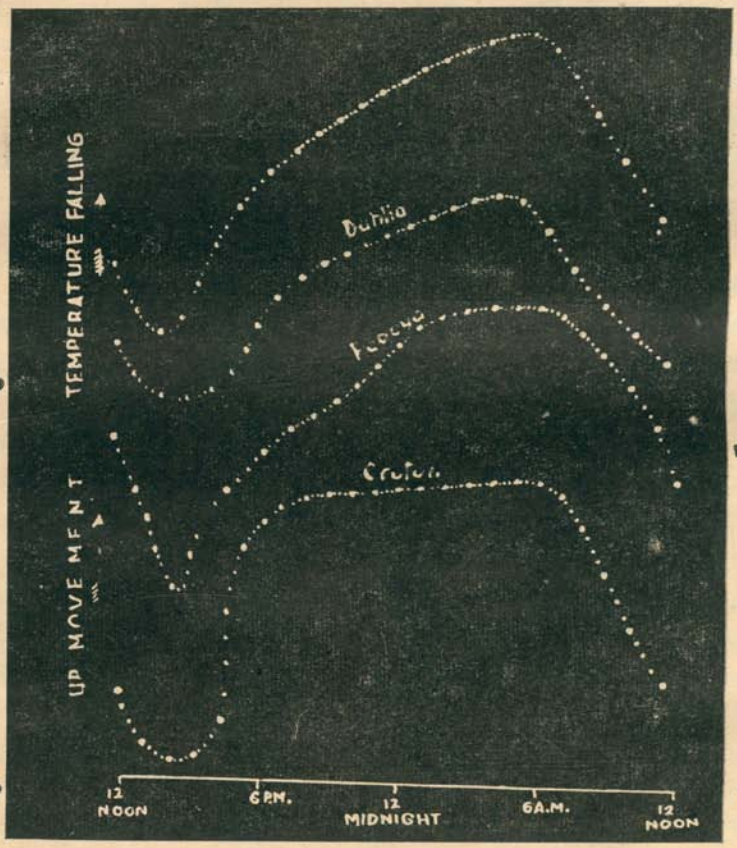

चित्र ३५—डैलिया, पपीता और क्रोटन के स्वलेख।

रहते हैं और उसी के प्रतिचार स्वरूप उनकी गति होती है। गद्दीदार पीनाधार ही केवल संवेदनशील नहीं होता, बल्कि सम्पूर्ण वृक्ष ही संवेद्यता-युक्त सहज प्रवृत्ति का प्रतीक होता है। इसका अनमनीय दिखने वाला तना वस्तुतः एक बृहत् *पीनाधार* है जो अपने वातावरण की बहुविध उद्दीपनाओं को समझकर उनके प्रति अपनी अनुक्रिया को प्रदर्शित करता है।

अध्याय ८

अकार्बनिक पदार्थों की अनुक्रिया

पिछले अध्यायों के परिणामों से ज्ञात होता है कि प्राणी और वनस्पति की जीव-रचना की अभिक्रिया ओं में एक अविच्छिन्नता विद्यमान रहती है। इससे सिद्ध होता है कि जीवन के नियम एक से हैं। इस अविच्छिन्नता का अध्ययन करने पर कुछ लोग अवश्य ही मनुष्य की तुलना अमीबा (Amoeba) से करने लगेंगे और यह सोचने लगेंगे कि उच्च जीवों के सब जटिल अंग सामान्य जीवों में नहीं मिलते। इस विषय में तथ्य तो यह है कि निम्नतम से उच्चतम तक एक सतत उद्विकास (Evolution) होता रहा है और उसी मात्रा में जटिलता भी बढ़ती रही है।

साधारण यन्त्र जल्दी नहीं बिगड़ता और जीवनयन्त्र सरलतम यन्त्र है जो जल्दी नहीं बिगड़ता। इसीलिए एककोशी (Unicellular) जीव वस्तुतः अमर होते हैं। बहुत से आवधाथज कीट (Infusoria) प्रकटतः सूखकर मर जाते हैं, किन्तु ये जीव एक बूंद पानी पाकर फिर से जीवित हो उठते हैं और जोरों से तैरने लग जाते हैं। उच्च जीवों की तरह जब जटिलता अधिक होती है, तब कोई भी स्थानीय अव्यवस्था यन्त्र को निष्क्रिय कर देती है और उच्चतर उद्विकास का परिणाम होता है—मृत्यु।

क्या हम जीवन-क्रम के और नीचे के स्तरों की ओर अग्रसर हो सकते हैं, और किसी अजैव या अकार्बनिक पदार्थ तक पहुँचकर उसमें उद्दीपना का कुछ आभास पा सकते हैं, जो अब तक जीवित पदार्थों का ही विशेष लक्षण माना जाता रहा है? सब क्या पदार्थों में भी जीवन-शक्ति अथवा उसकी सम्भावना है? अन्यथा पृथ्वी पर सर्वप्रथम जीवन का आविर्भाव कैसे हुआ? जब पृथ्वी केवल एक पिघला हुआ द्रव्य-मान (Molten mass) मात्र थी तो आज हम जिसे जीवन मानते हैं वैसी कोई चीज उस समय इस पर होना सम्भव नहीं थी। ऐसा सुझाव दिया गया है कि पृथ्वी पर जीवन-बीज अन्य संसारों से ब्रह्माण्ड-धूलि (Cosmic dust) द्वारा लाया गया था। किन्तु यह केवल कठिनाई को थोड़ा और पीछे ले जाता है। सम्भवतः पृथ्वी के इतिहास के किसी काल विशेष में पर्यावरण की स्थिति ऐसी हो गयी होगी जो निर्जीव से जीव की उत्पत्ति के अनुकूल रही होगी।

तीस वर्ष से अधिक समय हुआ, जब अपने विद्युत्तरंगों के परिचायक(Detector) कुछ अप्रत्याशित लक्षणों को देखकर मैं आश्चर्यचकित हो गया था। उदाहरणार्थ, मैंने देखा कि आते हुए संवाद की सतत उद्दीपना के कारण धात्विक परिचायक की संवेदनशीलता लुप्त हो गयी। किन्तु जब उसे आराम का यथेष्ट समय दिया गया तब वह फिर से संवेदनशील हो गया। क्रमागत (Successive) अनुक्रियाओं का अभिलेख लेकर मैंने साश्चर्य देखा कि वह जीव-पेशियों द्वारा प्रदर्शित विश्रान्ति जैसा था और जिस प्रकार जीव-ऊतक थोड़ी देर आराम करने के बाद फिर से सक्रिय हो जाता है उसी प्रकार आराम के बाद अकार्बनिक प्रापक (Inorganic receiver) भी सक्रिय हो जाता है।

यह सोचकर कि लम्बे आराम से मेरा प्रापक अधिक संवेदनशील हो जायगा, मैंने उसे कुछ दिनों के लिए एक ओर रख दिया और मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वह पूर्ण रूप से निष्क्रिय हो गया था। सच तो यह है कि उद्दीपना के अभाव में वह आलसी हो गया था। एक शक्तिशाली आघात पाकर वह पुनः अनुक्रिया के लिए तत्पर हो गया। इस घटना द्वारा अधिक कार्य से श्रान्ति और लम्बी अकर्मण्यता से निष्क्रियता के दो विपरीत उपचारों की आवश्यकता का संकेत मिलता है।

चित्र ३६—धातुओं की थकावट।

यही नहीं, मैंने यह भी देखा कि किसी निश्चित उद्दीपक भेषज ने मेरे प्रापक को अत्यधिक संवेदनशील बना दिया, जिससे वह अत्यधिक हलके वेतार-संदेशों का भी अभिलेख करने लगा, जिनका वह पहले पता नहीं लगा पाता था। दूसरे भेषज संवेदनशीलता कम कर देते थे, या उसे समाप्त ही कर देते थे।

जीवित ऊतकों की अनुक्रिया-शक्ति की याद दिलाने वाली इस प्रतिक्रिया का आभास पाने के बाद मैंने धात्विक तन्तुओं पर संपरीक्षण किया। इस अनुसन्धान में विद्युत् अनुक्रिया की वही विधि अपनायी गयी जो साधारणतया जीव-ऊतकों के अनुसन्धान में अपनायी जाती है।

अब मैं अकार्बनिक पदार्थों से, उदाहरणार्थ, धातुओं से पाये गये महत्त्वपूर्ण प्रतिफलों का वर्णन करूँगा। टीन, ताँबा और रासायनिक रूप से निष्क्रिय प्लैटिनम

(Platinum) जैसी धातुएँ इसलिए चुनी गयीं क्योंकि वे अधिक संवाही होने के कारण बड़ी हुई विद्युत् अनुक्रिया प्रस्तुत करती हैं। जब तक धातु आराम से थी, कोई भी विद्युत् उद्दीपना का चिह्न नहीं मिला। किन्तु जब भी इसे किसी प्रकार की उद्दीपना मिली, एक निश्चित अनुक्रिया हुई। मन्द उदीपना से अनुक्रिया भी मन्द हुई और उत्तेजना की अवस्था भी शीघ्र समाप्त हो गयी। अधिक शक्तिशाली उद्दीपना द्वारा अनुक्रिया भी अधिक शक्तिशाली हुई और उसके स्वस्थ होने में भी अधिक समय लगा। मन्द उद्दीपना एक बार में निष्फल रही किन्तु निरन्तर करने पर उसका प्रभाव पड़ा। ये सब प्रतिफल सर्वथा नाड़ी (Nerve) और पेशियों की लाक्षणिक अनुक्रियाओं के सदृश हैं।

समान उद्दीपना द्वारा समान अनुक्रिया हुई। बीच-बीच में पूर्ण प्रकृतिस्थ होने के लिए उचित समय दिया जाता रहा। किन्तु जब धातु को लम्बे समय के लिए सतत रूप से उद्दीप्त किया गया, तब श्रान्ति का आभास मिला (चित्र ३६)।

अब प्रतिक्रिया की वृद्धि पर उद्दीपकों के प्रभाव का वर्णन किया जायगा। धातु पर सतत समान उद्दीपना की सामान्य अनुक्रिया को प्राप्त करने के बाद उसे सोडियम-कार्बोनेट के घोल से, जो एक उद्दीपनाकारक अभिकर्ता है, धुलाया जाता है। इससे अनुक्रिया अत्यधिक बढ़ जाती है (चित्र ३७)। अन्य उद्दीपक भी हैं जिनसे संवेदनशीलता में आश्चर्यजनक वृद्धि होती है।

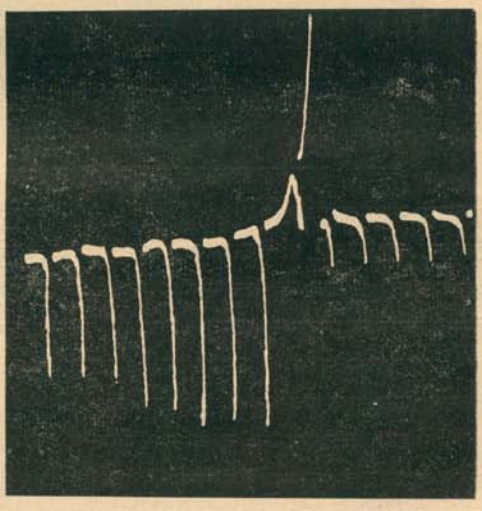

चित्र ३७--धातु की वैद्युत अनुक्रिया को बढ़ाने में उद्दीपना की क्रिया।

इस प्रकार, जैसा इस अध्याय में और साथ ही पिछले अध्यायों में बताया गया है, जब प्राणी, वनस्पति और धातु, तीनों को समान प्राश्निक आघात दिये जाते हैं तब सबके सब समान उत्तर देते हैं। उद्दीपना द्वारा वे समान अनुक्रिया प्रदर्शित करते हैं और उनकी श्रान्ति भी समान होती है। यदि प्रतिक्रिया की समानता का और अधिक प्रमाण चाहिये, तब केवल एक अन्तिम प्रमाण रह गया है जिसके द्वारा शरीर विज्ञानविद् (Physiologists) जीवन की लाक्षणिक घटनाओं में विभेद करते हैं। जो जीवित है,

वह मर भी सकता है और विष द्वारा मृत्यु शीघ्र होती है। तब अनुक्रिया की नाड़ियाँ मन्द पड़ने लगती हैं और अन्ततः समाप्त हो जाती हैं। क्या विश्वास किया जा सकता है कि हम इसी प्रकार विष देने से धातु को भी 'मार' सकते हैं ?

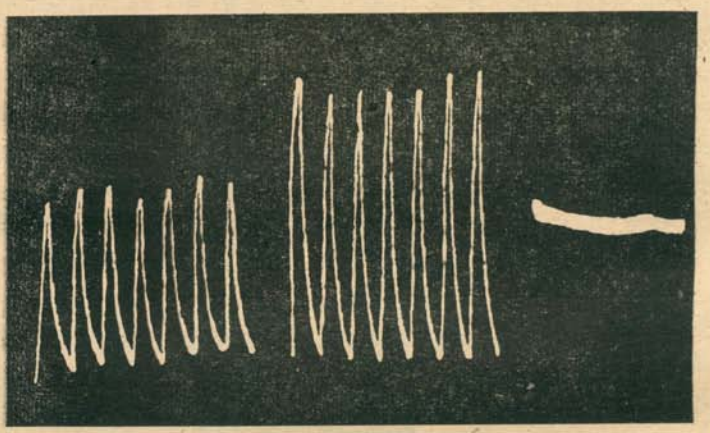

चित्र ३८—धातु की अनुक्रिया पर विष का प्रभाव, एक मन्द मात्रा अभिक्रिया को बढ़ाती है, दीर्घ मात्रा समाप्त करती है।

भले ही यह आश्चर्यजनक लगे किन्तु विष का प्रयोग करने पर विद्युत्-अनुक्रिया एकदम समाप्त हो जाती है। अब केवल एक विचित्र घटना बचती है, जो न केवल दैहिकी अनुक्रिया के अन्वेषण में बल्कि भेषज-वृत्ति (Medical practice) में भी पायी जाती है, वह यह कि एक ही भेषज को अधिक या कम मात्रा में देने पर दो भिन्न-भिन्न विपरीत प्रभाव उत्पन्न करती है। अकार्बनिक अनुक्रिया में भी आश्चर्यजनक रूप से ऐसा ही मिलता है। कम मात्रा में विष अनुक्रिया को बढ़ाता है और अधिक मात्रा में उसे विनष्ट कर देता है (चित्र ३८)।

इस प्रकार हमने जीव और निर्जीव के स्वलिखित अभिलेख की परीक्षा कर ली। ये स्वलेख कितने समान हैं ? यहाँ तक कि हम दोनों का भेद नहीं बता सकते। हमने अनुक्रियात्मक नाड़ियों को दोनों में ही बढ़ते-घटते देखा है। हमने जीवित और निर्जीव दोनों ही में अनुक्रिया को श्रान्ति में लुप्त होते, उद्दीपना में बढ़ते हुए और विष द्वारा विनष्ट होते हुए देखा है।

यह प्रत्यक्ष है; तब हम कैसे एक सीमा निर्धारित करके यह कह सकते हैं कि "यहाँ से भौतिक प्रणाली का और यहाँ से दैहिक प्रणाली का प्रारम्भ होता है" ? यह सीमांकन प्रायः असम्भव है।

जीवित और निर्जीव के ये दोनों अभिलेख-समूह क्या हमें यह नहीं बताते कि इन दोनों में ही कुछ पदार्थ समान और सतत हैं ? क्या हमें यह नहीं बताते कि निर्जीव और जीवित दोनों ही में उद्दीपना द्वारा परमाणविक (Molecular) परिवर्तन होता है ? दैहिक और भौतिक में निकट सम्बन्ध होता है ? यह अकस्मात् समाप्त नहीं होता, बल्कि एक समरूप नियम चलता रहता है ?

पृथ्वी और धूलि, वनस्पति और जीव सबके सब संवेदनशील हैं। इस प्रकार ब्रह्माण्ड-सम्बन्धी विस्तृत धारणा को लेकर यह देखा जा सकता है कि लक्ष-लक्ष आकाशीय पिण्ड जो अन्तरिक्ष में विचरण करते हैं, वे भी बहुत कुछ जीवरचना के समान हैं और इनका एक निश्चित विगत इतिहास है और भविष्य में उद्विकासी प्रगति भी। तब हम सम्भवतः यह भी विश्वास करने लगेंगे कि ये किसी प्रकार भी मृत्यु के शिकंजे में कसे हुए निर्जीव मिट्टी के लोंदे नहीं हैं, बल्कि सक्रिय जीव-रचना हैं "जिनका निःश्वास, सम्भवतः प्रोज्ज्वल लौह वाष्प है, जिनका रक्त है तरल धातु और जिनका भोजन है उल्कापिण्डों का प्रवाह।"

अब हम नवीन उत्साह से उन रहस्यों का अनुसन्धान करेंगे, जो एक लम्बे युग तक हम से छिपे रहे हैं। विज्ञान का प्रत्येक पग, उस सबको जो असंगत और चंचल दिखता है, एक नयी और समरस सरलता में समाहित करके बना है। विज्ञान प्रत्यक्ष भिन्नता में निहित एकरूपता के और स्पष्ट दर्शन की ओर ही सदैव बढ़ा है।

जब मैंने इन स्वलिखित अभिलेखों के मूक साक्षियों को खोज निकाला और सर्वव्यापी एकरूपता की वह स्थिति पायी जिसके अन्दर सब कोई समाये हुए हैं—प्रकाश की ऊर्मियों में कम्पित होता हुआ रजकण, पृथ्वी पर का अनन्त जीवन, और तेजोमय सूर्य जो हमारे ऊपर प्रकाशमान है—तभी मैंने गंगा के किनारे तीन हजार वर्ष पूर्व उद्घोषित पूर्वजों के संदेश को सर्वप्रथम कुछ समझा—

"विश्व की इस परिवर्तनशील अनेकता में जो एकरूपता देखते हैं, शाश्वत सत्य उन्हीं का है, वे ही अमर सत्य को जान सकते हैं और कोई नहीं, और कोई नहीं।"

अध्याय ६

जीवन और मृत्यु की वक्र रेखा

जीवन और मृत्यु में क्या भिन्नता है ? हम कहते हैं—'जीवन से स्पन्दित'। इसका अर्थ क्या है ? इसके विपरीत ये शब्द हैं—'मृत्यु की तरह शान्त।'

वस्तुतः जीवन स्पन्दनशील है क्योंकि जीवित पदार्थ भीतरी और बाहरी आघातों के कारण, जिन्हें साधारणतया आन्तरिक उद्दीपना एवं बाह्य उद्दीपना कहा जाता है, सदैव स्पन्दित रहता है। किन्तु आन्तरिक और बाह्य उद्दीपना यथार्थ में एक ही है, केवल दृष्टिकोण भिन्न है। जो कुछ जीवित अंगों के अन्दर है, वह बाहर से ही आता है। जीवन के आदिकालिक (Primordial) बिन्दु में बाह्य विश्व से शक्ति मानो उँडिलती चली आती है। एक एकाकी कोशिका से जीवन अपनी जमापूँजी आरम्भ करता है और पदार्थ तथा शक्ति के संग्रह के साथ-साथ इसकी वृद्धि होती है और यह बढ़ता चला जाता है। अर्जित धन के चिह्न हैं—वृद्धि और विस्तार। पूर्ण वयस्क होने पर आय और व्यय का संतुलन हो जाता है। इसके पश्चात् पुनः प्राप्ति से अधिक क्षय की अवस्था आती है और अन्त में दिवालियापन और मृत्यु।

कोई भी प्राणी जब तक अपने पर्यावरण की शक्तियों के प्रति अनुक्रियाशील रहता है, वह सक्रिय रूप में जीवित रहता है। वह आघात देने वाली उद्दीपना का उत्तर संकुचन, ऐंठन या फड़कन के द्वारा देता है। जो कुछ वह पाता है, वह सब दे दे यह आवश्यक नहीं है, क्योंकि अनिवार्य उद्दीपना की शक्ति का कुछ अंश यह संचित कर लेता है। इस प्रकार जब बूँद-बूँद इकट्ठा होकर शक्ति का आधिक्य हो जाता है, तो यह स्वतःस्फूर्ति चेष्टाओं के माध्यम से छलकने लगती है। आगे एक अध्याय में इस प्रक्रिया का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया जायगा।

वनस्पति—एक यन्त्र

भौतिक दृष्टि से प्राणी या वनस्पति की तुलना ईंधन से पूर्ण एक ऊष्मा-यंत्र (Heat engine) से की जा सकती है। यह यन्त्र कितने सुचारु रूप से कार्य कर रहा है, इसे जानने के लिए हम इसमें एक यन्त्र, जैसे मेरा अभिलेख उत्तोलक, लगा सकते

हैं, जो उसके क्रियाकलाप का स्पष्ट अभिलेख देगा। जब इंधन कम हो जाता है तब पिस्टन का आघात तथा अभिलेख की ऊपर-नीचे होने वाली क्रिया बन्द हो जाती है। इंधन की समाप्ति से इसका बन्द होना अस्थायी होता है, क्योंकि फिर से इंधन की पूर्ति कर देने पर गति आरम्भ हो जाती है। किन्तु यन्त्र के टूट जाने या दाँते फँस जाने पर यन्त्र का कार्य स्थायी रूप से भी स्थगित हो सकता है। इसी प्रकार यन्त्र में भी पहले से संचित शक्ति के ह्रास के कारण अस्थायी रूप से जीवन का क्रियाकलाप रुक सकता है और जीवित यन्त्र के अन्दर कहीं उलझाव हो जाने पर यह स्थायी रूप से भी बन्द हो सकता है।

भिन्न-भिन्न विषों के प्रभाव से नाड़ी-स्पन्दन कम होते-होते मृत्यु के समय बिलकुल समाप्त हो जाता है। जीवित पदार्थ के प्रत्येक कण को हम परमाणविक यन्त्रों (Molecular machines) का समूह मान सकते हैं। जीवित से मृत दशा में परिवर्तन अणु-सक्रियता की दशा से अन्तःपाश परिदृढ़ता (Interlocked rigidity) की दशा में बदलना है।

देखा जाता है कि एक पूर्ण जीवित सक्रिय मनुष्य क्लोरोफार्म के प्रभाव से एकाएक अचेत हो जाता है। समयोचित उपचार होने पर वह इस जड़ता का परित्याग कर फिर जीवित हो सकता है। किन्तु यदि विलम्ब हो जाता है तो वह जीवन से निर्जीविता के क्षेत्र में पहुँच जाता है। इस प्रकार जीवन और मृत्यु के बीच एक बहुत ही सूक्ष्म रेखा-सीमा निर्धारित रहती है। वह क्षण कितना निर्णायक होता है जब कि जीवित कण अस्थिर दशा में रहते हैं: किंचित् उधर झुका और जीवन-यन्त्र मृत्यु के पाश में जकड़ जाता है। इसी महत्तम क्षण में जीवन और उसकी समाप्ति का नाटक खेला जाता है। इस निर्णायक घड़ी में यदि हम अणु-संघर्ष के इतिहास की खोज कर पायें, केवल तभी हमें मृत्यु के रहस्य का पता चल सकेगा। वह अगोचर, आन्तरिक संघर्ष जो जीवन और मृत्यु की शक्तियों के बीच संग्राम है, कभी-कभी मरते हुए अवयवों के स्वलिखित अभिलेख द्वारा बहुत ही स्पष्ट प्रदर्शित हो जाता है।

मृत्यु का गोचर संकेत

विवर्णता वनस्पति की मृत्यु का एक चिह्न है। उसकी मृत्यु का सहज उपाय है कि वनस्पति-पौधे को पानी में रखा जाय, और उसके तापमान को धीरे-धीरे बढ़ाया जाय, जब तक प्राणहर क्षण में यह जलकर मर न जाय। यदि हम एक फूल का हिस्सा लें, जैसे श्वेत धत्तूर (Datura alba) का दुग्धधवल स्त्री-केसर (Pistil), वह मृत्यु के समय भूरा हो जाता है। इससे भी आश्चर्यजनक है चमकीले

रंग वाले पुष्पों का अकस्मात् विवर्ण होना । नील कमल (Passion flower) की गाढ़-नील-शोण पंखुड़ियां जैसे जादू के जोर से निष्प्रभ श्वेत (Pallid white) हो जाती हैं । इस प्रकार यदि हम आधे फूल को गरम पानी में डुबोयें और आधे को बाहर छोड़ दें तो डूबा हुआ आधा भाग मृत होकर सफेद हो जाता है, जब कि बाहर वाला आधा अपना बैंजनी रंग लिये रहता है। इसी प्रकार भारतीय लाल फूल, जयन्ती (Sesbania) का लाल रंग मृत्यु के बाद हल्का नीला हो जाता है । प्राकृतिक पदार्थों में सांघातिक तापमान प्रायः निश्चित होता है, करीब ६०° सेण्टीग्रेड या १४०° फार्नहाइट । जब वनस्पति उद्दीपना के आधिक्य से श्रान्त होती है, तो मृत्यु बिन्दु और भी कम हो जाता है और यह कमी श्रान्ति की मात्रा पर निर्भर रहती है ।

हमी लोगों की तरह वनस्पति भी जब थक जाता है तब मृत्यु के साथ वास्तविक संघर्ष करने में असमर्थ होता है। इस प्रकार एक रंगीन पंखुड़ी में श्रान्ति की अदृश्य परिधियों का मानचित्र लेना सम्भव है। इसके लिए हम धातु के दो निकृन्त पत्र (Stencil patterns) लेते हैं और अत्यधिक चमकीले रंग की पंखुड़ी को इनके बीच में रखते हैं। फिर दोनों निकृन्तों को विद्युत्-कुण्डल के दोनों विद्युदग्रों (Electrodes) से जोड़ देते हैं। इसके बाद पंखुड़ी में निश्चित स्थानों पर आघात पहुँचाया जाता है। इस प्रकार पंखुड़ी श्रान्त हो जाती है। जब निकृन्त हटा लिये जाते हैं तब हमें कोई स्पष्ट परिवर्तन नहीं दिखाई पड़ता, यद्यपि जिस स्थान पर विद्युत्-आघात किया जाता है, वहाँ पर श्रान्ति गोपनीय रूप से रहती है ।

अब हम यदि इस प्रादर्श को ५०° सें० गरम पानी में रखें तब पंखुड़ी के जो हिस्से ताजे रहते हैं, वे परिवर्तित नहीं होते। कारण, मृत्यु-विवर्णता ६०° सें० तापमान में ही होती है। किन्तु जो हिस्से श्रान्त हो चुके हैं, वे निम्नतर तापमान में ही मृत हो जाते हैं और विवर्ण होकर स्थानीय मृत्यु प्रदर्शित करते हैं । इस प्रकार श्रान्ति की अदृश्य प्रतिमूर्ति अब मृत्यु के विवर्ण के रूप में दिखने लगती है। इसी को तापलिख (Thermograph) कहते हैं । यही है ताप अभिलेख (Heat record) और मृत्यु-मानचित्र ।

क्या इसके सदृश कुछ और भी है जो प्रकृत-अवस्था में वनस्पति की प्रारम्भिक मृत्यु का मानचित्र बताये ? हम विशेष पत्तियों की चित्र-विचित्रता की ओर ध्यान दें; भारत के समुद्रशोष की पत्तियां गाढ़ी हरी होती हैं और उनमें सफेद धब्बे होते हैं। वस्तुतः ये धब्बे आने वाली मृत्यु के सूचक हैं और यदि हम इन पत्तियों का अवलोकन करते रहें, हम देखेंगे कि इन्हीं निश्चित स्थानों पर ऊतक वियोजित

(Disintegrated) हो जाता है और यहीं से चारों ओर फैलता है। हेमन्त काल में पत्तियाँ अत्यधिक चमकीली हो जाती हैं, इसका कारण है मृत्यु के पूर्व की उत्तेजित लाली।

मृत्यु में विद्युत्-विसर्जन (Electric discharge)

मैं पहले ही विस्तृत रूप से बता चुका हूँ कि किस प्रकार वे परिवर्तन जो हमारी परिनिरीक्षा के बाहर होते हैं, उन्हें भी हम विद्युत्-विभिन्नता (Electric variations) द्वारा जान सकते हैं। आकस्मिक उद्दीपना द्वारा ऋण विद्युत्-परिवर्तन होता है। मैं अभी यह बताऊँगा कि मृत्यु के समय विद्युत्-मोचन होता है। प्रदर्शन की सरल रीति यह है: एक हरे मटर का आधा भाग लीजिये और उसके बाहरी और भीतरी भाग को एक 'गैलवनोमीटर' से जोड़ दीजिये। गरम पानी में इस आधे मटर को रखकर उसके तापमान को धीरे-धीरे बढ़ाइये। ६०° सें० यानी मृत्युबिन्दु पर उसके अवयवों द्वारा एक अत्यधिक शक्तिशाली विद्युत्-मोचन होगा। मृत्यु के समय जो विद्युत्-परिवर्तन होता है, वह अत्यधिक ऊँचा होता है, कभी-कभी ०·५ वोल्ट तक पहुँच जाता है। यदि आधे मटर के ५०० जोड़े कतार में सजा दिये जायँ, तो अवसानिक विद्युत्-दाब (Terminal electrical pressure) ५०० वोल्ट का होगा और असावधान मनुष्य विद्युत्-मारण (Electrocution) द्वारा इसके शिकार हो सकते हैं। क्या ही अच्छा है कि भोजन बनाने वालों को इस विशेष खाद्य के पकाने का खतरा मालूम नहीं है और यह भी उनके सौभाग्य की बात है कि ये मटर श्रेणीबद्ध नहीं रहते।

स्मृति की पुनश्चेतना

अब हम मृत्यु के पहले होने वाले विद्युत्-अंग-संकुचन (Electrical spasin) से सम्बन्धित एक अत्यधिक रोचक गौण (Secondary) प्रभाव के विषय में विचार करेंगे। मैं स्मृति के उस अकस्मात् पुनः लौटने का उल्लेख कर रहा हूँ, जिसके विषय में हमने पहले से सुन रखा है। यहाँ मैं उस अनुसन्धान के विषय में थोड़ा-सा उल्लेख करूँगा जिसे मैंने स्मृति की आधारभूत पृष्ठभूमि में किया। उद्दीपना के प्रत्येक आघात के बाद अनुक्रिया तल का आणविक व्याकर्षण (Molecular distortion) होता है और इस व्याकर्षण के बाद प्रत्यादान (Recovery) बहुत धीरे-धीरे होता है। यह प्रत्यादान कभी सम्पूर्ण नहीं होता। उद्दीपना से पड़े चिह्नों के निशान गुप्त बिम्ब के रूप में रह जाते हैं। ये बिम्ब सूक्ष्मदर्शी (Microscope) में भी नहीं दिखते। किन्तु उपयुक्त अवस्थाओं में यह अदृश्य लेख दिखाई

पड़ने लगता है। जो चिह्न यों किसी तरह नहीं दिख सकते, उन्हें मैं धातुपट्ट (Metallic plate) पर अंकित करने में समर्थ हो सका। जब उस स्थान को विकीर्ण उद्दीपना दी जाती है तब अदृश्य बिम्ब आसानी से दिखने लगते हैं।

इसी प्रकार हमारे संवेदी तल पर जो बिम्ब बनते हैं, वे गुप्त स्मृति-बिम्बों की तरह छिपे रहते हैं और ये इच्छा की उद्दीपना के आघात से पुनरुज्जीवित हो जाते हैं। इसका अर्थ यह है कि स्मृति के पुनरावर्तन का कारण है गुप्त बिम्बों को जगाने के लिए चित्रित तल पर शक्तिशाली उद्दीपना डालना। अब हमने देखा है कि मृत्यु के संघर्ष में अवयवों के प्रत्येक भाग में विद्युत् अंग-संकुचन फैल जाता है और यह शक्तिशाली प्रसृत (Difuse) उद्दीपन, जो अब अनैच्छिक हो जाता है, एक ऐसे आघात का रूप धारण कर सकता है जिसमें एक-एक करके दिये गये स्मृति-बिम्ब क्षण भर के लिए कौंध जायँ।

मृत्यु का अंग-संकुचन

साधारण वनस्पति में मृत्यु के चिह्न, जैसे झुकना, मुरझाना और विवर्ण होना ठीक मृत्यु के ही समय नहीं बल्कि बाद में प्रकट होते हैं। मृत्यु-बिन्दु से आगे तापमान के जाने पर भी वनस्पति कुछ समय तक नूतन और जीवित दिखती है। तब कौन-सा जीवित पौधा है और कौन सा मृत, यह कहना कैसे सम्भव है और उसके यथार्थ पारगमन (Transition) का समय कैसे जाना जा सकता है?

इस भिन्नता का ज्ञान तभी सम्भव है जब यह निरीक्षण किया जाय कि जीवित अवस्था की कोई लाक्षणिक प्रतिक्रिया कब लुप्त होती है। किन्तु आदर्श रीति तो यह होगी कि उस प्रतिक्रिया की खोज की जाय जो मृत्यु के समय अकस्मात् विपरीत दशा में परिवर्तित हो जाती है। तब रञ्चमात्र भी संशय नहीं रह जायगा जिसका निर्धारण लुप्त होते हुए, क्षीण होने वाले प्रभाव से अविभेद्य हो। मैंने वनस्पति में मृत्यु के समय के अंग-संकुचन का उद्घाटन कर इस आदर्श रीति से काम लेना सम्भव किया है। मृत्यु के समय का यह अंग-संकुचन प्राणी की मृत्यु-वेदना से मिलता-जुलता है।

वनस्पति में मृत्यु का अभिलेख प्राप्त करने के लिए दो उपयुक्त विभिन्न रीतियाँ खोजी गयी हैं। पहली है, पौधे को लगातार ऊपर उठते हुए तापमान में रखना, जब तक कि मृत्यु-बिन्दु न पहुँच जाय। दूसरी रीति, जो पहली जैसी आदर्श नहीं है, वह है विष का पतला घोल बनाकर उसमें पौधे को रखना। इसमें विष की मात्रा और उसकी प्रचण्डता पर निर्भर मृत्यु-बिन्दु अल्प या दीर्घ समय के बाद आता है।

मृत्यु-अभिलेखक

मैं एक मृत्यु-अभिलेखक बनाने में सफल हुआ हूँ। यह मरते हुए जीव का सतत लेख लेकर उसकी मृत्यु के यथार्थ बिन्दु का अभिलेख ले लेता है। यह अभिलेखक यन्त्र घूमने वाला होता है। धूमित काँच पट्ट विद्युत्-चुम्बक युक्ति द्वारा प्रदोलित किया जाता है और इस प्रकार ऊपर उठते हुए तापमान की प्रत्येक मात्रा पर बिन्दुओं की शृंखला बनती जाती है। मृत्यु-अभिलेख के लिए हम लाजवन्ती का एक नमूना लेते हैं। इसी प्रकार कोई भी दूसरा पौधा सफलतापूर्वक काम में लाया जा सकता है। इस लाजवन्ती को हम जल में रखकर धीरे-धीरे तापमान बढ़ाते हैं। इस अभिलेख में ऊपर उठती हुई जो फैलनेवाली गति है, वह नीचे की ओर जाने वाली रेखा द्वारा और सिकुड़ती हुई नीचे की गति ऊपर जाती हुई रेखा द्वारा विदित होती है।

चित्र ३९—लाजवन्ती के जीवन और मृत्यु का वक्र। वक्र के निम्न या विस्तृत भाग में क्रमिक बिन्दु तापमान के १° सें० तक बढ़ने का निरूपण करते हैं। अंग-आकुंचन द्वारा ६०° सें० पर वक्र का अपवर्तन।

यह प्रयोग २५°सें० पर किया गया। जल की बढ़ती हुई उष्णता का ठीक वही परिणाम हुआ जैसा हमारे शरीर पर होता है। वह थी बढ़ती हुई शिथिलता (रिलैक्शेसन) और यह रेखा नीचे की ओर तब तक चलती गयी, जब तक तापमान करीब-करीब ६०° सें० तक न पहुँच गया। तब कुछ क्षण के लिए गति बन्द हो गयी। फिर अकस्मात् मृत्यु-अंगसंकोच घटित हुआ और अभिलेख उत्तोलक आक्षेपी (कनवल्सिव) शक्ति द्वारा फेंक दिया गया (चित्र ३९)। अवलोकन करिये, अपवर्तांक कितना तीक्ष्ण है। यह पूरा अभिलेख इस प्रकार जीवन और मत्यु की रेखा है। यदि अपवर्तांक के पहले ही वनस्पति को ठंडा कर दिया जाय तो वह बच सकती है, किन्तु एक बार उस बिन्दु तक पहुँचने पर फिर चेतना नहीं लौट सकती। इसी तीव्र मोड़ के बिन्दु पर जीवन और मृत्यु के संघर्ष का अन्त होता है।

युवा और शक्तिशाली नमूनों में यह मृत्यु-वेदना अत्यधिक प्रचण्ड होती है और जैसे आयु बढ़ती जाती है, इसकी प्रचण्डता कम होती जाती है। अत्यधिक वृद्ध आयु में जीवन-रेखा के अभिलेख का मृत्यु-रेखा में परिवर्तन प्रायः अदृश्य-सा होता है।

यदि पौधा पहले से ही उद्दीपना के आधिक्य से श्रान्त रहता है, तब मृत्यु-बिन्दु लघुतर तापमान पर ही पहुँच जाता है। एक परीक्षण विशेष में श्रान्त पौधे की ३७° सें० पर ही मृत्यु हो गयी। इसका अर्थ हुआ कि मृत्यु-बिन्दु कम से कम २३° सें० घट गया।

मृत्यु-उत्तेजना का पारेषण

पौधे को अनेक जीवित एककों (Units) का उपनिवेश समझना चाहिए और यह भी सम्भव है कि उसके एक अंश को नष्ट कर देने पर भी दूसरे अंश जीवित रहें। यदि पौधे का एक अंश मृत हो जाय तो क्या होगा? यदि मृत्यु के समय उद्दीपना अत्यधिक बलशाली है तब उसका पारेषण होगा और दूर के गतिशील अँगों में भी उचित अनुक्रिया का कारण बनेगा। यह उल्लिखित निम्नोक्त संपरीक्षण द्वारा प्रदर्शित किया गया है--

लाजवन्ती के अधोभाग को जल में रखकर उसका तापमान बढ़ाया गया। निर्णायक बिन्दु पर अत्यधिक शक्तिशाली उद्दीपना दी गयी जो ऊपर उठती गयी और इसके कारण ऊपर की सभी पत्तियाँ क्रमिक रूप से गिर गयीं। जल में डूबे हुए अंश की स्थानीय मृत्यु ही इस उद्दीपना का कारण थी, यह इससे प्रमाणित हो गया, क्योंकि बीस मिनट बाद ही ऊपर की सब पत्तियाँ फिर से सजग हो गयीं। जल को ठंडा करने के बाद फिर से गरम किया गया। किन्तु उसका कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ, क्योंकि डूबा हुआ अंश मृत था। तब वनस्पति को एक इंच के करीब और डुबाया गया और इसी प्रकार संपरीक्षण को दुहराया गया, तब उस नये अंश की मृत्यु के कारण एक नयी उद्दीपना हुई। इस संक्रामित उद्दीपना की अनुक्रिया यह हुई कि फिर से पत्तियाँ क्रमिक रूप में गिर गयीं। यह सिद्ध करता है कि मृत्यु के समय ऊतकों में उद्दीपना अत्यधिक शक्तिशाली होती है।

इसी प्रकार यदि ऊतक का एक अंश विष में रखा जाय तो वह मृत्यु के समय उद्दीप्त प्रेरणा प्रदर्शित करेगा। यदि विष अधिक शक्तिशाली और प्रचण्ड है तब यह सब और शीघ्र होगा। यदि विष को घोल कर दिया जायगा तब देर लगेगी, क्योंकि तब उसको मृत्यु-बिन्दु तक पहुँचाने के लिए देर तक देना पड़ेगा।

जीवन और मृत्यु में सातत्य

कुछ विवेचनों द्वारा यह ज्ञात होता है कि जीवन और मृत्यु की घटनाएँ पूर्ण रूप से विरोधात्मक (Antithetic) नहीं हैं। इनमें एक सातत्य है जो इस खाई पर पुल बनाता है। प्रत्येक आघात के बाद जीव की अनुक्रियात्मकता कुछ देर के लिए समाप्त हो जाती है, इसके बाद वह धीरे-धीरे सचेत होता है। ज्ञानशून्यता का समय आघात की गहराई पर निर्भर है। इस प्रकार चेतना और ज्ञानशून्यता, जो जीवन और मृत्यु की प्रतीक हैं, बारी-बारी से घटित होती हैं। वस्तुतः हमारा जीवन आरंभमाण मृत्युओं का तारतम्य है। हल्की उद्दीपना के बाद चेतना शीघ्र ही लौट आती है, किन्तु अत्यधिक भारी आघात के बाद वह नहीं लौटती। मृत्यु उद्दीपना की चरम स्थिति है।

लाजवन्ती की मध्यम, भारी और अत्यधिक उद्दीपना की अनुक्रिया के अभिलेख में हमें कतिपय लाक्षणिक अन्तर मिलते हैं। पहली दशा में चेतना पन्द्रह मिनट में लौटती है, जैसा चित्र सं० ४ में दिखाया गया है। जहाँ चेतना की रेखा अक्ष (Axis) या आधार-रेखा तक पहुँच जाती है। इससे अधिक उद्दीपना द्वारा चेतना आने का समय एक घंटे का हो जाता है तथा चेतना-रेखा और अधिक दूरी पर अक्ष से मिलती है। अब तक तो चेतना के लौटने की सम्भावना रहती है किन्तु आघात इतना भारी हो सकता है कि मृत्यु हो सकती है और अंगों का संकुचन इतना प्रचण्ड हो सकता है कि वही मृत्यु का संकुचन सिद्ध हो सकता है। अब चेतना-रेखा अक्ष के समान्तर हो जायगी और फिर उससे कभी नहीं मिल सकेगी।

अब हम एक अवतल (Concave) दर्पण में किसी वस्तु के वास्तविक बिम्ब के विषय में संपरीक्षण करें। प्रतिबिम्बित किरणें पार होकर अक्ष पर मिलती हैं और वहीं वास्तविक बिम्ब बनता है। जैसे-जैसे यह वस्तु पास लायी जाती है, वैसे ही वैसे बिम्ब दूर होता जाता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार भारी उद्दीपना द्वारा चेतना-रेखा। ऐसा होते-होते एक समय आता है जब प्रतिबिम्बित किरणें कभी नहीं मिलतीं और दर्पण के इस ओर कोई भी बिम्ब नहीं बनता। तब क्या यह पूर्णतः लुप्त हो गया? ऐसा नहीं होता, क्योंकि अब यह बिम्ब दर्पण की दूसरी ओर चला जाता है। भारी घातक आघात के बाद प्रकृति को प्रतिबिम्बित करने वाले 'बृहत्-दर्पण' के इस ओर चेतना लौटकर नहीं आती। क्या यह सम्भव है कि उस ओर फिर से नवीन चेतना लौटती है, उस ओर जो हमसे छिपा है।

हमारे इन मूक साथियों ने, जो हमारे द्वार के आस-पास उग रहे हैं, अब हमसे अपने जीवन, कम्पन और मृत्यु-आकुंचन (Spasm) की कहानी ऐसी लिपि में कही है

जिसे हम पढ़ सकते हैं। क्या अब यह नहीं कहा जा सकता कि उनकी कहानी का कारुण्य हमारी कल्पना की सीमा के परे है ?

जीवन की इस एकता को जानने के बाद क्या हमारी रहस्य-सीमा और अधिक गहन या न्यून हो जाती है ? जीवन का अनन्त विस्तार जो नीरव और मूक है, और भी अधिक विस्मयकारी जटिलता का सूचक है। क्या यह जानकर हमारा आश्चर्य कुछ कम हो जाता है ? क्या विज्ञान हमारा आश्चर्य और गहन नहीं करता ? क्या विज्ञान की प्रत्येक उन्नति हमारे लिए उस प्रस्तर-सोपान की एक-एक सीढ़ी नहीं है जिस पर प्रत्येक मनुष्य को, जो आत्मा के उत्तुंग शिखर से सत्य के प्रतिश्रुत लोक को देखने की इच्छा करता है, चढ़ना पड़ता है ?

अध्याय १०

स्वचलता

यह दिखलाया जा चुका है कि वनस्पति मन्द से मन्द उद्दीपना के प्रति अनुक्रिया करती है। वनस्पति की प्रत्येक अनुक्रिया-गति, ठीक प्राणियों की तरह किसी निश्चित कारण का निर्देश करती है, क्योंकि इस गति का कारण पूर्व-उद्दीपना है। और भी गतियाँ हैं जो इससे भी अधिक रहस्यपूर्ण हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि उन गतियों का कोई कारण नहीं होता। उदाहरण के लिए, लगता है कि हृदय स्वतः स्पन्दित होता है। हृदय के आकस्मिक संकुचन के बाद उसका विस्तार होता है और जीवन पर्यन्त यही स्पन्दलय स्वतः बनी रहती है। इन स्वतः क्रियाओं का कोई अज्ञात और रहस्यमय अंतरंग कारण है। अतः इस स्वचलता के रहस्य का क्या समाधान है?

चित्र ४०—डेस्मोडियम गाइरेंस का पर्ण, दो छोटी पार्श्वतः पत्तियाँ स्वतः स्फूर्त गतियों का प्रदर्शन करती हैं।

यद्यपि ऐसी स्वतः गतियाँ प्रायः प्राणियों से ही सम्बन्धित हैं फिर भी इसी प्रकार की सक्रियता वनस्पति में भी है। इसका उदाहरण है परिभ्रामी शालपर्णी (Telegraph plant, Desmodium gyrans)। गंगा के किनारे इसके जंगल हैं और सच कहा जाय तो इसकी पत्तियों की सतत सक्रियता से अधिक आश्चर्यजनक कोई घटना नहीं है। इसके संयुक्त पर्ण में तीन पत्तियाँ होती हैं। एक बड़ी पत्ती आगे होती है और पीछे दो छोटी (चित्र ४०)। ये दोनों छोटी पत्तियाँ, जिस प्रकार का संकेत-बाहु (Semaphore) दूरलिख-संकेत (Telegraphic Signalling) के लिए काम में लाया जाता था, वैसे ही ऊपर-नीचे होती रहती हैं। गरमी के दिनों में ये पत्तियाँ निरन्तर ऊपर-नीचे नाचती रहती हैं। भारतीय कृषकों का विश्वास है कि वे उँगली चटकाने से भी नाचने

लगती हैं। सच तो यह है कि उन्हें इस प्रकार के प्रोत्साहन की आवश्यकता नहीं रहती। क्योंकि दोनों पत्तियों के जोड़ के पास का जो अति सूक्ष्म पीनाधार है, वह स्वतः अकस्मात् संकुचित हो जाता है और इसके बाद धीरे-धीरे फैलता हुआ चेतनापूर्ण हो जाता है।

मैंने सफलतापूर्वक एक पर्ण की चौबीस घंटे से भी अधिक समय की निरन्तर स्पन्दित गति का अभिलेख लिया है। चार घंटे का अभिलेख चित्र ४१ में दिखाया गया है। इन स्पन्दनों की असाधारण एक-रूपता सचमुच ही बहुत विलक्षण है।

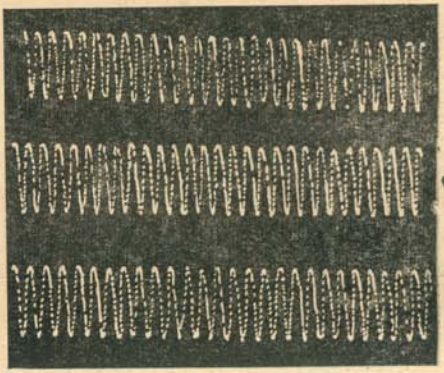

चित्र ४१—डेस्मोडियम की पत्तियों के चार घण्टे के स्पन्दनों का सतत अभिलेख।

प्राणियों और वनस्पतियों में स्वतः स्पन्दन

परिभ्रामी शालपर्णी के पर्ण-स्पन्दन और प्राणी के हृत्स्पन्दन में स्पष्ट एक-रूपता है। क्या यह एकरूपता केवल बाह्य है या और गहराई तक गयी है ? यदि

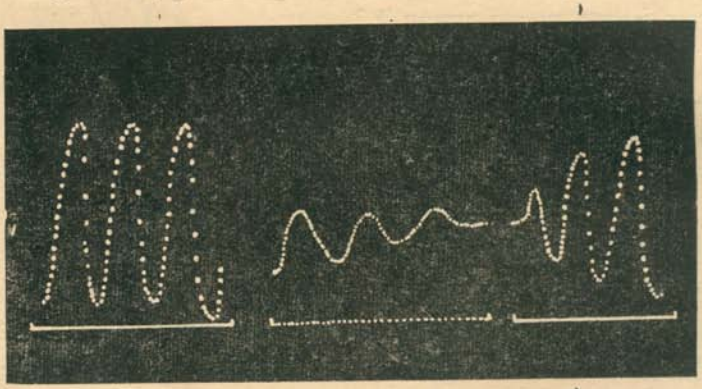

चित्र ४२—डेस्मोडियम के स्पन्दनों पर सिंचाई और शुष्कता का प्रभाव। प्रथम श्रेणी स्वाभाविक स्पन्दन का प्रदर्शन करती है; द्वितीय, शुष्कता में रुकना। तृतीय, सिंचाई के बाद स्पन्दन का पुनरुन्नयन।

यह एकरूपता मूलगत है तब बाह्य दशाओं की भिन्नता का प्रभाव दोनों पर एक-सा होना चाहिये। मेढक और अन्य प्राणियों के हृदय का अध्ययन करने पर देखा गया है कि हृद् ऊतक (Cardiac ti sue) की प्रतिक्रिया इस प्रकार की होती है कि स्पन्दन आरम्भ करने के लिए कुछ आन्तरिक दाब की आवश्यकता होती है। घोंघे के मूक हृदय के हृद्-दाब को बढ़ाने पर स्पन्दन का नवीकरण इसका अच्छा उदाहरण है।

इसी प्रकार शालपर्णी की पत्ती का स्पन्दन भी कम आंतरिक तरल स्थैतिक दाब (Hydrotatic pressure) द्वारा रुक जाता है। ऐसा वनस्पति में पानी देना बन्द करने पर होता है। सींचने पर स्पन्दन का नवीकरण हो जाता है (चित्र ४२)।

चित्र ४३–ईथर-वाष्प का प्रभाव।

निश्चेतकों के प्रभाव से स्पन्दन रुक जाता है। ऊपर वाले चित्र में ईथर-वाष्प (Ether Vapour) के प्रभाव से शालपर्णी के स्पन्दन का बन्द होना प्रदर्शित है। यह स्पन्दन बहुत धीरे-धीरे बन्द हुआ। तदुपरान्त ईथर-वाष्प को तेजी से उड़ा दिया गया और वनस्पति-कक्षा में स्वच्छ वायु प्रविष्ट की गयी। पौधा प्रायः चौथाई घंटे बाद स्वस्थ हुआ और उसका स्पन्दन पुनः स्वाभाविक हो गया (चित्र ४३)।

विषों की विरोधी प्रतिक्रियाएँ

प्राणी और वनस्पति-ऊतकों के स्वतः स्पन्दनों में और भी अनेक समानताएँ हैं जिन्हें आगे किसी अध्याय में बताया जायगा। मैं यहाँ भिन्न-भिन्न भेषजों (Drugs) की कतिपय विरोधी प्रतिक्रियायों का वर्णन करूँगा। उदाहरणार्थ, विषमय अम्ल हृद्गति का अवरोध करते हैं, किन्तु यह विशेष अवरोध अनुशिथिलन-विस्तार (Diastolic expansion) में ही होता है। क्षारीय विषों द्वारा भी हृत्स्पन्दन का अवरोध होता है किन्तु इसके विपरीत तरीके से। जैसे हृत्प्रकुंचन संक्षेपन में (Systolic contraction) दोनों विषों की क्रियाएँ विरोधी हैं, यह इस तथ्य से भी प्रमाणित

होता है कि जब एक विष द्वारा हृत्स्पन्दन का अवरोध होता है, दूसरे द्वारा उसको पुनरुज्जीवित किया जा सकता है। यह दोनों के ही एक दूसरे के प्रतिकारक (Artidote) होने का विचित्र उदाहरण है।

शालपर्णी में समान प्रतिक्रियाएँ देखकर आश्चर्य हुआ। विषाक्त अम्लों द्वारा अनुशिथिलन में स्पन्दन का अवरोध होता है तथा क्षारीय विषों द्वारा हृत्प्रकुंचन में। अन्त में इन दोनों ही विषों द्वारा किये गये अवरोध को इनकी विरोधी प्रतिक्रिया से नष्ट किया जा सकता है।

इन प्रयोगों के निष्कर्ष से प्राणी और वनस्पति के स्पन्दन-यंत्र का मूलतः समान होना प्रदर्शित होता है किन्तु फिर भी यह प्रश्न तो रह ही जाता है कि इन स्वतः क्रियाओं का कारण क्या है ?

संयोजी शृंखला का पता लगाना

अब तक हमने केवल एक ही उद्दीपना द्वारा एक ही अनुक्रियात्मक गतिशीलता का परिचय पाया; अब हम देखते हैं कि एक ऐसा पूरा वर्ग है जिसमें अकारण ही गति होती है। क्या दोनों के बीच कोई विराम (Hiatus) है अथवा कोई संयोजी शृंखला है, जिसके आविष्कार द्वारा हमारे लिए इन रहस्यमयी स्वतः गतियों का स्पष्टीकरण सम्भव हो ?

ऐसी संयोजी शृंखलाएँ मुझे सामान्य पंक्तिपत्र (Biophpytum Sensitivum) और सामान्य कमरख (Averrhoa Carambola) में मिली। पंक्तिपत्र कलकत्ता के आस-पास मिलने वाला एक खरपतवार है। इसकी संवेदनशील पत्तियाँ पर्णवृन्त पर दो पंक्तियों में क्रमबद्ध रूप से सजी रहती हैं और स्फुरण-गति (Twitching) द्वारा ही उद्दीप्त होती हैं। कमरख का वृक्ष बहुत बड़ा होता है। इसकी पत्तियाँ भी संवेदनशील होती हैं। ये पत्तियाँ भी लगभग पंक्तिपत्र की पत्तियों की तरह लम्बे पर्णवृन्त पर दो श्रेणियों में रहती हैं। साधारणतया पत्तियों का फैलाव क्षैतिज (Horizontol) होता है। पंक्तिपत्र और कमरख दोनों में ही प्रत्येक पत्ता किसी भी प्रकार की उद्दीपना द्वारा गिरकर प्रत्युत्तर देती है, बाद में चेतनालाभ होता है। एक पर्ण की प्रबल उत्तेजना के कारण आसपास के पर्ण भी उत्तेजित हो जाते हैं और फिर हमारे सामने सब संवेदनशील पत्तियों की ऊर्ध्वगामी तरंगित गति का एक अद्भुत दृश्य उपस्थित हो जाता है।

विविध अनुक्रियाएँ

पंक्तिपत्र और कमरख की अनुक्रिया के लक्षण एकसमान होते हैं। पुनरावृत्ति से बचने के लिए मैं पंक्तिपत्र की गहरी उद्दीपना की अनुक्रिया का वर्णन सविस्तार करूँगा। मैंने एक पत्ती पर गहरे विद्युत् आघात द्वारा उद्दीपना पहुँचायी। पहले एक यूनिट का $\frac{१}{२०}$, $\frac{१}{१०}$, $\frac{५}{१०}$ और फिर १ और २ यूनिट तक। $\frac{१}{२०}$ पर कोई भी उत्तर नहीं मिला, किन्तु जब उद्दीपना $\frac{१}{१०}$ की गयी तब स्पष्ट प्रत्युत्तर मिला। जब उत्तेजना की गहराई १ यूनिट की गयी तब प्रतिक्रिया भी उसी प्रकार की हुई। इस प्रकार पंक्तिपत्र की पत्ती की अनुक्रिया 'सब या कुछ नहीं' (All or None) नियम का प्रदर्शन करती है। यह या तो अधिकतम प्रत्युतर देती है या बिलकुल ही नहीं।

चित्र ४४—पंक्तिपत्र की पत्ती की ·१, ·५, १ और २ की उद्दीपना के प्रति अनुक्रिया। अन्तिम में अनुक्रिया बहुविध हो जाती है।

इस प्रकार यह देखा जाता है कि १ यूनिट की अनुक्रिया उसकी गहराई $\frac{१}{१०}$ की अनुक्रिया से अधिक नहीं हुई। वह अधिक शक्ति जो उस पर उद्दीपना के रूप में आघात करती है, क्या हुई? यह मानना आवश्यक नहीं है कि हर एक बार जितनी भी उद्दीपना-शक्ति का उपयोग होता है, वह गति का कारण होता है; इसका कुछ अंश ऊष्मा के रूप में बेकार भी हो सकता है। किन्तु दूसरी ओर यह भी सम्भव है कि कुछ समय के लिए अधिक शक्ति का संचय बाद में काम में लाने के लिए होता हो। एक भौतिक उदाहरण लीजिये, जो शक्ति एक संपीडित (Compressed) झरने में संचित रहती है, उसे मुक्त करने पर निरन्तर प्रदोलन होता है। अब यह प्रश्न उठता है कि क्या पंक्तिपत्र की पत्ती में अत्यधिक उद्दीपना के बाद शक्ति समान रूप से संचित रहती है? मान लीजिये कि ऐसा ही होता हो, जो अतिरिक्त शक्ति है वह संग्रह के काम में लायी जा सकती है और देखने वाले को उसी समय उसका पता नहीं चलता। किन्तु यही संचित शक्ति बाद में लयबद्ध या बारंबार होने वाली गति का रूप ले सकती है। वास्तविकता यही है जैसा २ यूनिट की उद्दीपना पर हुआ। यहाँ हम देखते हैं कि एक

तीव्र उद्दीपना द्वारा न केवल एक ही अनुक्रिया होती है वरन् पुनरावर्तन श्रेणी में बहुल अनुक्रियाएँ होती हैं (चित्र ४४)।

ये बहुल अनुक्रियाएँ किसी भी तीव्र उद्दीपना द्वारा होती हैं, जैसे प्रकाश, विद्युत्, ताप अथवा रासायनिक उद्दीपना। बहुल सक्रियता की स्थिरता भी वनस्पति पर किये गये आघात की शक्ति पर निर्भर है। साधारण आघात द्वारा कतिपय

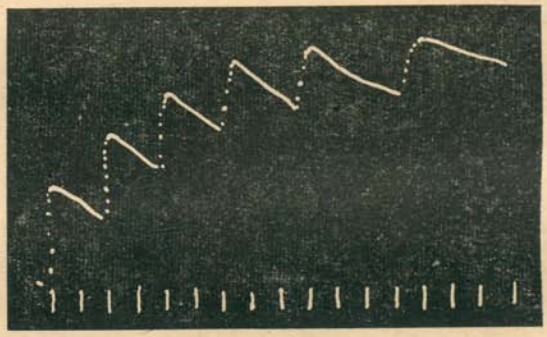

चित्र ४५—एक ही तीव्र विद्युत्-आघात द्वारा कमरख में बहुविध अनुक्रिया।

स्पन्दन तथा तीव्र या दीर्घ सतत आघातों द्वारा अनेक आवर्ती स्पन्दन होते हैं (चित्र ४५)। ऐसा लगता है कि अनुक्रिया प्रतिध्वनित या आन्दोलित होती है। यहाँ संस्वरित विशाख (Tuning fork) द्वारा दिये गये प्रदोलन (Vibrations) से सादृश्य (Analogy) है। जब मृदु आघात किया जाता है तब यह अल्प समय के लिए प्रदोलित होकर स्वर निकालता है। किन्तु जब तीव्रतर आघात किया जाता है तब यह अधिक स्थायी उत्तर देता है।

अर्ध स्वचलता

प्राकृतिक अवस्था में पौधा पर्यावरण से प्राप्त भिन्न-भिन्न उत्तेजकों की क्रियाओं से अरक्षित रहता है। यह उष्णता, प्रकाश की क्रिया, वायु-तरंगों की यान्त्रिक उत्तेजना और अपने अन्दर के विभिन्न रासायनिक कारकों, या जिन कारकों का अवशोषण कर लेता है, उन सब की क्रियाओं से अरक्षित रहता है। उद्दीपना के इन बाह्य स्रोतों की सम्मिलित क्रिया से वनस्पति में संचित शक्ति इतनी अधिक हो जाती है कि उद्दीप्त उत्प्लाव (Excitatory overflow) होता है। वनस्पति के पूर्व इतिहास के अन्तर्विश्लेषण का यथेष्ट न होना ही कारण था कि हम सोचते थे कि

यह गति स्वत: होती है। इन स्वत: गतियों की भीतरी उद्दीपना सच पूछिये तो बाह्य उद्दीपना ही है जो उसके अन्दर रुद्ध हो गयी है।

हम सुविधा के लिए वनस्पति को दो वर्गों में बाँट सकते हैं—साधारण और स्वचालित। प्रकृत स्थिति में पंक्तिपत्र पहले वर्ग में आता है, कारण, यह एक मन्द उद्दीपना की एक ही अनुक्रिया प्रदर्शित करता है, किन्तु तीव्र उद्दीपना की बहुल अनुक्रियाएँ प्रदान करता है। ये अनुक्रियाएँ स्पष्ट ही स्वत: होती हैं। इस प्रकार साधारण और स्वचालित वनस्पतियों के बीच एक सातत्य रहता है।

अब हम यह देखें कि क्या एक स्पष्ट रूप से स्वचालित पौधा किसी साधारण पौधे की स्थिति तक लाया जा सकता है; और क्या वह अधिक संचित शक्ति ही शालपर्णी (Desmodiun) को स्वत: गति प्रदर्शन में सहायता देती है? मैंने एक शाल-

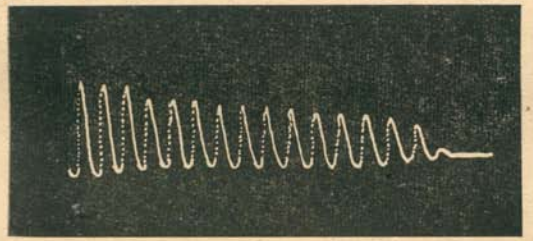

चित्र ४६—डेस्मोडियम में संचित ऊर्जा के क्षय के पश्चात् स्पन्दन का क्रमिक स्थगन।

पर्णी के पौधे को लेकर उसे उसके पर्यावरण की उद्दीपक शक्तियों से छिपा दिया। इसकी संचित शक्ति के ह्रास ने इसके स्पन्दन को शीघ्र ही बन्द कर दिया (चित्र ४६)। फिर नयी उद्दीपना के प्रवेश ने स्पन्दन को पुनरुज्जीवित कर दिया। मन्द उद्दीपना द्वारा एक ही अनुक्रिया हुई तथा तीव्रतर उद्दीपना का फल हुआ बहुल अनुक्रियाएँ। जब इसे पर्यावरण को प्रकृत उद्दीपना में पुन: रखा गया तब इसकी स्वत: क्रियता लौट आयी।

इसलिए प्रत्यक्ष है कि संचित शक्ति ही देखने में स्वत: स्फूर्त लगने वाली क्रिया के रूप में छलक पड़ती है। यह तथ्य, उन विविध क्रियाओं पर, जो अभी तक अकारण या अयुक्तिक समझी जाती थीं, प्रकाश डालता है। एक स्वस्थ शिशु भोजन के बाद सोकर जागने पर अपने हाथ-पैर लयबद्ध गति में फेंकने लगता है; यह उसकी

प्रचुर शक्ति का सूचक है। यह बड़े बालकों में भी देखा जाता है। अत्यधिक प्रसन्नता से उत्तेजित होकर वे नाचने लगते हैं। यह लयबद्ध क्रिया का उत्कृष्ट स्वरूप है। इसके अतिरिक्त टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं की लम्बी शृंखलाएँ जो कतिपय हस्ताक्षरों की लक्षण है, प्रायः ध्यान आकर्षित करती हैं। यह बहुल लयबद्ध प्रतिक्रिया आत्माभिमान के आधिक्य की अभिव्यक्ति है, इसमें सन्देह नहीं।

लयबद्ध संवेदना

यह बहुल अनुक्रिया न केवल अपेक्षाकृत स्थूल यान्त्रिक गतियों का लक्षण है बल्कि संवेदना के बहुत ही सूक्ष्म क्षेत्र के लिए भी उतना ही सत्य है।

एक क्षण के लिए हम आँख की पुतली पर प्रकाश की तीक्ष्ण उद्दीपना के प्रभाव का विचार करें। हम बिजली के बल्ब की उत्तापदीप्त अंशु (Incandescent filament) को एक क्षण के लिए स्थिर दृष्टि से देखें फिर आखें बन्द कर लें। उद्दीपना के समाप्त होने पर भी प्रकाश का अनुप्रभाव तीक्ष्ण दृश्य प्रभावों की शृंखला बनकर स्थिर रहता है और काफी देर तक उज्ज्वल अंशु प्रकट और लुप्त होती रहती हैं। सारांश यह है कि प्रकाश की तीव्र उद्दीपना बहुल अनुक्रियात्मक संवेदना का कारण है।

इसी तरह सब प्रकार की मानसिक उद्दीपनाओं के विषय में भी यही सत्य है। ये जब अत्यधिक तीव्र हो जाती हैं तब इनकी पुनरावृत्ति होती रहती है और ये आग्रही (Persistent) एवं स्थायी-जैसी हो जाती हैं। इनकी पुनरावृत्ति से बचाव की बात सोचना व्यर्थ है। हमारे विचार हमेशा हमारा पीछा करते रहते हैं, और तो और हमारे स्वप्नों में भी वे लौटकर आते रहते हैं। अन्य जीवित पदार्थों की तरह ही चेता-ऊतक भी उस पर जो आघात करने वाली उद्दीपना द्वारा ही और अधिक अनुक्रियाशील बनाया जाता है। पुनरावर्ती उद्दीपनाओं के संचयी प्रभाव स्वरूप चेता पदार्थ की गति अन्ततः उसी प्रकार स्वतः प्रेरित हो जाती है। जैसा कि विचार के प्रादुर्भाव से लेकर प्रेरणा तक की अनेक क्रियाओं में देखा जाता है।

क्षणिक और आग्रही स्वतः प्रवृत्ति
(Transient & Persistent Spontancity)

बाह्य उद्दीपना के समाप्त हो जाने पर स्पन्दन-क्रिया का जारी रहना संचय-शक्ति पर निर्भर है। इस विषय में मैंने पाया है कि वनस्पति दो विशिष्ट प्रकार की

होती हैं। पहले में उत्प्लाव कम संचय द्वारा ही प्रेरित हो जाता है। इनमें बहुविध क्रियाशीलता का असाधारण प्रदर्शन शीघ्र समाप्त हो जाता है। लयबद्ध अवस्था को बनाये रखने के लिए सतत बाह्य उद्दीपना की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के पौधे बाह्य प्रभावों पर अत्यधिक निर्भर रहते हैं और जब ऐसी उद्दीपनाओं के आधार हटा दिये जाते हैं तब वे शीघ्र ही चुपचाप समाप्त हो जाते हैं। इसका एक उदाहरण पंक्तिपत्र (Biophytum) है। दूसरे प्रकार की वनस्पतियों की स्वतः क्रिया में उत्प्लाव के आरम्भ के लिए लम्बे सतत संचय की आवश्यकता होती है। किन्तु पौधे के किसी तात्कालिक उद्दीपना से वंचित हो जाने पर भी इसमें स्वतः क्रिया का सहसा-उद्वेग स्थायी होता है और देर तक रहता है। इस प्रकार ये अन्य वनस्पतियों की भाँति स्पष्टतः संसार की बाहरी चमक-दमक पर इतना निर्भर नहीं हैं। शालपर्णी इसका एक उदाहरण है।

जिसे साहित्यिक और कलाकार प्रेरणा कहते हैं, क्या यहाँ हमें उसी तरह की कोई चीज नहीं मिलती? इस ऊँचे स्तर तक पहुँचने और बाद के प्रबुदबुद उत्प्लाव (Effervescent overflow) के लिए पूर्वसंचय की भी आवश्यकता होती है। प्रेरणा अन्ततः देखने में बिना किसी प्रयास के उपलब्ध होने वाली जीवन की पूर्णता और उत्प्लाव का उदाहरण ही तो है। यदि ऐसा ही है तो इस अवस्था तक पहुँचने के लिए यह निश्चय करना पड़ेगा कि किसका अनुगमन किया जाय; पंक्तिपत्र का, जो तात्कालिक बाह्य उद्दीपना पर निर्भर रहता है और जिसकी क्रियाशीलता क्षणिक होती है, या शालपर्णी (Desmodium) का, जिसकी विशेषता है शक्ति को धैर्य-पूर्वक लम्बे समय तक संचित किये रहना जो बाद में अनवरत और आग्रही अनुक्रिया के रूप में अभिव्यक्त होती है।

इस प्रकार वनस्पति और प्राणी दोनों में सतत अनुक्रिया पायी जाती है, पहले मन्द अथवा सामान्य फिर बहुल और तब स्वतः। क्षीण या सामान्य उद्दीपना का फल होता है केवल एक अनुक्रिया, उद्दीपना चाहे यान्त्रिक हो या शारीरिक। इसके विपरीत तीव्र उद्दीपना द्वारा अनुक्रिया विविध प्रकार से बहुल होती है। पर्यावरण की विभिन्न उद्दीपना से प्राप्त जो अधिक शक्ति है, वही जैसे छलक पड़ती है और स्वतः लयबद्ध अनुक्रिया का स्वरूप ग्रहण कर लेती है। यह विविध रूप से व्यक्त होती है; कभी शालपर्णी की पत्तियों के स्पन्दन में, कभी हृदय की धड़कन में और कभी किसी दूसरी जगह अनुगुंजित संवेदना और विचार में।

एक दृष्टिकोण से प्राणी यन्त्र मात्र माना जा सकता है। किन्तु इस जीवित यन्त्र को उन सभी जटिल और अपूर्व रूपों में कार्यशील रखने के लिए, जिनमें यह समर्थ है--यान्त्रिक गति से लेकर स्पन्दित संवेदना और स्वतः विचार तक यान्त्रिक पूर्णता के अलावा कुछ और भी आवश्यक है। जीवन का स्पन्दन इसमें तभी होता है जब यह पर्यावरण की सारी शक्तियों के सतत सम्पर्क में रखा जाय।

अध्याय ११

वृद्धि का अभिलेखक

वृद्धि की घटना द्वारा हमें स्वतः-क्रिया का एक दूसरा दृष्टान्त मिलता है। क्या इसमें और अन्य प्रकार की स्वतः-क्रिया में कुछ समानता हो सकती है ? क्या वाह्य अवस्थाओं की विभिन्नता द्वारा इसी प्रकार से सब स्वतः क्रिया-शीलताएँ रूपान्तरित की जा सकती हैं ?

बाह्य परिवर्तन में वृद्धि और उसके रूपान्तरणों का प्रश्न एक अत्यधिक व्यावहारिक महत्त्व का विषय है, कारण, संसार के खाद्य की संपूर्ति (Supply of food) वनस्पति की वृद्धि पर निर्भर है। इसलिए वृद्धि की अनुकूल अवस्थाओं का पता लगाना बहुत ही आवश्यक है। किस प्रकार बाह्य कारक इसमें रूपान्तरण करते हैं ?

वृद्धि का माप

अन्वेषण की सबसे मूलभूत कठिनाई है—वृद्धि-गति का असाधारण मन्द होना। मन्थर-गति के लिए बदनाम बेचारा घोंघा भी बढ़ते हुए अंकुर से दो हजार गुनी तेजी से चलता है। वृद्धि की औसत गति इंच का १/१००००० प्रति सेकेंड है। यह लम्बाई सोडियम की एक प्रकाश-तरंग की आधी है।

अब तक जिस आवर्धक वृद्धि-अभिलेखक का उपयोग किया गया है, उससे भी इसकी प्रगति को देखने और मापने में विलम्ब होता है। वृद्धि पर किसी विशेष साधन के प्रभाव का यथार्थ अन्वेषण करने के लिए, प्रकाश और ताप की तरह परिवर्ती दशाओं को संपरीक्षण के पूरे समय तक पूर्णतः स्थिर रखना आवश्यक है। हम एक बार में केवल कुछ मिनटों के ही लिए इन अवस्थाओं को पूर्णतः स्थिर रख सकते हैं। जिन संपरीक्षणों को पूर्ण करने में कई घंटे लगते हैं, उनमें गम्भीर भूलें हो सकती हैं जिससे उनके परिणाम निष्फल हो जाते हैं।

केवल वही रीति सन्तोषजनक हो सकती है जो संपरीक्षण के समय को घटाकर केवल कुछ मिनटों का कर दे। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि एक अत्यधिक सूक्ष्म आवर्धक यन्त्र बनाया जाय जो वृद्धि की आवर्धित गति का स्वतः अभिलेख कर दे।

उच्च आवर्धन-वृद्धिलेखी (Crescograph)

मैं एक ऐसा यन्त्र बनाने में सफल हुआ हूँ जिससे तत्काल ही वृद्धि का निरूपण हो जाता है। यह दस हजार गुना आवर्धन करता है। इसके द्वारा एक घोंघे की गति द्रुतगामी रेलगाड़ी की तरह हो जायगी।

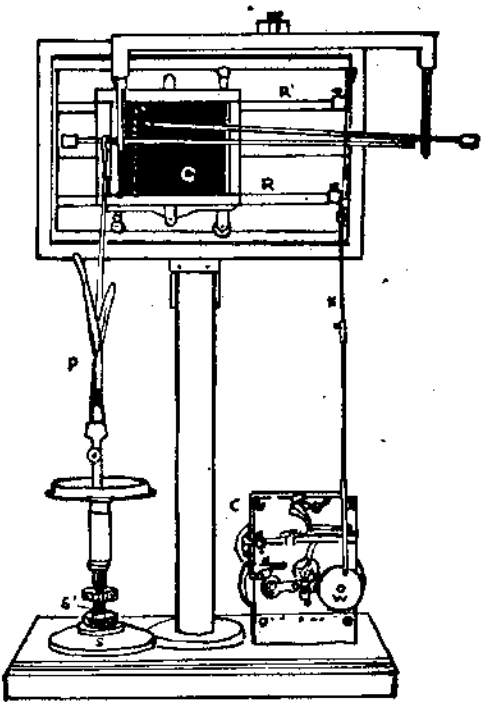

चित्र ४७—उच्च आवर्धन-वृद्धिलेखी। 'P', पौधा; 'C' घंटीवत् क्रिया प्रदोलन युक्ति, जिसके द्वारा घूमित कांच पट्ट इधर से उधर घूमता है।

इस उच्च आवर्धन-वृद्धिलेखी में दो हस्तकों वाली प्रणाली है। प्रथम सौ गुना आवर्धन करता है तथा द्वितीय, प्रथम को सौ गुना बढ़ाता है। इस तरह समस्त आवर्धन दस हजार गुना हो जाता है (चित्र ४७)। इसका अभिलेख एक घूमित कांच-पट्ट पर लिया जाता है। यह पट्ट एक प्रदोलन-योजना द्वारा आगे-पीछे नियमित

अन्तर पर, जो कि एक से दस सेकेण्ड तक होता है, घूमता रहता है। अभिलेख-पट्ट समान गति से पार्श्वतः (Laterally) चलता रहता है। इस प्रकार वृद्धि की वक्र रेखा मिल जाती है। उद्दीपना-वस्तु, जो वृद्धि की गति को बढ़ाती है, वक्र रेखा को ऊपर की तरफ उठाती है। दूसरी तरफ घटाने वाली वस्तु, रेखा के ढलाव को कम कर देती है।

उच्च आवर्धन की इस प्रणाली ने वृद्धि के बहुत-से रोचक लक्षणों को प्रकट किया है जिनका अभी तक विचार भी नहीं आया था। इसने वनस्पति तथा दूसरी वस्तुओं की वृद्धि-सम्बन्धी स्वतः क्रियाओं में मूलगत समानता के तथ्य को भी प्रमाणित कर दिया है।

वृद्धि के स्पन्दन

दूसरी स्वतः क्रियाओं की ही तरह वृद्धि लयबद्ध या स्पन्दित होती है। यह चित्र ४८ में दिये गये अभिलेख से स्पष्ट हो जाता है। इसमें पहले अभिलेख अकस्मात् ऊपर की ओर उठता है फिर धीरे-धीरे घूम जाता है। लौटने की मात्रा ऊपर उठने

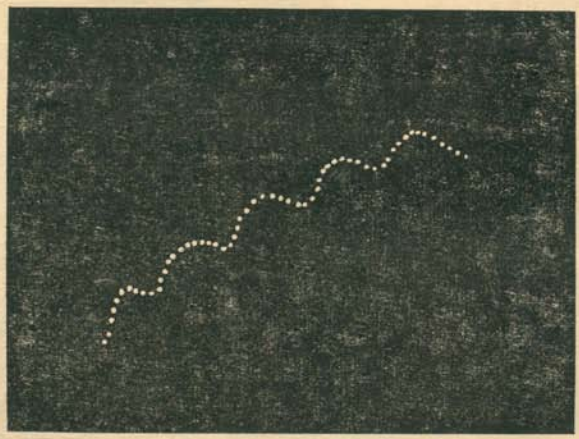

चित्र ४८—उच्च प्रवर्धन-वृद्धिलेखी द्वारा लिया गया वृद्धि-स्पन्दन का अभिलेख।

वाली मात्रा की करीब एक चौथाई होती है। इन दोनों की जो भिन्नता है, वही स्थायी वृद्धि का प्रतीक है। इस प्रकार वृद्धि की विधि स्थिर नहीं है। यह ज्वार की लहरों की तरह है।

आन्तरिक तरल स्थैतिक दाब का प्रभाव

शालपर्णी (Desmodium) की पत्ती में आन्तरिक दाब के कम होने पर स्पन्दन-क्रिया रुक जाती है, जैसा शुष्क अवस्था में होता है। फिर सींचने पर स्पन्दन पुनः प्रारम्भ हो जाता है।

इसी प्रकार शुष्कता में वृद्धि भी रुक जाती है। यह एक रोचक बात है कि अगर दो-चार बूँद पानी जड़ में डाल दिया जाय तो दो-चार वृद्धि-स्पन्दन हो जाते हैं, जो फिर शीघ्र ही समाप्त भी हो जाते हैं। अधिक सिंचाई करने पर सतत वृद्धि निश्चित है। अधिक आन्तरिक दाब या आशूनता (Turgor) की वर्धित अवस्था वृद्धि की गति को बढ़ा देती है।

पम्प क्रिया द्वारा, जो वृद्धि-स्थान को रस देती है, ऊतक की आशूनता स्थिर रहती है। साधारणतया यह कहा जा सकता है कि कोई भी अवस्था जो रसारोहण को बढ़ाती है, आशूनता और वृद्धि की गति को भी बढ़ाती है। इसके विपरीत जो अवस्थाएँ वृद्धि को रोकती हैं या आशूनता को घटाती हैं, वे ही वृद्धि का भी विरोध करती हैं।

उद्दीपना का प्रभाव

मैंने पहले ही एक अध्याय में समझाया था कि उद्दीपना पीनाधारी अंग की आशूनता को घटाती है और संकुचित करती है। बढ़ते हुए अवयव पर भी इसका प्रभाव ऐसा ही होता है। मैं यहाँ उद्दीपना की बढ़ती हुई उग्रता के अन्तर्गत वृद्धि का अभिलेख प्रस्तुत कर रहा हूँ। ०·५ यूनिट की वैद्युत उद्दीपना द्वारा वक्र में थोड़ा नीचे की ओर आनमन होता है। यह वृद्धि में थोड़े व्याघात का संकेत करती है। एक यूनिट की उद्दीपना द्वारा यह विलम्बन अधिक हो गया और जब तीन यूनिट की उद्दीपना दी गयी तब वास्तविक संकुचन ही हो जाता है जैसा कि मोड़ के विपर्यय द्वारा स्पष्ट होता है (चित्र ४६)। यहाँ यह विदित होगा कि उद्दीपना द्वारा जो प्रति-

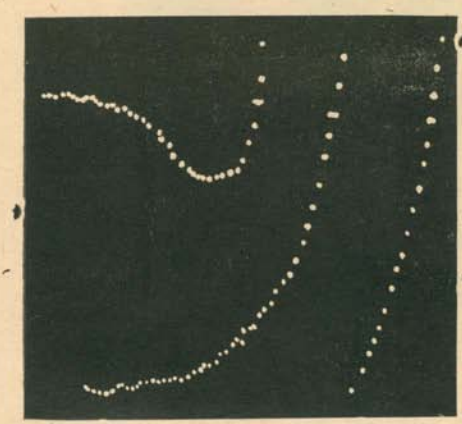

चित्र ४६—वृद्धि-दीर्घीकरण पर ·५, १ और ३ यूनिट की वृद्धिशील तीव्रता की उद्दीपना का प्रभाव। अन्तिम अभिलेख, उद्दीपना द्वारा बढ़ते हुए अंग की वास्तविक लघुता का प्रदर्शन करता है।

क्रिया होती है, वह प्राकृतिक वृद्धि-दीर्घण के विपरीत है। यह सहज ही आरम्भिक संकुचन कहा जा सकता है। कारण, उद्दीपना की बढ़ती हुई उग्रता में यह सचमुच ही संकुचित हो जाता है।

इस परीक्षण के दौरान, एक विस्मयकारी परिणाम पाया गया। वह है–अल्प उग्रता की उद्दीपना वृद्धि को रोकती है जब कि क्षीण उद्दीपना वृद्धि में सहायक होती है। इस प्रकार प्रबल और मन्द उद्दीपनाओं द्वारा दो ठीक विपरीत प्रभाव होते हैं। हम इस सिद्धांत का विस्तृत उपयोग औषधों की क्रिया-विधि में पायेंगे जिन्हें 'रासायनिक उद्दीपक' कहा जा सकता है।

पीनाधारी और बढ़ते हुए अंगों की प्रतिक्रिया का सादृश्य

मैंने यह प्रदर्शित किया है कि यथेष्ट प्रबल उद्दीपना द्वारा वृद्धि-दीर्घण वास्तविक संकोच में बदल जाता है। कुछ विश्राम के बाद वृद्धि पुनः सक्रिय हो जाती है।

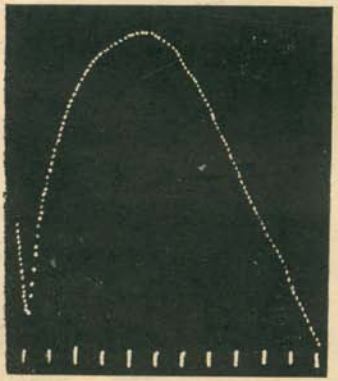

चित्र ५०—विद्युत् आघात द्वारा बढ़ते हुए अंग की आकुंचनयुक्त अनुक्रिया। ४" के अन्तराल पर क्रमिक बिन्दु। नीचे की उदग्र रेखाएँ १ मिनट का अन्तराल बताती हैं (१,००० गुना प्रवर्धन)।

चित्र ५० में दिखायी गयी प्रतिक्रिया का अभिलेख वास्तव में पीनाधारी अंग की प्रतिक्रिया और स्वस्थता के अभिलेख के समान ही है। भिन्नता केवल मात्रा की है।

एक भ्रान्तिपूर्ण धारणा प्रचलित है कि भिन्न प्रकार की उद्दीपनाओं द्वारा भिन्न प्रतिक्रियाएँ होती हैं। मेरे अनुसन्धानों द्वारा यह सिद्ध हुआ है कि ऐसा नहीं है। एक ही घनता की सब प्रकार की प्रभावी उद्दीपनाओं-स्पर्श-विद्युत् आघात या प्रकाश द्वारा समान अनुक्रियात्मक संकुचन होता है।

जैसा हमने देखा है, बढ़ते हुए अंग, प्रसृत (Diffuse) उद्दीपना द्वारा अपने चारों ओर बराबर संकुचन करते हैं और इसी कारण वे छोटे होते हुए दिखाई पड़ते हैं। किन्तु एक अंग के एक पार्श्व में यदि स्थानीय उद्दीपना का प्रयोग हो तो उसी तरफ संकुचन होगा और अंग एक ओर को मुड़ जायगा। इसका विस्तृत वर्णन आगे के अध्याय में दिया जायगा।

तापमान के परिवर्तन का प्रभाव

वृद्धि की गति पर तापमान के परिवर्तन का स्पष्ट प्रभाव होता है। जब तापमान गिरता है तब गति मन्द हो जाती है और एक क्रान्तिक मन्द ताप (Critical low-temperature) की एक निश्चित सीमा पर आकर बिलकुल ही रुक जाती है। इसके विपरीत उष्णता, एक अनुकूलतम तापमान तक, वृद्धि की गति को आश्चर्यजनक तेजी से बढ़ाती है। जिसके आगे यह फिर मन्द हो जाती है, ६०° सें० पर मृत्यु-जनित ऐंठन होती है, जिसके पश्चात् वृद्धि स्थगित हो जाती है।

निश्चेतकों का प्रभाव

ईथर जैसे मन्द निश्चेतक की अल्प मात्रा, वृद्धि को उत्तेजित करती है। मोड़ का पहला हिस्सा (चित्र ५१) अपने झुकाव द्वारा स्वाभाविक वृद्धि दिखाता है; हल्के

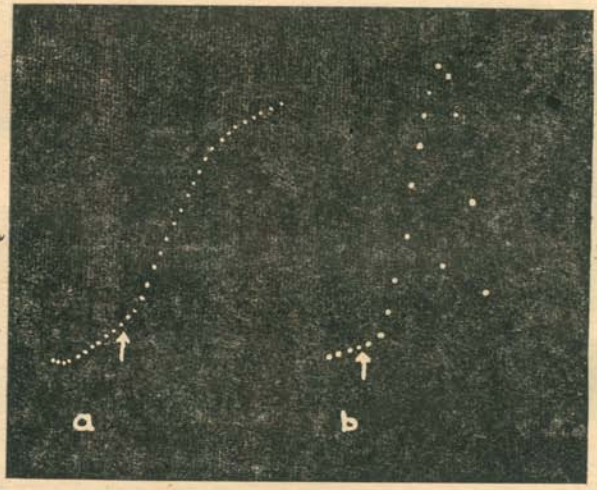

चित्र ५१—वृद्धि पर निश्चेतकों का प्रभाव। (a) ईथर की लघु मात्रा से वृद्धि; (b) क्लोरोफार्म से प्राथमिक वृद्धि जिसके बाद उग्र पेशी-आकुंचन-युक्त मृत्यु-आकुंचन।

ईथर की पतली वाष्प मोड़ को अकस्मात् खड़ाकर देती है जो वृद्धि की गति का बढ़ना सूचित करती है। क्लोरोफार्म के प्रयोग के अन्तर्गत प्रारम्भ में वाष्प की कम मात्रा का अवशोषण होने से, अल्प मात्रा का प्रभाव होता है—वृद्धि का बढ़ना। जैसे-जैसे अधिक क्लोरोफार्म दिया जाता हैं, वृद्धि बढ़ने की जगह घटने लगती है और अन्त में दौरा

पड़ने जैसा संकुचन होता है जिसका उलटा प्रभाव होता है। वक्रशीर्ष (Apex of the curve) जीवन और मृत्यु का विभाजन करता है। इसके उत्क्रमण (Reversal) के बाद पौधे में विवर्णता के धब्बे उठ आते हैं। ये बहुत ही शीघ्र फैल जाते हैं और प्रादर्श, मृत्यु के कारण शिथिल हो जाता है।

ईथर की क्रिया पर परीक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि मन्द उद्दीपना द्वारा सुषुप्त वृद्धि को पुनर्जीवित करना सम्भव है।

रासायनिक उद्दीपकों का प्रभाव

वैज्ञानिक कृषि में कोई भी निश्चयात्मक उन्नति तभी सम्भव है जब हम वृद्धि के अत्यधिक बढ़ाने वाले कारकों को खोज निकालने में सफल हो जायँ। इसके लिए केवल थोड़े-से उद्दीपनात्मक कारकों को काम में लाया गया है जबकि बहुत-से ऐसे कारक हैं जिनकी क्रिया से हम बिलकुल ही अनभिज्ञ हैं। अब तक जो कुछ थोड़े-से नियम रासायनिक उद्दीपकों और विद्युत् उद्दीपना के सम्बन्ध में व्यवहार किये गये हैं, वे भी समान रूप से सफल नहीं रहे हैं। इस असंगति का कारण एक आवश्यक कारक के प्रकाश में आने पर स्पष्ट हुआ। वह है, मात्रा का परिमाण जो अभी तक अविचारित रहा। अब हम देखते हैं कि जब विद्युत्प्रवाह की एक विशेष घनता वृद्धि को बढ़ाती है तब एक पराकाष्ठा विशेष के बिंदु से आगे बढ़ने पर उसको रोक देती है। यही बात रासायनिक उद्दीपकों के बारे में भी लागू होती है।

कुछ विषों का परिणाम विस्मयकारी हुआ। सामान्य मात्रा में विष पौधे को मार डालता है, किंतु अत्यधिक कम मात्रा में वृद्धि की गति को बढ़ाने में असाधारण समर्थ उद्दीपन का कार्य करता है। यथार्थ में इस विषय में वनस्पति भी मनुष्य की तरह व्यवहार करता है। इस प्रकार वनस्पति पर खोज करने से भैषज्यविज्ञान और औषध-प्रभाव-विज्ञान के शोध का एक नया मार्ग निकल आया है। उच्च आवर्धन वृद्धि-लेखी ने 'खाद'-सम्बन्धी कारकों की क्रिया की सत्वर परीक्षा सम्भव कर दी है। यह परीक्षण, पूरा करने के लिए पूरी ऋतु की जगह केवल कुछ मिनट ही लेता है। इससे दीर्घ संपरीक्षण में बदलती हुई दशाओं के कारण होने वाली गलतियाँ नहीं होतीं।

वृद्धि न केवल भौतिक या रासायनिक उद्दीपना की घनता द्वारा अपरिवर्तित होती है, बल्कि आघात के स्थान और वनस्पति के बल्य की दशा द्वारा भी रूपान्तरित होती है।

उद्दीपना का स्थान

उद्दीपना का प्रभाव न केवल घनता बल्कि आघात के स्थान द्वारा भी रूपान्तरित होता है। वृद्धि और उससे सम्बन्धित सब रूपान्तरण एक सीमित स्थान में होते हैं। यह स्थान बढ़ते हुए अंग के छोर के तनिक पीछे होता है। उद्दीपना सीधे बढ़ते हुए स्थान पर देने का परिणाम होता है—वृद्धि का स्थगित होना। जब उद्दीपना तीक्ष्ण होती है तब वास्तविक संकुचन होकर अंग घटता है। किन्तु वृद्धि के अनुक्रियाशील स्थान से कुछ दूर पर उद्दीपना देने से पूर्णतः अप्रत्याशित परिणाम होता है। इस प्रकार परोक्ष उद्दीपना देने से वृद्धि सचमुच बढ़ जाती है। यह चित्र ५२ के अभिलेख में दिखाया गया है। मोड़ के पहले हिस्से का ऊपरी झुकाव स्वाभाविक वृद्धि

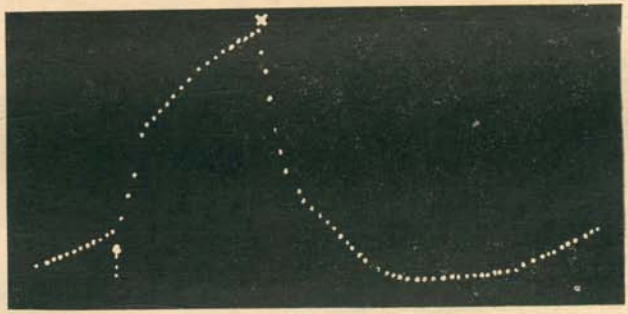

चित्र ५२—वृद्धि पर परोक्ष और प्रत्यक्ष उद्दीपना का प्रभाव। बिन्दु-चित्रित तीर पर परोक्ष उद्दीपना गति को बढ़ाती है। गुणक चिह्न पर प्रत्यक्ष उद्दीपना द्वारा संकुचन से विपरीत अनुक्रिया होती है।

बताता है। तीर से अंकित स्थान पर परोक्ष उद्दीपना देने से मोड़ अकस्मात् सीधा हो गया। यह वृद्धि की गति का बढ़ना सिद्ध करता है। पश्चात् क्रास द्वारा चिह्नित स्थान पर उद्दीपना दी गयी। परिणाम यह हुआ कि वृद्धि रुक गयी और अंग ने स्पष्ट संकुचन प्रदर्शित किया, जैसा उलटी हुई मोड़ से पता चल रहा है (चित्र ६२)।

प्रत्यक्ष और परोक्ष उद्दीपना के प्रभाव का नियम है—प्रत्यक्ष उद्दीपना संकुचन करती है; परोक्ष उद्दीपना इसके विपरीत विस्तार करती है।

बल्य स्थिति का आपरिवर्ती प्रभाव

भेषज-वृत्ति में प्रायः ही यह असंगति देखने में आती है कि एक ही भेषज का दो भिन्न-भिन्न व्यक्तियों पर प्रभाव एकदम एक-दूसरे के विपरीत होता है। इस

असंगति का कारण यह है कि भिन्न व्यक्तियों का बल्य-प्रतिमान (Tonic level) या शरीर-रचना समान नहीं होती। युक्तियुक्त चिकित्सा के लिए रोगी की शरीर-रचना को महत्त्व देना आवश्यक है क्योंकि दिये हुए भेषज की प्रतिक्रिया उसकी बल्य स्थिति (Tonic condition) द्वारा अत्यधिक प्रभावित होती है।

वनस्पति पर संपरीक्षण करते समय मैंने समान बीजांकुरों के समूहों के बल्य या शरीर-रचना को कृत्रिम साधनों द्वारा रूपान्तरित किया। संदर्भ के लिए एक को स्वाभाविक रखा गया, दूसरे को उप-बल्य दशा में और तीसरे को अत्यधिक बल्य की अनुकूलतम अवस्था में। विषघोल की नपी हुई मात्रा तीनों वनस्पति समूहों को दी गयी। स्वाभाविक पौधे कुछ देर के संघर्ष के बाद स्वस्थ हो गये। जो दुर्बल थे, वे बिना संघर्ष के ही मृत हो गये। किन्तु बलशाली प्रादर्शों की प्रतिक्रिया सर्वथा भिन्न थी; विषालु कारक न केवल अपने अवैध कार्य में असफल रहा, बल्कि उसने वृद्धि को अत्यधिक बढ़ा दिया।

यह देखा जायगा कि वृद्धि को रूपान्तरित करने वाले कारक बहुत अधिक हैं। केवल इन अलग-अलग कारकों के प्रभाव के अध्ययन से ही हम आरम्भ में असंभव जान पड़ने वाली कठिनाइयों को सुलझा सकेंगे। वृद्धि-गति के दस हजार गुना आवर्धन द्वारा सम्भव संपरीक्षण के समय को घटाकर ही हम अब तक की कल्पनातीत वृद्धि के लक्षणों को खोज पायें हैं। मुझे आशा थी कि मैं वृद्धि की गति का न्यूनतम भिन्नताओं द्वारा प्रदर्शित और भी सूक्ष्म प्रतिक्रियाओं को ज्ञात कर सकूँगा किन्तु ऐसे प्रभाव तभी मिल सकते थे जब जानकारी प्राप्त करने की विधि की संवेदनशीलता को और भी बढ़ाया जाता।

●

अध्याय १२

चुम्बकीय वृद्धिलेखी
(Crescograph)

विगत अध्याय में वर्णित प्रणाली द्वारा यह दिखाया गया कि वृद्धि की दर में होने वाले परिवर्तनों को अभिलिखित वक्र के परिणामी झुकावों से किस प्रकार पता लगाया जाय। किन्तु यह भी विचारणीय है कि वृद्धि की दर में झुकाव इतना सूक्ष्म हो सकता है कि इस प्रणाली से उसका पता ही न चले।

संतुलित वृद्धिलेखी

इसलिए एक ऐसी नयी विधि निकालने की आवश्यकता हुई जिससे किसी प्रेरित्र (Indicator) की ऊपर-नीचे की गति द्वारा तत्क्षण ज्ञात किया जा सके कि किसी कारक का घट-बढ़ पर क्या प्रभाव पड़ता है। मैं 'संतुलन-प्रणाली' निकालकर इस विचार को कार्यान्वित करने में सफल हुआ। पौधे को ठीक उसी गति से गिराया गया जिससे उसका बढ़ता हुआ छोर उठ रहा था। किसी एक ऐसी विनियमित युक्ति का प्रयोग करना था जो एक ज्योतिष दूरदर्शक (Astronomical telescope) की त्रुटिपूरक गति के समान हो। यह गति चौबीस घंटे में अपने अक्ष के चारों ओर घूमती हुई पृथ्वी की गति के प्रभाव को निराकृत कर देती है। किन्तु यहाँ समस्या अधिक कठिन थी; क्योंकि एक निश्चित गति की त्रुटि को पूर्ण करने के (Compensate) स्थान पर, परीक्षण में भिन्न पौधों की या फिर उसी पौधे की भिन्न दशाओं में वृद्धि की विस्तृत दरों की विभिन्न गतियों का सन्तुलन करने के लिए इसकी समायोजना करनी पड़ी।

सन्तुलित वृद्धिलेखी में घूमती हुई घड़ी के पहियों की एक श्रेणी, भार से प्रेरित होकर, पौधे को ठीक उसी गति से गिराती है, जिस गति से वह बढ़ रहा है। 'S' पेंच को धीरे-धीरे दायें-बायें घुमाकर त्रुटिपूरक पतन को सतत बढ़ाया-घटाया जा सकता है। इस प्रकार वृद्धि की गति को ठीक-ठीक त्रुटि-पूर्ति की जा सकती है, जिससे पौधे का बढ़ता हुआ छोर एक ही तल पर रहे। सामान्य प्रकार से छोर को

उच्च आवर्धक वृद्धिलेखी में जोड़ दिया जाता है और अभिलेखक, पूर्व प्रणाली के विपरीत जो आरोही वक्र बनाती है, अब एक क्षैतिज रेखा बनाता है। इस प्रकार का सन्तुलित यन्त्र अत्यधिक संवेदनशील हो जाता है। वृद्धि की गति में पर्यावरण द्वारा सूक्ष्मतम परिवर्तन सन्तुलन के उलट जाने पर मोड़ से ऊपर-नीचे होने से

चित्र ५३—संतुलित वृद्धिलेखी। (P) पौधे को पकड़ने वाले कुण्डे के समान अधःपतन द्वारा वृद्धिगति की क्षतिपूर्ति। समायोजक पेंच (S) नियोजक (G) की गति को नियमित करता है। प्रचुर भार (W) घंटीवत् क्रिया को प्रेरित करता है।

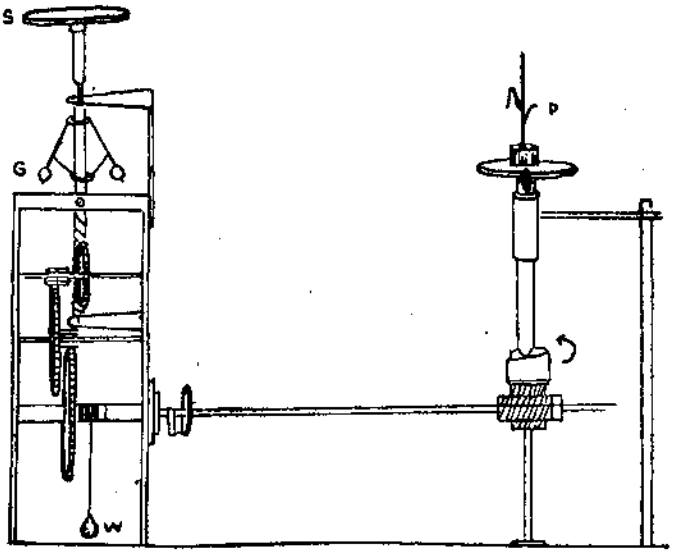

तत्काल ही ज्ञात हो जाता है। यह प्रणाली इतनी अधिक संवेदनशील है कि इससे प्रति सेकेण्ड एक इंच के $\frac{1}{१००००००}$ दस लाखवें अंश तक की अति सूक्ष्म वृद्धि-दर की घट-बढ़ का भी पता लगाकर उसका अभिलेख प्राप्त हो जाता है।

वृद्धि पर कार्बनिक एसिड गैस के प्रभाव के अभिलेख में इस प्रणाली की सूक्ष्मता दिखायी गयी है (चित्र ५४)। पौधे पर इस गैस से भरा एक कलश उलट दिया गया, अपने भार के कारण गैस ने एक झरने के रूप में गिरकर पौधे को घेर लिया। जैसा अभिलेख में देखा जा सकता है, इससे वृद्धि का तत्काल त्वरण (Acceleration) हुआ जो

२½ मिनट तक जारी रहा। गैस की सतत क्रिया द्वारा प्रारम्भिक त्वरण के पश्चात् वृद्धि घटती गयी है, जैसा मोड़ के निम्नाभिमुख होने से पता चलता है। संतुलित वृद्धिलेखी न केवल कारक के हितकारी प्रभाव को बताता है बल्कि उद्दीपना की सही मात्रा को भी प्रदर्शित करता है।

चित्र ५४—वृद्धि पर कार्बनिक एसिड गैस के प्रभाव का अभिलेख। आरम्भ में क्षैतिज रेखा से संतुलित वृद्धि का पता चलता है। कार्बनिक एसिड गैस देने पर वृद्धि बढ़ती है, जैसा यहाँ ऊपरी मोड़ से दिखता है। ४० सेकेण्ड के अन्तराल पर क्रमिक बिंदु।

प्रकाश की तात्क्षणिक चमक का प्रभाव

क्योंकि पौधे प्रकाश के प्रति अपने प्रतिबोधन (Perception) में अत्यधिक मन्द माने जाते हैं, अतएव उन्हें पाँच मिनट से अधिक समय तक प्रकाश के सतत सम्पर्क में रखना न्यूनतम प्रभावी माना जाता है। मैंने यह पता लगाने के लिए संपरीक्षण आरम्भ किया कि पौधा अति अल्प समय के प्रकाश-सम्पर्क के प्रति अनुक्रिया करता है या नहीं। प्रकाश की एक अबेली चमक से अधिक क्षणिक प्रकाश की परिकल्पना सम्भव नहीं है। वृद्धिलेखी पर सन्तुलित एवं बढ़ते हुए पेड़ को मैंने एक कृत्रिम तडित्स्फुरण दिया। यह प्रकाश दो धातु-पिण्डों के बीच से निकला हुआ एक विद्युत्-स्फुलिंग था। पौधे ने इस अत्यधिक अल्पकालिक प्रकाश का अनुभव किया और उसके प्रति अनुक्रिया प्रदर्शित की। यह सन्तुलन के बिगड़ने तथा उसके फलस्वरूप प्राप्त पौधे के स्वतः लेख से स्पष्ट हो जाता है।

बेतार तरंग और वृद्धि

इस प्रकार यह पता चलता है कि पौधे को ऐसी उद्दीपना का प्रतिबोध हुआ जो न केवल बहुत क्षीण थी बल्कि उसकी अवधि भी अत्यधिक अल्प थी।

संपरीक्षण का दूसरा विषय था दृश्य और अदृश्य किरणों के सम्पर्क में आने पर पौधे की प्रतिबोधन-शक्ति। पराबैंगनी प्रकाश (Ultra-Violet light), जिसका तरंग-दैर्घ्य (Wave-length) अत्यधिक छोटा होता है, के प्रति पौधा अपनी वृद्धि की गति को घटाकर अनुक्रिया करता है। वृद्धि पर प्रकाश का गतिरोधकारी प्रभाव अल्प वर्तनशील (Refrangible) किरणों, पीत और रक्त की ओर कम हो जाता है। जैसे-

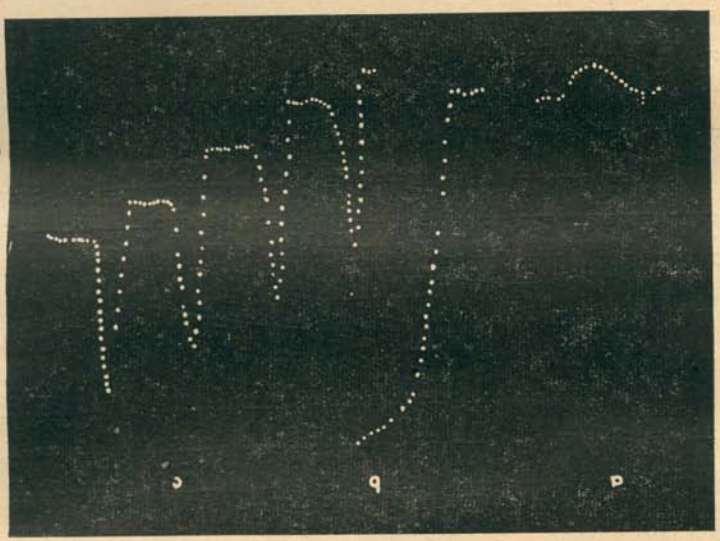

चित्र ५५—उद्दीपना के प्रति पौधे की अनुक्रिया का अभिलेख। (a) मन्द उद्दीपना की अनुक्रिया वृद्धि—का बढ़ना; (b) तीव्र उद्दीपना की अनुक्रिया—वृद्धि का घटना; (c) मध्यम उद्दीपना का प्रभाव—आरम्भ में मन्दन के पश्चात् पुनः स्वस्थता। निम्न मोड़ वृद्धि-त्वरण का निरूपण करता है, और ऊपरी मोड़ वृद्धि के मन्दन का।

जैसे हम अवरक्त (Infra-red) प्रदेश में बढ़ते हैं, हम विद्युत्-विकिरण के बृहत् प्रक्षेत्र में पहुँचते जाते हैं जिसके तरंग-दैर्घ्य, लघुतम तरंग जो मैं प्रस्तुत कर सका हूँ, (०·६ सेंटीमीटर) से लेकर मीलों तक लम्बे होते हैं। अब यह रोचक प्रश्न उठता है कि क्या वनस्पतियाँ ईथर-तरंगों का भी प्रतिबोधन करती हैं और उनका प्रत्युत्तर देती हैं? इनमें वे भी तरंगें सम्मिलित हैं जो अन्तरिक्ष में संकेतन (Signalling) के काम में प्रयुक्त होती हैं।

बेतार-तरंगों की क्रिया की वृद्धि में सम्भावित परिवर्तन का अभिलेख लेने के लिए संतुलित वृद्धिलेखी काम में लाया गया। मेरे संपरीक्षणों के परिणामों से ज्ञात हुआ कि बेतार-तरंगों द्वारा वृद्धि में लाक्षणिक विभिन्नताएँ हुईं। ये विभिन्नताएँ उद्दीपना की तीव्रता पर निर्भर थीं। क्षीण तरंगों द्वारा वृद्धि की गति में त्वरण हुआ। अति तीक्ष्ण तरंगों द्वारा वृद्धि रुक गयी और उनका प्रभाव उद्दीपना के समाप्त होने के बहुत देर बाद भी बना रहा। मध्य तीव्रता की उद्दीपना-तरंगों द्वारा वृद्धि रुकने के बाद बहुत ही जल्दी पुनः स्वस्थता प्राप्त हो गयी (चित्र ५५)। वनस्पति की प्रति-बोधन-सीमा हमारी प्रतिबोधन-सीमा से कहीं अधिक है; इतनी कि हम सोच भी नहीं सकते। यह केवल प्रतिबोधन ही नहीं करती बल्कि विस्तृत ईथरीय स्पेक्ट्रम की विभिन्न किरणों का प्रत्युत्तर भी देती है।

कदाचित् अच्छा ही है कि हमारी इन्द्रियों का परिक्षेत्र सीमित है। अन्यथा इन अन्तरिक्ष संकेतक तरंगों से, जिनके लिए ईंट की दीवारें बिलकुल पारदर्शी हैं, उत्पन्न सतत क्षोभ से जीवन असह्य हो जाता। संमुद्रित धातु-गृह (Hermetically sealed metal chambers) ही केवल हमारी रक्षा कर सकते।

चुम्बकीय प्रवर्धन

दस हजार गुना प्रवर्धन करने वाले उच्च प्रवर्धक वृद्धिलेखी ने संतुलन-प्रणाली के सहयोग से ऐसे परिणाम प्रस्तुत किये जो आशातीत थे। इससे हमें संतुष्ट हो जाना चाहिये था, किन्तु मनुष्य को कभी संतोष नहीं होता। अपनी पूर्व सफलताओं को पराभूत करने की उसकी अतृप्त आकांक्षा ही उसकी प्रगति की पृष्ठभूमि में निहित वास्तविक प्रेरणा है। मैं भी एक उत्कृष्टतर वृद्धिलेखी के आविष्कार में संलग्न हुआ। दो उत्तोलकों का प्रयोग करके यदि मैं सौ से दस हजार गुनी प्रवर्धन-शक्ति बढ़ाने में सफल हुआ, तो एक तीसरे उत्तोलक के प्रयोग से उसी अनुपात में वृद्धि हो सकती थी। किन्तु यह प्रयास पूर्णतः असफल रहा। भार, और उसके कारण उत्पन्न दोनों उत्तोलकों को जोड़ने वाले योग-बिन्दुओं पर संघर्ष अत्यधिक बढ़ गया और सैद्धान्तिक सुविधा व्यवहार में पूर्णतः असफल हो गयी। अब मुझे एक नया समाधान निकालने के लिए बाध्य होना पड़ा। धातविक सम्पर्क व्यवहार्य न होने के कारण मुझे एक ऐसी नयी सम्पर्क-प्रणाली का आविष्कार करना पड़ा जो घातुहीन हो ताकि संघर्ष-रहित रहे। यह बात चुम्बकीय प्रकल्पना (युक्ति) में पायी गयी। इसमें एक सूक्ष्मता से संतुलित प्रणाली, पास के चुम्बकीय उत्तोलक की गति द्वारा अस्थिर होती है।

यह चित्र ५६ द्वारा समझा जा सकता है। SN एक हल्की चुम्बकीय शलाका है जो एक आलम्ब पर अवलम्बित रहती है। उत्तोलक का छोटा बाहु, बढ़ते

हुए पौधे ('W' द्वारा प्रदर्शित) के छोर से जोड़ दिया जाता है। वृद्धि-दीर्घण चुम्बकीय शलाका के 'N' छोर को नीचे झुकाता है। इससे संयुक्त छोटे दर्पण से

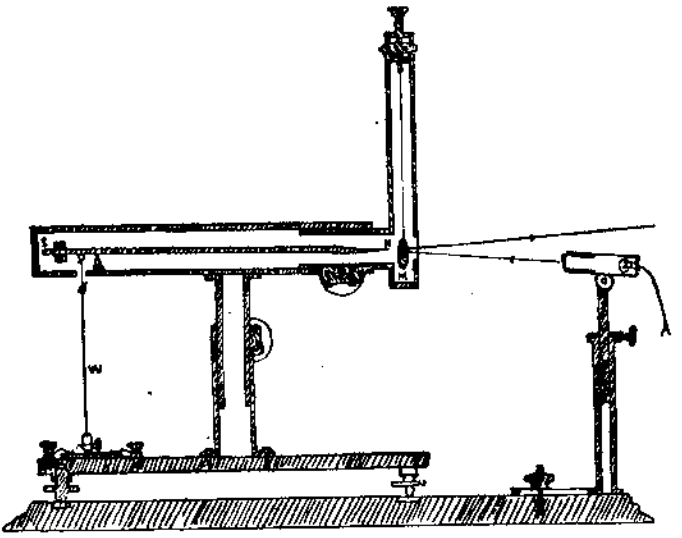

चित्र ५६—चुम्बकीय वृद्धिलेखी का आरेखीय निरूपण। S–N, आलम्ब पर आधारित चुम्बकीय शलाका; उत्तोलक का लघुबाहु, बढ़ते हुए पौधे 'w' से संयुक्त। वृद्धि-दीर्घण, 'N' भाग को गिराता है, जिससे संयुक्त दर्पण 'M' के साथ निलम्बित सुई का विस्थापन बढ़ता है। परावर्तित प्रकाश-बिन्दु द्वारा विस्थापन का प्रवर्धन।

लटकती चुम्बक-सुई 'ns' का और अधिक विस्थापन होता है। एक 'ns' के लिए सुइयों की एक पूर्ण अस्थैतिक (Astatic) प्रणाली उपयोग करने से संवेदनशीलता अत्यधिक बढ़ जाती है। दर्पण से प्रतिबिम्बित प्रकाश की एक रेखा दूर स्थित तुला पर पड़ती है। प्रतिबिम्बित प्रकाश की यात्रा वृद्धि की गति को दस से सौ लाख गुना दिखाती है।

इस बृहत् प्रवर्धन को सोच पाना बहुत कठिन है। किन्तु फिर भी इसके विषय में कुछ ठोस अंदाज इस तरह मिल सकता है। मान लें कि घोंघे की पूर्ण गति को यदि प्रवर्धक वृद्धिलेखी द्वारा दस लाख गुना प्रवर्धित किया जाय तो क्या होगा? आधुनिक शतघ्नी विज्ञान (Gunnery) में भी इस वर्धित गति का कोई समानान्तर नहीं

है। "क्वीन एलिजाबेथ" की पन्द्रह इंच की तोप एक गोले को, नालमुख-प्रवेग द्वारा प्रति सेकेण्ड २३६० फुट फेंकती है। किन्तु वृद्धिलेखी द्वारा वर्धित घोंघे की गति तोप के गोले से २४ गुनी होगी। अब हम निकटतर समता के लिए ब्रह्माण्ड-गतियों की ओर मुड़ें। भूमध्य रेखा पर एक बिन्दु १०३७ मील प्रति घंटे की गति से घूमता रहता है। किन्तु वृद्धिलेखी द्वारा परिवर्धित घोंघा मन्दगति पृथ्वी को स्पष्टतः नीचा दिखा सकता है, क्योंकि जब तक पृथ्वी एक बार घूमती है, घोंघा प्रायः चालीस बार घूम जायगा।

कायाकल्प

ऐसा कोई और दूसरा यन्त्र समझ में नहीं आता जो पौधे के जीवन की अदृश्य गतियों का ऐसा ही स्पष्ट विवरण दे, जैसा यह चुम्बकीय यन्त्र देता है। प्रौढ़ावस्था में पौधे के बहुत-से अंगों की वृद्धि को मैंने समाप्त होते पाया। ऐसी घटनाओं में जहाँ वृद्धि स्वाभाविक रूप से समाप्त हो गयी, मैंने देखा कि उसे फिर से उचित उद्दीपनाओं द्वारा सक्रिय बनाना सम्भव हो सका। जैसे भी हो, यह कायाकल्प के सतत प्रत्यावर्ती स्वप्न को कुछ पुष्ट करता है। हमारा अपना अनुभव भी यही बताता है कि जहाँ आशा की उमंग और सतत आशावाद से हम सदा युवा बने रहते हैं, वहीं निराशावाद और उदासीनता से असमय में ही वृद्धावस्था और क्षय का सूत्रपात होता है।

निष्क्रिय अवस्था में जीवन

चुम्बकीय वृद्धिलेखी विशाल जनसमूह के समक्ष वृद्धि के प्रदर्शन के लिए उल्लेखनीय रूप से उपयुक्त है। वृद्धि के प्रदर्शन के लिए संपरीक्षण की कोई भी दशा इतनी दुरूह नहीं हो सकती, जितना आंग्ल शीतकाल का मध्य, जब वनस्पति शीत निद्रा (Hibernation) की अवस्था में थी। ऐसा होते हुए भी उसको आलस्य छोड़ने को बाध्य किया गया और इसके परिणामस्वरूप वृद्धि की गति का प्रदर्शन बारह सेकेण्ड की अवधि में एक १० फुट लम्बी तुला पर दौड़ते हुए प्रकाश की रेखा द्वारा हुआ। वास्तविक गति प्रति इंच प्रति सेकेण्ड का सौ हजारवाँ अंश थी।

इससे भी अधिक विस्मयकारी संपरीक्षणों का, जैसे भेषजों की क्रिया द्वारा वृद्धि की घट-बढ़ का सहज ही प्रदर्शन किया जा सकता है। पौधे की स्वाभाविक दशाओं में वृद्धि का प्रवर्धन तुला पर भागती हुई प्रकाश-रेखा द्वारा हुआ। निम्नन अभिकारक द्वारा वृद्धि रुक जाती है और प्रकाश की रेखा स्थगित हो जाती है। किन्तु उद्दीपना की एक मात्रा द्वारा तत्काल ही पुनः क्रियाशील हो जाती है।

पौधे का जीवन इस प्रकार संपरीक्षक की इच्छा का अनुसेवी हो जाता है। वह उसकी क्रिया को बढ़ा-घटा सकता है; इस प्रकार वह उसे विष द्वारा मृत्यु-बिन्दु पर ला सकता है और जब पौधा मृत्यु और जीवन के मध्य अस्थिर झूल रहा हो तो उसे समय पर प्रतिकारक (Antidote) देकर पुनर्जीवित कीजिये।

यह सत्य है कि प्रकृति ने अज्ञात के महासमुद्र में साहसिक यात्राओं के लिए मनुष्य को बहुत उपयुक्त रूप से सज्जित नहीं किया है। ध्वनि के सब सम्भव स्वरों में केवल ग्यारह सप्तक उसे सुनाई देते हैं और प्रकाश का केवल एक ही सप्तक उसे दृष्टिगोचर होता है। इस पर भी दृश्य-प्रकाश की लहर का आकार एक अलंघ्य अवरोध प्रस्तुत कर देता है। वह कभी भी इंच के पचास हजारवें अंश से अधिक छोटी वस्तु नहीं देख सकता, जो एक ही प्रकाश-तरंग की लम्बाई है। इन परिसीमाओं से वह हतप्रभ नहीं हुआ, किन्तु इसके विपरीत इन बाधाओं ने उसे अदृश्यों के प्रदेश में खोज की ओर और अधिक प्रयत्न करने के लिए प्रेरित किया है। जीवन की रहस्यमयी गतियाँ सदा उसके लिए अभेद्य नहीं रहेंगी। एक दिन उसका अथक प्रयास और लक्ष्य का एकाग्र-अनुसरण, जीवन की सभी अभिव्यञ्जनाओं के पीछे गुप्त बातों का अनावरण कर देगा।

●

अध्याय १३

आहत वनस्पति

जब हम उद्यान में निकलते हैं तो हमारे सामने पौधों के समूह के समूह बिखरे रहते हैं, जो देखने में बिलकुल मूक और निष्क्रिय लगते हैं। उन्हें विभिन्न आघात पहुँचते हैं और वे आहत और मृत भी होते हैं। जब आघात अत्यधिक तीव्र होता है जैसे किसी तीव्र व्रण के पश्चात्, तो पौधे पर उसका क्या प्रभाव होता है?

मैंने आघात से उत्पन्न तीन भिन्न-भिन्न संपरीक्षण किये। पहले का ध्येय था वृद्धि पर आघात के प्रभाव को निश्चय, दूसरे का परिभ्रामि शालपर्णी के धड़कते हुए स्पन्दन पर व्रण की प्रतिक्रिया का प्रदर्शन और तीसरे का ध्येय था, व्रण निष्क्रिय करने के प्रभाव का विश्लेषण।

वृद्धि पर व्रण का प्रभाव

उच्च प्रवर्धक वृद्धिलेखी द्वारा मैंने एक पौधे को रूक्ष स्पर्श से लेकर तीव्र आघात तक विभिन्न प्रकार से उत्तेजित किया और इसके परिणामस्वरूप वृद्धि की गति में जो परिवर्तन हुए उनका अवलोकन किया। एक विशेष संपरीक्षण में मैंने पहले स्वाभाविक वृद्धि का अभिलेख लिया और तब पौधे को एक दफ्ती के रूखे टुकड़े से रगड़ कर उद्दीप्त किया। वृद्धि की गति मन्द होकर स्वाभाविक वृद्धि की $\frac{3}{4}$ हो गयी। तब पौधे को स्वस्थ होने के लिए १५ मिनट का विश्राम दिया गया। वृद्धि की गति का पुनरुन्नयन आंशिक हुआ। पुनः सक्रिय होने में पूरा एक घंटा लग गया। रूक्ष स्पर्श से वृद्धि रुकती है, और व्यवहार जितना ही रूक्ष होता जाता है उतना ही अधिक समय पुनरुन्नयन में लगता है।

इसका मैं एक ऐसा उदाहरण दूँगा, जिसने यथेष्ट समय तक उलझन में डाल रखा था। मैंने अनेक पौधों को उनकी वृद्धि का अभिलेख लेने के लिए वृद्धिलेखी से युक्त किया। यन्त्र के पूर्णतः समायोजित रहने पर भी वृद्धि का कोई अभिलेख नहीं हो सका। एक पौधा यन्त्र में युक्त रात भर पड़ा रहा और मैंने साश्चर्य देखा कि जिस पौधे में पहले दिन कोई वृद्धि न हो सकी, वह वृद्धि का प्रदर्शन बहुत ही-तेजी से कर रहा था। तब मैंने अनुभव किया कि यन्त्र में बाँधने के लिए जिस अनिवार्य रूक्षता

से कार्य किया गया, वह तत्काल वृद्धि को रोकने के लिए यथेष्ट थी और जब इस रुकाई से उसका पुनरुन्नयन हुआ तभी वह पुनः सक्रिय हुआ। अब ऐसा किया गया कि पौधे को जहाँ तक सम्भव हुआ, बड़े आहिस्ते से युक्त किया गया और उसे अभिलेख लेने के पहले दो घंटे का विश्राम दिया गया। इस सावधानी के बाद सन्तोषजनक परिणाम पाने में कठिनाई नहीं हुई।

शलाका की चुभन और छुरी का आघात

आगे मैंने शलाका-चुभनों के प्रभावों का परीक्षण किया। इनकी उत्तेजनाएँ घर्षण या रूक्ष स्पर्श की उत्तेजना से अधिक थीं। वृद्धि, स्वाभाविक वृद्धि से एक चौथाई हो गयी और उसी अनुपात से पुनरुन्नयन ने भी दीर्घतर समय लिया। पूरे एक घंटे के बाद भी स्वाभाविक गति के केवल $\frac{3}{4}$ अंश की वृद्धि हुई। छुरी द्वारा एक लम्बा चीरा बनाकर और भी तीव्र आघात पहुँचाया गया; इसने स्वाभाविक गति को घटाकर $\frac{1}{4}$ अंश कर दिया। क्षैतिज चीरे का व्रण-प्रभाव और भी तीव्र हुआ। ऐसे चीरों से वृद्धि यथेष्ट समय के लिए रुक गयी। अधिक संवेदनशील प्रादर्शों में इसके द्वारा स्पष्टतः आक्षेपी संकुचन उत्पन्न हुआ।

पिछड़ी हुई वृद्धि पर पिटाई का प्रभाव

शारीरिक दण्ड स्पष्ट ही वृद्धि का सहायक नहीं है, इस सत्य पर विद्यालयों के अध्यापकों को गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिये। किन्तु सत्य मुझे यह मानने को प्रेरित करता है कि इसका भी अपना उपयोग हो सकता है क्योंकि मेरे परीक्षणों से ज्ञात होता है कि जब सक्रिय, बढ़ते हुए प्रादर्शों में आघात से वृद्धि रुकती है, वहीं अन्यों में, जिनमें वृद्धि की गति स्वाभाविक से निम्न होती है, उद्दीपना गति को पुनः सक्रिय करके दर को बढ़ा देती है। संभवतः इससे कतिपय भारतीय कृषकों में प्रचलित उस प्रथा का स्पष्टीकरण प्राप्त हो जाता है जिसमें फसल की प्रारम्भिक अवस्था में उसकी अच्छी पिटाई की जाती है।

कुछ पौधे वृद्धि में बहुत पिछड़े रहते हैं, जिसका कारण अभी अस्पष्ट है। इनकी शाखाएँ और पत्तियाँ अस्वस्थ दीखती हैं। तब इन कष्टदायी अंगों को काट देना ही पौधे के लिए गुणकारी होता है। तीव्र आघात द्वारा रुकी हुई वृद्धि पुनः सक्रिय हो जाती है।

स्पन्दित पत्तियों पर व्रण का प्रभाव

परिभ्रामी शालपर्णी की पत्तियाँ, जैसा पहले ही बताया जा चुका है, स्वतः स्पन्दन प्रदर्शित करती हैं। पत्तियों से भरा लघु पर्णवृन्त जब मूल पौधे से अलग कर

दिया गया, और उसका कटा छोर पानी में रखा गया, तो उसका स्पन्दन इस क्रिया के आघात से रुक गया। शनैःशनैः व्रण के आघात का प्रभाव समाप्त हो गया और स्पन्दन पुनरुज्जीवित होकर चौबीस घंटे तक चलता रहा। फिर भी, मृत्यु को व्रण का अरक्षित स्थान मिल गया और उसकी गति यद्यपि मन्द थी, किन्तु थी निश्चित। मृत्यु-परिवर्तन अन्ततः स्पन्दित अंग के पास पहुँच गया, जो फिर सदा के लिए शान्त हो गया। मृत्यु की इस गति को रोकने के लिए संपरीक्षण किये गये हैं। इस समस्या से दो चीजों का निकट सम्बन्ध है--पहला, जीवन की पृष्ठभूमि में स्थित प्रावस्थाओं को पूर्ण रूप से समझना। दूसरा है, मृत्यु-शिथिलता से अन्तर्गत आणविक-चक्र (Molecular Cogwheel) का रुकना। अब तक जो संपरीक्षण हुए हैं, वे उचित व्यवहार द्वारा पौधे के स्पन्दन को एक सप्ताह से अधिक तक जीवित रखते हैं।

प्रेरक का स्तम्भन (Motor Paralysis)

तीव्र आघात से लाजवन्ती के पीनाधार का प्रेरक प्रकार्य स्तम्भित हो जाता है। एक छोटे से तने को, जिस पर एक पत्ती थी, काट देने पर आघात का प्रभाव मूल पौधे के प्रत्येक अंग में फैल गया। सब पत्ते झड़ गये और काफी लम्बे समय के लिए वह अवसादित दशा में पड़ा रहा। पृथक् किया हुआ भाग भी, जिसका कटा छोर पोषक घोल में रखा गया था, अवसादित दशा में था, जैसा कि उसके पत्ते के झड़ने से पता चलता है। किन्तु अनुवर्ती इतिहास मूल-पौधे और उसके पृथक् किये गये भाग की भिन्नता का स्पष्ट प्रदर्शन करता है।

आघात द्वारा स्तम्भित मूल पौधे का पुनर्जीवन मन्द हुआ। उसके एक पर्ण का अभिलेख लिया गया। चित्र ५७ (१) वाला पहला लेख आघात के पहले लिया गया पर्ण का प्रत्युत्तर है। तीव्र आघात के पश्चात् पर्ण झड़ गया। यह उस दशा में गिरा जो अभिलेख में एक क्रास (×) द्वारा चिह्नित है। परीक्षण-आघात द्वारा, आघात के प्रभाव को प्रमाणित किया गया। प्रत्येक बार स्वतः अभिलेख द्वारा प्रत्युत्तर मिला। प्रायः २ घंटे तक उत्तेजना निम्न रही, इसके पश्चात् पौधे में स्वाभाविक उत्तेजना सोपानात्मक रूप में पुनरुज्जीवित हुई। पौधे का स्वाभाविक कार्यक्रम पुनः पूरी तरह चलने लगा।

पृथक् की हुई शाखा के पर्ण को पोषक घोल का भोजन कराया गया तब वह जल्दी ही मानों लगभग एक प्रकार के विद्रोह में उठ खड़ा हुआ। मातृ-पौधे से उन्मुक्त होने की अपनी नवीन स्थिति में वह असाधारण शक्ति से प्रत्युत्तर देने लगा। यह तीव्रता सारे दिन बनी रही, जिसके बाद एक विस्मयकारी परिवर्तन हुआ। इसके

प्रत्युत्तर की तीव्रता एकाएक बहुत तेजी से घटने लगी। जो पर्ण अभी तक खड़ा था अब गिर गया, मृत्यु ने अन्ततः उस पर विजय पा ली।

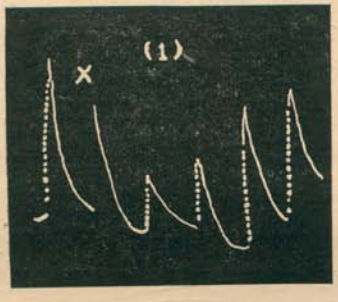

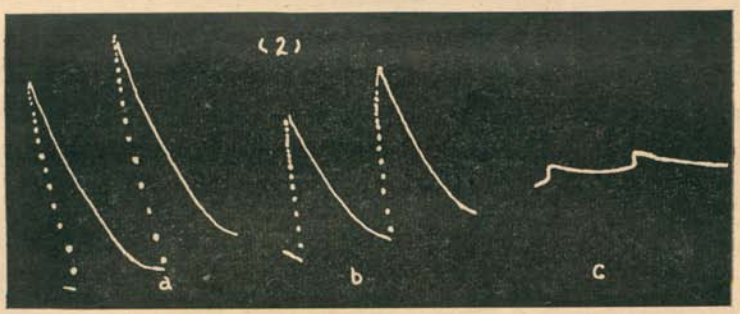

चित्र ५७—(१) मूल पौधे, और (२) पृथक् की हुई शाखा पर व्रण का प्रभाव। (२) प्रथम अनुक्रिया स्वाभाविक। X व्रण के बाद पर्ण के संकोची पतन को दिखाता है। इसके बाद वाली अनुक्रियाएँ मन्द किन्तु सम्पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ दिखाती हैं।

(२) (a) काटने के तीन घंटे बाद पृथक् किये हुए अंग की तीव्र अनुक्रिया, (b) चौबीस घंटे बाद अवनमन, (c) ४८ घंटे बाद मृत्यु द्वारा अवनमन और अन्ततः नष्ट।

इसी प्रकार की अभिक्रियाएँ अन्य पौधों और वृक्षों में भी होती हैं।

आहत पौधा इस प्रकार विपत्ति का सामना कर लेता है। किन्तु स्वतन्त्र पर्ण वाली पृथक् शाखा विभव में परिपोषित होकर भी मृत्यु का शिकार होती है। यह भिन्नता क्यों? इसका कारण यह है कि पौधा या वृक्ष अपनी ही मिट्टी में सुरक्षित स्थापित रहता है। इसका जन्म-स्थान ही इसे उचित पोषाहार देता है, और इसे

जीवन के संघर्ष के लिए शक्ति प्रदान करता है। कितने ही परिवर्तन और विपत्ति की लहरें इसके ऊपर से गुजर जाती हैं। बाह्य आघात इसको पराजित नहीं कर पाते। वे केवल इसकी जयमान शक्ति को चुनौती देते हैं। बाह्य परिवर्तन का उत्तर वह प्रतिपरिवर्तन से देता है। जब परिवर्तन के समय इस को शक्ति के पुनः समायोजन की आवश्यकता हुई तब क्षयी और जीर्ण पर्ण झड़ गये।

वृक्ष अपनी जातीय स्मृति से भी अतिरिक्त शक्ति प्राप्त करता है। इस प्रकार बीज के अन्दर के अदृश्य भ्रूण के प्रत्येक कण के अन्दर वट वृक्ष के गहन लक्षण रहते हैं। अंकुरित बीजांकुर अधिक सुरक्षा से स्थिर होने के लिए अनुकूल पृथ्वी में अपनी जड़ों को प्रवेश कराता है। तना प्रकाश की खोज में ऊपर आकाश की ओर सीधा बढ़ता है और शाखाएँ अपने पर्ण-मण्डप के साथ चारों ओर फैल जाती हैं।

तब वह कौन सी शक्ति है जिसने वृक्ष को अपनी सहन-शक्ति प्रदान की है, जिससे जीवन-संघर्ष में उसका विजयी होना सम्भव हुआ? यह है उसे अपने जन्म-स्थान से प्राप्त शक्ति, प्रतिबोधन एवं परिवर्तन के प्रति तत्काल समायोजन करने की उसकी शक्ति और वंशागत अतीत की स्मृति।

अध्याय १४

वनस्पति में दिशा-बोध

स्पर्श और प्रकाश, इन दोनों की बाह्य उद्दीपना से उत्पन्न होने वाली सक्रियता का पिछले अध्याय में वर्णन किया गया है। पौधे के अंग के बाह्य अधिस्तर या छिलके में थोड़ी जीवनी शक्ति होती है, इसी पर उद्दीपना का आघात होता है, इसीलिए ऐसी विशेष युक्तियाँ आवश्यक हो जाती हैं जिनसे बाह्य उद्दीपना तीव्रतर हो और अधिक सक्रिय कोशिका-स्तरों तक उग्र रूप में पहुँच सके। ऐसे विभिन्न उपाय हैं जिनसे यांत्रिक उद्दीपना या प्रकाश-उद्दीपना जीवित कोशिकाओं को उद्दीप्त कर सकती है। जब हम अपने चर्म पर धीरे-धीरे हाथ फेरते हैं तब कुछ भी उद्दीपना नहीं होती, किन्तु यदि मांस में काँटा चुभ जाता है तो उसके द्वारा जो उन्मन होता है, उससे अत्यधिक उत्तेजना होती है। स्पर्श की बाह्य उद्दीपना के प्रवर्धन के लिए हमारे पास स्पर्श-रोम और दृढ़ रोम हैं। लाजवन्ती में ऐसे रोम पीनाधार के निचले भाग में होते हैं और अपनी लीवर-क्रिया (Lever-action) द्वारा प्रेरक-ऊतक को उत्तेजित करते हैं। फिर बहुत से तन्तुओं (Tendrils) में स्पर्श-गर्त हैं जिनके द्वारा स्पर्श-उद्दीपना का प्रवर्धन होता है। प्रकाश के प्रतिबोधन के विषय में हैबरलेण्ट (Haberlandt) ने दिखाया है कि बहुत से पत्तों में ऐसी अधिस्तर-कोशाएँ लेंस के आकार (Lens-shaped) की होती हैं, जिससे आपाती प्रकाश जीवद्रव्य के स्तर पर केन्द्रित हो जाता है; इस प्रकार प्रकाश का प्रतिबोधन सरल हो जाता है।

ऊपर प्रगणित उद्दीपनाओं में शक्ति होती है और वे पौधे पर प्रहार करती हैं। हम सहज ही इन उद्दीपनाओं की दिशा जान सकते हैं। किन्तु जब हम गुरुत्वाकर्षण की उद्दीपना के प्रभाव पर विचार करते हैं तब हमें अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। यह स्मरण रहे कि जब पौधे का अंग उदग्र (Vertical) के अपने स्वाभाविक सम्बन्ध से पृथक् किया जाता है, तब उस अंग को केवल गुरुत्वाकर्षण ही उत्तेजित करता है। इसमें जो कठिनाइयाँ हमारे सामने आती हैं, वे हैं—प्रथम, हम

प्रकाश की किरणों की तरह गुरुत्वाकर्षण की शक्ति को देख नहीं सकते ; द्वितीय, गुरुत्वाकर्षण की शक्ति एक विशेष संवेदांग द्वारा परोक्ष भाव से कार्य करती है। यह आगे स्पष्ट किया जायगा।

हमारे सामने समस्या है उस कारण का निश्चयन, जिसके द्वारा गुरुत्वाकर्षण-जनित उत्तेजना होती है और दूसरा उस संवेदांग का वास्तविक स्थान, जिसके द्वारा पौधा जब उदग्र से अलग रहता है तब प्रबोधन प्राप्त कर सकता है, जिससे वह अपनी गति का दिशानिर्देश कर फिर से खड़ा हो जाता है।

अब हम उन दशाओं पर विचार करें जो अभिक्रिया को बढ़ाती या घटाती हैं।

तापमान का प्रभाव

उच्च तापमान, भू-अभिवर्तनीय (Geotropic) प्रतिक्रिया के लिए हानिकर है। मैं इसकी बाबत कलकत्ते की ग्रीष्म ऋतु (तापमान ९८° एफ०) की और दार्जिलिंग के पर्वतीय नगर की स्थिति को छोड़कर अन्य सभी दशाओं की समान परिस्थिति में लिये गये अभिलेखों को देखकर जान पाया। पर्वतों के शीतलतर जलवायु में गुरुत्वाकर्षण-सम्बन्धी क्रिया कहीं अधिक स्पष्ट थी। वर्धित भू-अभिवर्तनीय न्यून तापमान में निम्न अभिक्रिया द्वारा प्रार्थना करने वाले ताड़ वृक्ष की गति का समाधान स्पष्ट हो गया (चित्र ३२ देखिये)। यह याद रहे कि तापमान के मन्द होने पर झुका हुआ तना अपनी वर्धित भू-अभिवर्तनीय अभिक्रिया के कारण खड़ा हो जाता था, जब कि बढ़ते हुए तापमान द्वारा झुकने की विपरीत अभिक्रिया होती थी।

ईथर का प्रभाव

भू-अभिवर्तनीय अभिक्रिया ईथर-वाष्प की अल्प मात्रा द्वारा असाधारण रूप से बढ़ायी जा सकती है। मैंने सामान्य विकुसुम्भ (Tropaeolum majus) के दो समान पर्णवृन्त लिये और उन्हें एक घंटे तक भू-अभिवर्तनीय उद्दीपना में रखा। 'N' स्वाभाविक है, और दूसरा 'E' ईथरीकृत। चित्र ५८ में ईथर द्वारा वर्धित प्रतिक्रिया वाले प्रादर्श के साथ स्वाभाविक प्रादर्श दिखाया गया है। जब कि स्वाभाविक प्रादर्श थोड़ा ही खड़ा हो पाया, दूसरे ने न केवल ९०° का वर्धन पूरा किया बल्कि उसके भी आगे पहुँच गया।

चित्र ५८(अ) में अभिलेख द्वारा स्पष्ट होता है कि ईथर के प्रयोग से भू-अभिवर्तनीय अभिक्रिया की स्वाभाविक गति अत्यधिक बढ़ गयी। इसका प्रमाण मोड़ का

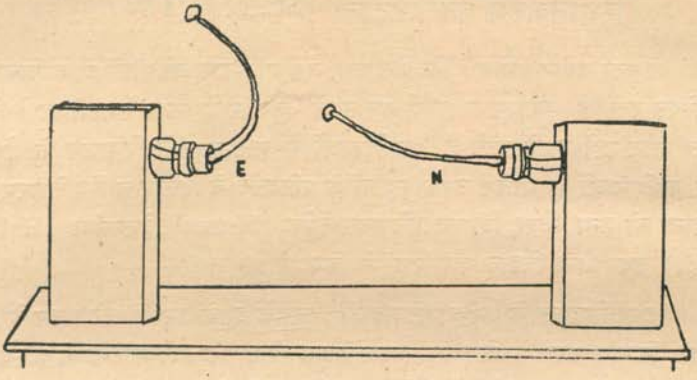

चित्र ५८--भू-अभिवर्त मोड़ पर दक्षु का प्रभाव।

अकस्मात् सीधा होना है।

अब हमारे सम्मुख यह जटिल प्रश्न है कि उस संवेदांग की प्रकृति कैसी है जिसके द्वारा पौधों को उदग्र (Vertical) दिशा का बोध होता है और वे अपने को समायोजित करने का संकेत पाते हैं। मिस्त्री, सीस-रज्जु या लकटते हुए भार द्वारा गुरुत्वाकर्षण की यथार्थ दिशा का पता लगाते हैं। हमें दिशा-ज्ञान कान के अन्दर स्थित अर्धगोल प्रणालियों द्वारा होता है। उनमें जो रस रहते हैं वे विभिन्न स्थानों पर दबाव डालकर उदग्र-दिशा का प्रबोधन कराते हैं। निम्न प्राणियों में, उदाहरणार्थ, महाचिगट (Lobster) में कर्णाश्म (कान की हड्डी) और स्पर्श-रोम में मिश्रित बालुका-कण रहते हैं जो अपने उदग्र दाब द्वारा इन प्राणियों को दिशा-ज्ञान कराते हैं।

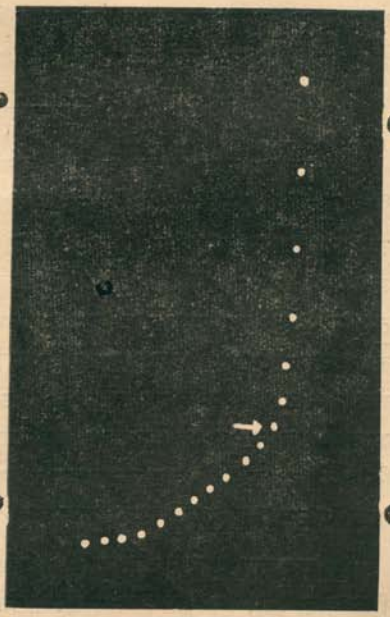

चित्र ५८(अ)--भ-अभिवर्तनीय अनुक्रिया को बढ़ाने में दक्षु का प्रभाव।

स्थितिकरण का सिद्धान्त (Statolith Theory)

इसका यथेष्ट प्रमाण है कि ठोस कण, जैसे माँड-कण, जो पौधों की कोशिकाओं में स्थित रहते हैं, कर्णाश्म का कार्य कर सकते हैं, और ये उदग्र समायोजन के लिए संकेत और उद्दीपना दे सकते हैं। कोशिकाओं में माँड-कणों के विभाजन के प्रेक्षण और कोशिकाओं के भीतर उनके स्थानों के परिवर्तन के विचार ने स्थितिकरण के सिद्धान्त को जन्म दिया, जिसका प्रतिपादन नेमेक (Nemec), हेबरलैण्ड (Haberlandt) तथा अन्य विद्वान् वैज्ञानिकों ने किया है।

इस सिद्धान्त के अनेक प्रतिवाद हुए, क्योंकि इसके प्रमाण परोक्ष रूप के हैं। इसका निश्चय करने के लिए यह प्रत्यक्ष देखना होगा कि क्या माँड-कणों के स्थान-परिवर्तन के साथ-साथ पौधे की दैहिक अभिक्रिया भी होती है और क्या इस प्रकार पौधा स्वाभाविक उदग्र स्थिति में पृथक् किये जाने पर भू-अभिवर्तनीय उद्दीपना के प्रतिबोधन का अकाट्य संकेत देता है। वस्तुतः इसके लिए जीवित पौधे के भीतर खोज करने का साहस करना पड़ेगा कि जिस विशेष स्तर में कर्णाश्म हैं, क्या वही भू-अभिवर्तनीय उद्दीपना द्वारा सबसे अधिक उत्तेजित होता है ?

विद्युत्-जाँच

इस समस्या को मैंने विद्युत्-जाँच की युक्ति द्वारा हल किया। कल्पना करिये कि G और G′ (चित्र ५९) स्कन्ध में कोशिका के वे स्तर हैं जिन्हें गुरुत्वाकर्षण की उद्दीपना का प्रबोधन हुआ है। ये G और G′ एक खोखले गोलाकार सिलिंडर के आयाम (Longitudinal) भाग हैं। विद्युत्-शलाका एक अत्यधिक पतले प्लैटिनम तार की होती है। यह एक काँच की कोशिका-नली में बन्द रहती है। केवल चरम सिरे को छोड़कर शलाका विद्युत् द्वारा विसंवाहित रहती है। जब शलाका को विधिवत् गैलवनोमीटर से युक्त कर उसे धीरे से तने में चुभाया जाता है, तब गैलवनोमीटर अपने व्याकोचन द्वारा, जिन-जिन कोशिकाओं में शलाका चुभती है, उन सबकी प्रतिक्रिया को बताता है। जब तना उदग्र रहता है, अन्वेषी शलाका अपने सिरछे मार्ग में स्थानीय उत्तेजना का कोई भी चिह्न नहीं पाती।

जब तना उदग्र से क्षैतिज (Horizental) स्थिति में रखा जाता है तब परिणाम भिन्न होता है। भू-अभिवर्तनीय रूप से संवेदी स्तर G को अब उद्दीपना का प्रबोधन होता है और वह उद्दीपना का केन्द्र बन जाता है। यह गैलवनोमीटर की ऋण विद्युत् अनुक्रिया द्वारा प्रमाणित होता है। इस प्रतिबोधी स्तर की उद्दीपना पास की कोशिकाओं में अरीय (Radial) दिशाओं में फैल जाती है। जैसे-जैसे यह दूर होती

जाती है, इसकी तीव्रता क्षीण होती जाती है। केन्द्र के बाहर और भीतर दोनों ही ओर अनुक्रियात्मक विद्युत्-परिवर्तन की तीव्रता कम हो जाती है।

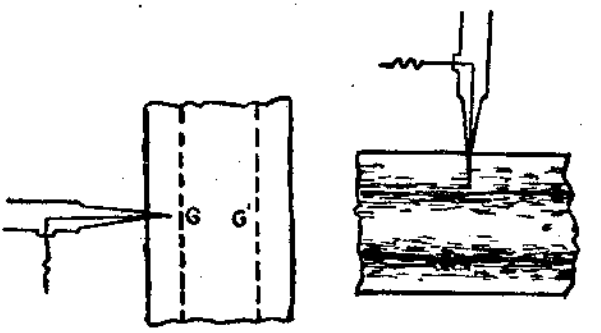

चित्र ५६—वैद्युत-शलाका द्वारा भूम्या-प्रतिबोधी स्तर का स्थान-निर्धारण। आरेख, भूम्या-प्रतिबोधी स्तर के अनुत्तेजित उदग्र और उत्तेजित क्षैतिज स्थिति का निरूपण कर रहा है।

इस प्रतिबोधन वाले स्तर में उद्दीपक परिवर्तनों का विभाजन और उनका अरीय दिशाओं में फैलना छाया द्वारा प्रदर्शित है। सबसे अधिक घनी छाया स्वयं स्तर में ही है (चित्र ५६ दाहिना चित्र)। यदि पौधे की उद्दीपना में प्रकाश के स्थान पर छाया रखी जाती; स्कंध को उदग्र से क्षैतिज करने में हम प्रतिबोधी स्तर से निकल कर एक घनी छाया को कोशिका के विभिन्न स्तरों में फैलते हुए पाते, और फिर उसे उदग्र करने पर हम छाया को लुप्त होते पाते।

वैद्युत जाँच द्वारा प्रतिबोधी स्तर का पता लगाने के बाद मैंने तने का एक प्रभाग बनाया और देखा कि इस स्तर की कोशिकाओं में बड़े-बड़े मांड-कण थे जो अपने भार द्वारा उद्दीपना करने में समर्थ थे। इस प्रकार स्थितिकरण-सिद्धान्त को स्वतंत्र पुष्टि मिली।

झुकाव पर कणों का लुढ़कना

स्थितिकरण-सिद्धान्त की परीक्षा के लिए मैंने एक दूसरी निर्णायक संपरीक्षा-युक्ति निकाली। तने का झुकाव उदग्र की ओर धीरे-धीरे बढ़ाया गया और तब झुकाव के एक चरम कोण पर भू-अभिवर्तनीय उद्दीपना की अकस्मात् विद्युत्-अनुक्रिया हुई। यह इस तरह सोचने पर ज्यादा अच्छी तरह समझा जा सकता है। उदग्र दशा में कण प्रत्येक कोशिका के निम्न भाग में रहते हैं, जब वे कोशिका के एक पार्श्व में अकस्मात्

गिरते हैं, केवल तभी उद्दीपना होती है। यदि कोई सान्द्र घर्षण न होता तो कण अंग के झुकाव के आरम्भ में ही गिर गये होते, किन्तु कोई घर्षण होता है इसलिए कणों का तुरन्त गिरना झुकाव के चरम कोण पर ही होता है।

एक और निदर्शन द्वारा यह और भी अधिक स्पष्ट हो जायगा। यदि हम कुछ बालुका के कण एक चपटी तख्ती पर रखें और उसे एक तरफ से उठाना आरम्भ करें तो कण केवल तभी गिरना आरम्भ करते हैं जब एक कोण विशेष आ जाता है। यदि तख्ती रूक्ष है तो कोण विशेष बड़ा होगा, यदि वह चिकना है तो छोटा। और भी, बालुका की घर्षण-क्रिया द्वारा रूक्ष-तल संपरीक्षण के पुनरावर्तन से चिकना हो सकता है, और परिणामस्वरूप यह कोण विशेष छोटा हो जायगा।

स्पष्ट ही पौधों की भू-अभिवर्तनीय उद्दीपना के तत्काल प्रतिबोधन के कोण-विशेष के विषय में भी यही होता है। मैंने जो संपरीक्षण विभिन्न पौधों पर किये उनसे यह कोण ३१° पर ज्ञात हुआ। भू-अभिवर्तनीय उद्दीपना की कोई विद्युत्-अनुक्रिया नहीं होती जब तक उस कोण पर अंग को न लाया जाय, लेकिन अब संपरीक्षण का पुनरावर्तन होता है; यह कोण घटकर २५° पर पहुँच जाता है।

इन संपरीक्षणों का परिणाम स्थितिकरण सिद्धान्त को और पुष्ट करता है।

अध्याय १५

प्रकृति में वनस्पति की गति

वनस्पति, पर्यावरण की विभिन्न शक्तियों से अपनी सतत समायोजना उपयुक्त गतियों द्वारा करती रहती है। ऐसी गतियाँ अत्यधिक मन्द होती है और अन्तिम प्रतिफल कुछ समय के पश्चात् ही ज्ञात होता है। जब हम उद्यान में घूमने जाते हैं, हम पौधों के विभिन्न अंगों के सतत परिवर्तन को देखकर आश्चर्यान्वित हो जाते हैं। यह एक तन्तु (Tendril) है जो पास की एक झाड़ी की टहनी को छू रहा है (चित्र ६०)। तन्तु को स्पर्श का प्रतिबोधन हो चुका है और वह इस आधार को पकड़ कर उसमें लिपट गया है। इस प्रकार उसने पौधे को ऊपर चढ़ने और अधिक से अधिक प्रकाश पाने में सहायता दी है। वहा देखिये घनी छाया में एक गमले में एक पौधा है, उसने अपनी पत्तियों को इस प्रकार झुका दिया है और ऐंठ गया है कि उनके ऊपरी तल, पर्दे के छेद में से आते हुए प्रकाश द्वारा पूर्ण प्रकाशित हैं (चित्र ६१)। एक और दूसरे स्थान में पौधा प्रकाश से बचने के लिए दूसरी ओर घूम गया है। यहाँ एक पौधे में अकस्मात् उलट-फेर हो गया है और उसका क्षैतिज स्कंध अब ऊपर की तरफ मुड़ रहा है जिससे फिर से सीधा हो जाय।

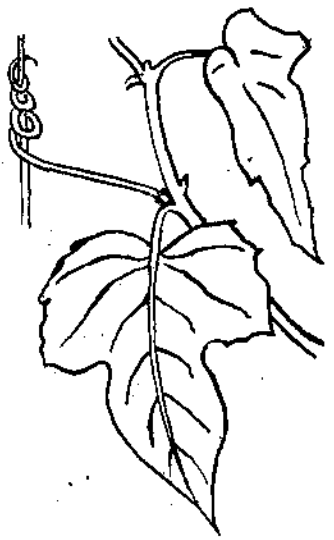

चित्र ६०—तन्तु का मरोड़।

पर्यावरण की उद्दीपना द्वारा प्रेरित ये गतियाँ अतिशय भिन्न और जटिल हैं। कार्यशील शक्तियाँ अनेक हैं—परिवर्तित तापमान का प्रभाव, स्पर्श, गुरुत्वाकर्षण, दृश्य और अदृश्य प्रकाश की उद्दीपनाएँ। इसके अतिरिक्त समान उद्दीपना का एक बार कुछ प्रभाव होता है और दूसरी बार ठीक उसके विपरीत। इस प्रकार इन अत्यधिक विपरीत

घटनाओं को एक करना असम्भव-सा दीखता है, और ऐसा विश्वास किया जाता रहा है कि कोई एक सामान्य दैहिक अभिक्रिया नहीं है बल्कि प्रत्येक पौधा व्यक्तिगत

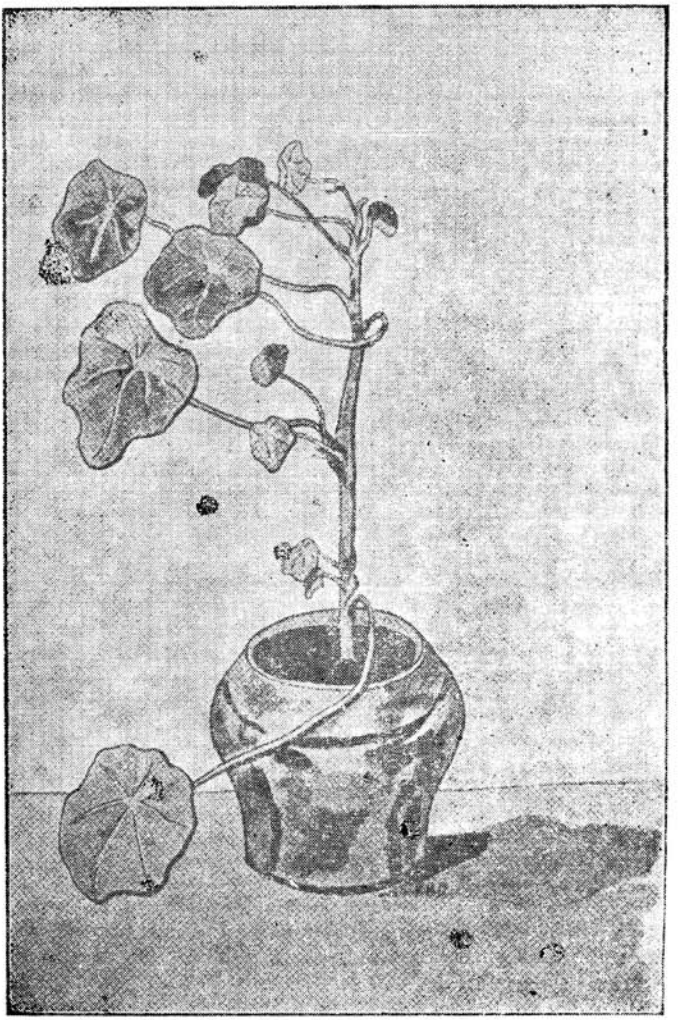

चित्र ६१—इन्द्रशूर के पर्ण, प्रकाश की ओर।

रूप से अपने लाभ के लिए गति का निश्चय करता है। इस प्रकार की साध्यवाद-परक (Teleological) कल्पना तो इसका कोई स्पष्टीकरण नहीं हुई। विविध गतियों को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न वर्णनात्मक वैज्ञानिक वाक्यांश काम में लाये गये हैं, जैसे सकारात्मक सूर्यावर्तन (Positive heliotropism) जब अंग प्रकाश की ओर मुड़ता है, नकारात्मक सूर्यावर्तन (Negative Heliotropism) जब प्रकाश से विपरीत दिशा में मुड़ता है। इसी प्रकार सकारात्मक और नकारात्मक भू-अभिवर्तनीयता (Geotropism) विभिन्न अंगों द्वारा पृथ्वी की ओर और उससे विपरीत दिशा में जाने की गति के लिए काम में लायी गयी है। लेकिन यह न समझना चाहिये कि ये वर्णनात्मक वैज्ञानिक वाक्यांश घटनाओं को यथार्थ रूप से स्पष्ट करते हैं। बेलिस (Bayliss) ने अपनी शरीरविज्ञान विषयक पुस्तक में इसके प्रतिवाद में लिखा है—"ऐसे वर्णनात्मक वैज्ञानिक वाक्यांशों का दुरुपयोग अनिष्टकर भी हो सकता है, क्योंकि इससे ऐसा विश्वास बद्धमूल हो सकता है कि जब कोई घटना अंग्रेजी (या दैनिक व्यवहार की कोई भी भाषा) में न कही जाकर किसी शास्त्रीय भाषा (जैसे लैटिन या ग्रीक) में कही जाय तो यह किसी नये ज्ञान की प्राप्ति का द्योतक है।"

वनस्पति की विविध गतियों की एक विचारशील व्याख्या सम्भव हो सकती है। यथार्थ में इस समस्या की जटिलता विविध कारकों की सामूहिक क्रिया में निहित है, जिनकी वैयक्तिक प्रतिक्रियाएँ हमें ज्ञात नहीं हैं।

इस विषय में दो प्रश्नों के विषय में अनुसन्धान करना है, जैसे विभिन्न उद्दीपनाओं की प्रतिक्रियाएँ और एक पार्श्वगत उद्दीपना से उत्पन्न मोड़।

उद्दीपना की विभिन्न प्रणालियों के प्रभाव की अनिश्चितता के कारण अधिक भ्रम उत्पन्न हो गया है। उदाहरणार्थ, स्पर्श की उद्दीपना प्रकाश की उद्दीपना से स्पष्टतः भिन्न अभिक्रिया दिखायेगी। ऐसी विशिष्ट अभिक्रियाएँ विभिन्न उद्दीपनाओं के लिए मान ली गयी हैं। सच तो यह है कि कोई ऐसी भिन्नता नहीं है। पहले एक अध्याय में दिये गये निष्कर्ष यह स्पष्ट करते हैं कि सब प्रकार की एक ही तीव्रता की प्रत्यक्ष उद्दीपना यथार्थ या प्रारम्भिक संकुचन करती है। उदाहरणार्थ, बढ़ते हुए पौधे में यह प्रारम्भिक संकुचन वृद्धि की गति का कम होना प्रदर्शित करता है। मैंने पहले ही स्पष्ट कर दिया है कि किस प्रकार विभिन्न उपकल्पनाओं द्वारा बाह्य उद्दीपना अन्तर के संवेदनशील ऊतकों तक पहुँच जाती है, और प्रायः वर्धित तीव्रता के साथ (चित्र १०१)।

सकारात्मक वक्रता

अब मैं अंग के एक पार्श्व की उद्दीपना द्वारा मोड़ या वक्रता के प्रश्न पर विचार करूँगा। हम एक वास्तविक उदाहरण लें और कल्पना करें कि तने के दाहिने पार्श्व को यान्त्रिक अथवा प्रकाश की उद्दीपना दी जाय। तने का दाहिना पार्श्व प्रत्यक्ष उद्दीपना पाता है और इसके परिणामस्वरूप यथार्थ अथवा प्रारम्भिक संकुचन स्थानीय होता है, दाहिने पार्श्व की स्वाभाविक वृद्धि-गति अब रुक जाती है। अब यदि बायें पार्श्व की वृद्धि स्वाभाविक होती है तो तना मुड़ जाता है; क्योंकि उद्दीप्त पार्श्व अवतल (Concave) होता है। अब तना उद्दीपना की ओर मुड़ जाता है और इस मोड़ को प्रायः सकारात्मक आवर्तन कहते हैं। अब मैं दिखाऊँगा कि वक्रता का एक दूसरा सहकारी कारक है।

ऊपर वर्णित सकारात्मक आवर्तन के सम्बन्ध में हमने अंग के दाहिने पार्श्व पर, जो प्रत्यक्ष उद्दीप्त हुआ था, ध्यान केन्द्रित किया। उस बायें या दूरस्थ पार्श्व का क्या हुआ जिसकी उद्दीपना प्रत्यक्ष नहीं थी? क्या वह निष्क्रिय रहा या कोई परोक्ष प्रभाव उस पर पड़ा? यह परोक्ष प्रभाव, यदि कोई है भी, तो उद्दीपना की प्रत्यक्ष क्रिया द्वारा या तो वक्रता को बढ़ाने या घटाने में सहायता देगा। परोक्ष उद्दीपना के सम्बन्ध में अभी तक कुछ भी ज्ञात नहीं हुआ है।

परोक्ष उद्दीपना का प्रभाव

लम्बाई की स्वाभाविक वृद्धि पर परोक्ष उद्दीपना के प्रभाव के विषय में मैंने यह दिखाया है (चित्र ५२) कि जब प्रत्यक्ष उद्दीपना द्वारा आशूनता घटती है और संकुचन होकर वृद्धि रुक जाती है, परोक्ष उद्दीपना द्वारा बिलकुल विपरीत—आशूनता की वृद्धि वाला—प्रभाव होता है और वृद्धि की गति विस्तृत होती है और बढ़ती है। इसका आरेखात्मक प्रदर्शन चित्र ६२ a, b में है। प्रत्यक्ष उद्दीपना द्वारा संकुचन होता है और अंग सिकुड़ जाता है, जब कि परोक्ष उद्दीपना द्वारा विस्तृत और लम्बा हो जाता है।

जब उद्दीपना, अंग के एक ही पार्श्व में काम करती है तब समानान्तर प्रभाव की आशा की जा सकती है। उद्दीपना द्वारा प्रेरित आशूनता का परिवर्तन ही सभी अनुक्रियात्मक गतियों का कारण है। मैंने एक चमत्कारी संपरीक्षण-युक्ति में सफलता पायी है। यह संपरीक्षण प्रत्यक्ष और परोक्ष उद्दीपना की विपरीत प्रतिक्रियाओं का प्रदर्शन करता है।

अब हम प्रत्यक्ष और परोक्ष उद्दीपनाओं के प्रभाव पर विचार करेंगे। लाजवन्ती में आशूनता की कमी पर्ण के गिरने से दृष्टिगोचर होती है और आशूनता की वृद्धि खड़े होने की गति से। चित्र ६२ में पर्ण से युक्त लाजवन्ती के स्कन्ध का एक

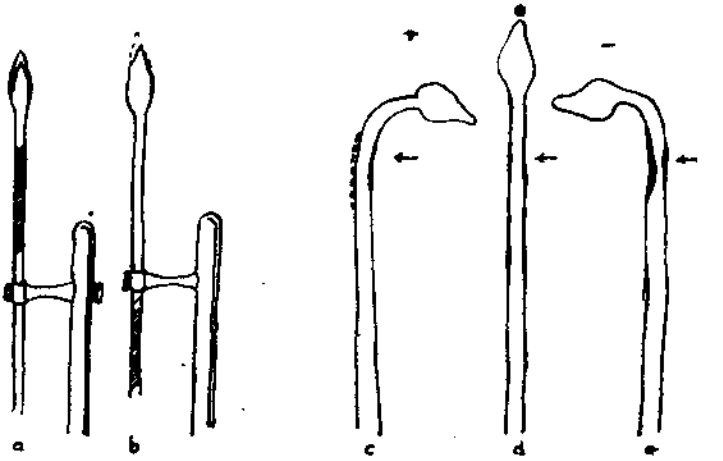

चित्र ६२—प्रत्यक्ष और परोक्ष उद्दीपना का प्रभाव।

(a) बढ़ते हुए स्थान पर प्रत्यक्ष उद्दीपना द्वारा वृद्धि का विलम्बन या संकुचन होता है, जैसा कि बिन्दु-रेखा से निरूपित है। इसमें और निम्न रेखाचित्र में उद्दीप्त स्थान छाया द्वारा निरूपित है।

(b) परोक्ष उद्दीपना (बढ़ते हुए स्थान से कुछ दूर पर) वृद्धि को बढ़ाती और विस्तृत करती है।

(c) दाहिने पार्श्व में उद्दीपना द्वारा संकुचन होता है। इस प्रकार उद्दीपना की ओर अब झुकाव होता है।

(d) विपरीत पार्श्व में उत्तेजना के पारेषण द्वारा क्लीवन होता है।

(e) तीव्र उद्दीपना से उत्तेजना का पारेषण उस पार होता है, और इस प्रकार वह अब मोड़ को ऋण कर देता है, अर्थात् उद्दीपना से दूर।

आरेखीय दृश्य है। इसके नीचे चर पीनाधार है। यदि उद्दीपना, जैसे तीक्ष्ण प्रकाश, दाहिने हाथ की ओर दी जाय, पीनाधार प्रत्यक्ष रूप से उद्दीप्त होता है और पर्ण गिर जाता है। तब यदि उद्दीपना को चर पत्ते के बिलकुल विपरीत बिन्दु पर स्कंध के दूसरी ओर ले जाया जाय, अभिलेख पर्ण की खड़ी गति बतायेगा, जो दूरस्थ

पार्श्व की आशूनता की वृद्धि बतायेगा। इस प्रकार प्रत्यक्ष और परोक्ष उद्दीपना के प्रभाव विपरीत हैं। सतत परोक्ष उद्दीपना के प्रभाव से पर्ण का गिरना अब स्पष्ट किया जायगा।

प्रकाश की एक पार्श्व उद्दीपना द्वारा समीप में संकुचन और दूरस्थ में विस्तार होता है। दोनों प्रभाव मिलकर उद्दीपन की ओर झुकते हैं (चित्र ६२.C)। प्रकाश की ओर के इस स्वाभाविक झुकाव को सकारात्मक सूर्यावर्तन कहते हैं।

उद्दीपना की दूसरी प्रणालियों द्वारा भी समान प्रभाव होते हैं। इस प्रकार यदि तन्तु स्पर्श द्वारा एक पार्श्व में उद्दीप्त होता है तो उस पार्श्व की वृद्धि मन्द हो जाती है और विपरीत पार्श्व की वृद्धि स्वाभाविक से अधिक तीव्र हो जाती है। इस प्रकार दोनों विपरीत पार्श्वों के प्रभाव उद्दीपना की ओर की गति और आधार के चारों ओर तन्तु के लिपटने के कारण हैं।

इसलिए यह धारणा कर लेना कि भिन्न प्रणालियों द्वारा भिन्न संवेद्यता और प्रतिक्रियाएँ होंगी, आवश्यक नहीं है। सब उद्दीपनाएँ, जब वे प्रत्यक्ष और यथेष्ट तीव्र होती हैं, संकुचन करती हैं। जो साधारण नियम उद्दीपना का निदेशन करते हैं, वे ही संकुचन करते हैं और वृद्धि को घटाते हैं। परोक्ष उद्दीपना द्वारा वृद्धि का विस्तार होता है और वह बढ़ती है। ये नियम सब सकारात्मक आवर्तनों या अंग के उद्दीपना की ओर घूमने को स्पष्ट करते हैं।

जब अंग प्रकाश के विपरीत मुड़ता है तो उस घटना को नकारात्मक सूर्यावर्तन कहते हैं और यह धारणा होती है कि अंग में भिन्न प्रकार की एक विशेष संवेद्यता है। किन्तु समान अंग में सकारात्मक और नकारात्मक दोनों संवेद्यता नहीं हो सकतीं। फिर भी, यदि एक अंग के एक ही पार्श्व को तीव्र प्रकाश में सतत रखा जाता है तो देखा जाता है कि पहले वह प्रकाश की ओर जाता है। अत्यधिक उद्दीप्त अंग ऊपर से मुड़ने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वह प्रकाश की तीव्रता से बचना चाहता है। इस प्रकार एक ही अंग पहले सकारात्मक सूर्यावर्तित होता है और बाद में नकारात्मक।

उद्दीपना से दूर हटकर मुड़ना

अंग एक विशेष तीव्रता के प्रकाश की ओर मुड़ता है और उससे अधिक तीव्रता के प्रकाश के विपरीत। पिछले परिणाम का कारण है, अंग के निकटस्थ से दूरस्थ पार्श्व तक उद्दीपना का अनुसंवित होना।

उद्दीपना के प्रेषण के विषय में पौधे का साधारण ऊतक उसका इतना अधिक अच्छा संवाहक नहीं है जितनी नाड़ी, किन्तु भिन्नता केवल मात्रा में है, प्रकार में नहीं। चेतनशील ऊतक उद्दीपना के मन्द होने पर भी उत्तेजना को कुछ दूर तक ले जाता है जब कि साधारण ऊतक को तीव्र और सतत उद्दीपना संवाहित

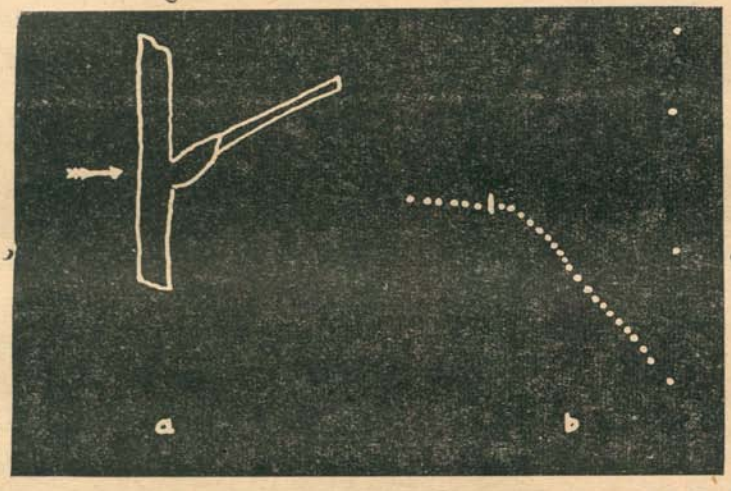

चित्र ६३—लाजवन्ती के तने के एक पार्श्व की परोक्ष उद्दीपना का प्रभाव। (a) संपरीक्षण का रेखाचित्र-निरूपण, (b) परोक्ष उद्दीपना द्वारा प्रारम्भिक सीधी अनुक्रिया का अभिलेख, और सतत उद्दीपना के बाद उत्तेजना के तिर्यक् संवाहन द्वारा उत्तेजित पतन।

करने में भी कठिनाई होती है। इस प्रकार मन्द उद्दीपना का प्रभाव स्कंध के प्रत्यक्ष उद्दीप्त पार्श्वों में प्रायः स्थानीय होता है। किन्तु तीव्र और लम्बी उद्दीपना द्वारा जो उत्तेजना होती है, वह इस बाधा को पार कर सकती है और इस प्रकार अंग की क्षैतिज दिशा में अनुस्रवित होती है।

इस क्षैतिज अनुस्रवण-प्रेषण का प्रभाव लाजवन्ती-पर्ण के प्रतिक्रिया-*अभिलेख* द्वारा प्रदर्शित है (चित्र ६३)। इसमें अनुक्रियारत पर्ण के ठीक विपरीत स्कंध के एक बिन्दु पर प्रकाश द्वारा सतत उद्दीपना दी गयी थी। पहला प्रभाव था परोक्ष उद्दीपना द्वारा खड़े होने की अनुक्रिया, तब उत्तेजना स्कंध के उस पार तक भेजी गयी और परिणामस्वरूप पर्ण गिर गया। स्कंध के एक पार्श्व में

प्रकाश की क्रिया द्वारा मुड़ने की घटना में पहला प्रभाव होता है सकारात्मक वक्रता। किन्तु सतत उद्दीपना में क्षैतिज प्रेषित उत्तेजना दूरस्थ पार्श्व का संकुचन करती है। इससे पहले वाले मोड़ का क्लीवन (Neutralisation) होता है (चित्र ६२ 'डी')।

कभी-कभी निकटस्थ पार्श्व अत्यधिक उत्तेजना द्वारा थक जाता है, जब कि दूरस्थ पार्श्व अपरिवर्तित रहता है। इसका परिणाम केवल क्लीवन ही नहीं होता है, बल्कि दूरस्थ पार्श्व के अधिक संकुचन द्वारा प्रकाश के विपरीत यथार्थ वक्रता भी होती है (चित्र ६२ इ)।

मर्कंक (Zea Mais) के बीजांकुर को लेने पर यथार्थ संपरीक्षण में एक पार्श्व में तीव्र प्रकाश की सतत क्रिया द्वारा पौधे ने पहले प्रकाश की ओर गति का प्रदर्शन किया। यह अधिकतम अवस्था पर पचास मिनट बाद पहुँचा। फिर पौधा लौटने लगा और उसी स्थान पर वापस आने लगा जहाँ से उसने जाना प्रारम्भ किया था। इस क्लीवन में ४३ मिनट और लगे। इसके बाद पौधे की अनुक्रिया नकारात्मक हो गयी।

इसका अर्थ है कि जीवन की गतियाँ चंचल नहीं हैं, बल्कि वे अत्यधिक निश्चित दैहिक प्रतिक्रियाओं द्वारा निर्धारित हैं। समस्या पर काबू न पा सकना जो हमें निराश कर रहा था, उसका कारण था अनेक क्रियाशील कारकों का अज्ञान। यह दिखाया गया है कि केवल उद्दीपना की तीव्रता और अवधि की भिन्नता द्वारा कितने स्पष्ट विपरीत परिणाम होते हैं। जीवन की यथार्थ दशाओं में अनेक दूसरे जटिल कारक उपस्थित हैं। इस प्रकार अनुक्रिया का चिह्न, उद्दीपना-बिन्दु, अंग के क्षैतिज संचालन और पौधे की बल्य दशा द्वारा मन्द होता है। इन कारकों का विभिन्न मिश्रण ही परिणामी अनुक्रिया में अनेक विभिन्नताएँ लाता है। यही आरम्भ में इतना जटिल दिखता है।

इस अध्याय में जो गतियाँ वर्णित हैं, वे एक पार्श्वगत उद्दीपना द्वारा प्रेरित हैं; फिर भी वनस्पति की गति-सम्बन्धी सभी घटनाएँ यहीं समाप्त नहीं होतीं, क्योंकि दूसरी ऐसी घटनाएँ हैं जो एक पार्श्व उद्दीपना द्वारा नहीं बल्कि पर्यावरण में व्याप्त उद्दीपना द्वारा प्रेरित होती हैं। इसका एक आश्चर्यजनक उदाहरण कुमुद पुष्प का सामयिक खुलना और बन्द होना है। इसका पूर्ण विवरण अगले अध्याय में दिया गया है।

अध्याय १६

कुमुदिनी का रात्रि-जागरण

कवि वैज्ञानिकों के पूर्वगामी हुए हैं। कुमुदिनी क्यों रात भर जागती है और दिन भर अपनी पखुड़ियाँ बन्द रखती है। कारण, वे कहते हैं कि कुमुदिनी चन्द्रमा की प्रेयसी है और जिस प्रकार प्रेमी के स्पर्श से मनुष्य का हृदय आह्लादित होता है उसी प्रकार कुमुदिनी भी चन्द्र-किरणों के स्पर्श से अपना हृदय खोल देती है और सारी रात पहरा देती है। सूर्य के रूक्ष स्पर्श से वह भयभीत होकर संकुचित हो जाती है और दिन भर अपनी पंखुड़ियों को बन्द रखती है। कुमुद की बाह्य पंखुड़ियाँ हरी होती हैं और दिन में बन्द पुष्प जल में तैरते हुए चौड़े हरे पत्तों में अदृश्य रहते हैं। संध्या समय जैसे जादू के जोर से दृश्य परिवर्तित हो जाता है और श्याम जल पर दीप्तिमान् अगणित श्वेत पुष्प छा जाते हैं (चित्र ६४)। यह प्रति दिन घटित होने वाली घटना केवल कवियों द्वारा देखी ही नहीं गयी बल्कि उन्होंने इसका स्पष्टीकरण भी किया है, कुमुदिनी चन्द्रमा से प्रेम करती है और सूर्य से भय।

यदि कवि रात्रि के अन्धकार में प्रकाश लेकर निकलता तो वह देख पाता कि चन्द्रमा के प्रकाश की पूर्ण अनुपस्थिति में भी कुमुदिनी खिल जाती है। किन्तु कवि से यह आशा नहीं की जाती कि वह लालटेन लेकर अंधकार में देखता घूमे। केवल वैज्ञानिकों में ही इस प्रकार की अपरिमित जिज्ञासा होती है। दूसरी ओर कुमुदिनी सूर्य के उदय होते ही बन्द नहीं हो जाती, क्योंकि यह पुष्प प्रायः पूर्वाह्न के ग्यारह बजे तक जाग्रत रहता है।

एक फ्रांसीसी शब्दकोश-निर्माता ने प्राणि-विज्ञान-वेत्ता कूवियर (Cuvier) से परामर्श लिया। यह परामर्श केकड़े की उसकी इस व्याख्या पर था कि वह एक छोटी लाल मछली है जो पीछे की ओर चलती है। कूवियर ने कहा, "सराहनीय! केवल यह आवश्यक नहीं है कि केकड़ा छोटा ही हो; और जब तक यह उबाला नहीं जाता तब तक लाल नहीं होता, यह मछली नहीं है और पीछे भी नहीं चल सकता, इन अपवादों को छोड़कर तुम्हारी व्याख्या ठीक है।" इसी प्रकार

कवि का कुमुदिनी-गति-संबन्धी वर्णन है; न यह चन्द्रमा के प्रकाश में खिलती है, न ही सूर्य के उदय होने पर बन्द होती है।

कुमुद के सोने और जागने की यह घटना अपने में अकेली नहीं है। प्रथम बार

चित्र ६४—कुमुद; कली और विकसित।

मेरा ध्यान निम्नांकित लोकगीत से एक दूसरे पुष्प के आश्चर्यजनक प्रदर्शन की ओर आकृष्ट हुआ। वह इस प्रकार आरम्भ होता है--

हमारा दैनिक कार्य समाप्त हुआ।
जीवन का विस्तार केवल एक घंटे का है।
अब देखो सोने के तारों से भरे खेत,
खिलते हुए झिंगा फूल के खेत।

मैं अब प्रत्येक संध्या को गंगा के किनारे सिजबेरिया के अपने संपरीक्षण उद्यान में एक दिव्य कायाकल्प देखता हूँ। बागबान ने एक बड़े भूभाग में झिंगा पुष्प लगा रखा है। दिन को जब ये पुष्प बन्द रहते हैं तब ये दृष्टिगोचर नहीं होते। इनके बाह्य पुष्पपर्ण हलके हरे होते हैं। जब अपराह्न में मैं घूमने के लिए जाता हूँ तब मैं अपने पुराने परिचित उद्यान को पहचान नहीं पाता। कुछ ही देर में वह पुष्प-समूह से भर जाता है, पुष्प जो दिव्य सुनहरे होते हैं। वे रात भर खिले रहते हैं, फिर प्रातः बन्द हो जाते हैं। स्वर्ण वस्त्र वाला परी-क्षेत्र अकस्मात् ही लुप्त हो जाता है।

अब हम कुमुद के खिलने और बन्द होने की घटना को समझने का प्रयत्न करेंगे। पौधे को पर्यावरण से अनेक उद्दीपनाएँ मिलती हैं और इनमें से प्रकाश भी एक है। इसका एक परिचित उदाहरण है सूर्यमुखी का सूर्य की ओर मुड़ना। यह देखा गया है कि पौधे के अंगों में गति के लाने में प्रभावी उज्ज्वल प्रकाश की सब किरणों में नीली और बैंगनी किरणें सबसे अधिक समर्थ हैं। चन्द्रमा का प्रकाश न केवल मन्द है बल्कि इन प्रभावी किरणों से रहित भी है, इसलिए चन्द्रमा का प्रकाश पुष्प-पर्णों की गति में सहायक नहीं हो सकता।

केवल सूर्य का प्रकाश ही प्रभावी है, किन्तु कुमुद के खिलने और बन्द होने का सूर्य के उदय और अस्त से कोई सम्बन्ध नहीं है। खिलना सूर्य के अस्त होने के कारण नहीं होता, क्योंकि पूर्वाह्न में पुष्प खिला रहता है। न यह उदय होते सूर्य से होता है, क्योंकि उसके उदय होने के पहले ही वह खिला रहता है। इसलिए पुष्प की दैनिक गति प्रकाश और अन्धकार की यथाक्रम क्रिया पर निर्भर नहीं है।

समस्या की जटिलता

पौधा केवल एक ही उद्दीपना द्वारा प्रभावित नहीं होता। पौधे की गति की घटनाएँ, जैसा पहले कहा जा चुका है, उन्हें प्रेरित करने में सहायक अनेक कारकों के कारण अस्पष्ट रहीं। यदि हम अनेक कारकों में से केवल दो के विषय में विचार करें तो यह ज्यादा ठीक से समझ में आयेगा। वे दो कारक हैं गुरुत्वाकर्षण और प्रकाश की उद्दीपना। कुछ अंग भू-अभिवर्तनीय उद्दीपना के प्रति बहुत ही संवेदनशील होते हैं और कुछ मन्द। तीव्रतर अनुक्रिया 'G' द्वारा और मन्द 'g' द्वारा

बतायी जायगी। प्रकाश में दो विभिन्न वर्ग के प्रभाव हैं—सकारात्मक सूर्यावर्तन, जब अंग प्रकाश की ओर घूमता है; और नकारात्मक सूर्यावर्तन, जब अंग प्रकाश की विपरीत दिशा में घूमता है। जब उनका प्रभाव तीव्र होगा '+L और–L' द्वारा बताया जायगा। जब मन्द होगा तब '+l और–l' द्वारा।

जब एक क्षैतिज स्कंध भू-अभिवर्तन और सूर्यावर्तन की सम्मिलित उद्दीपना द्वारा उद्दीप्त किया जायगा तब उसका क्या प्रभाव होगा? भू-अभिवर्तन अनुक्रिया में स्कन्ध ऊपर मुड़ेगा। यदि अंग सकारात्मक सूर्यावर्ती होगा तो उदग्र प्रकाश में उसका मोड़ भी ऊपर की ओर होगा। इस प्रकार भू-अभिवर्तन और सूर्यावर्तन कार्य करेंगे और उनके सम्मिलित प्रयत्न से G+L प्रभाव होगा। किन्तु अंग यदि नकारात्मक सूर्यावर्त है तब परिणाम G–L होगा। यदि गुरुत्वाकर्षण और प्रकाश की उद्दीपना से अंग की सम्बन्धित संवेदनशीलता पर और अधिक विचार किया जाय तो हमें निम्नलिखित सम्भावित संयोजन मिलेंगे—

$$G+L;\ G-L;\ G+l;\ G-l$$
$$g+L;\ g-L;\ G+l;\ g-l$$

इस प्रकार केवल दो कारकों के योग से आठ भिन्न प्रभाव हो सकते हैं। और भी कारक हैं, जैसे तापमान के बढ़ने और घटने का प्रभाव। अंग के दोनों पार्श्वों की विषम संवेद्यता द्वारा अधिक जटिलता होती है; कुछ में अधिक उद्दीप्त होने वाला भाग ऊपर का होता है, कुछ में नीचे वाला और उसी के अनुसार इसकी प्रतिक्रिया अधिक प्रभावी होती है। इस प्रकार कम से कम दस कारक कार्यशील हैं, और इनके विभिन्न सम्भव संयोजन एक सहस्र से अधिक होंगे।

वनस्पति की गतियाँ इतनी असाधारण एवं जटिल हों, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। काफी दिनों से इसका यथार्थ स्पष्टीकरण प्राप्त करने में निराश होना पड़ रहा है, जिसका कारण यह है कि अब तक इन कारकों के प्रभावों को अलग कर उनके जटिल परिणाम का विश्लेषण करना सम्भव नहीं हो सका है।

निरसन-प्रक्रिया

मैंने कहा है कि विभिन्न संयोजनों के विभिन्न सम्भव परिणामों की भिन्नताएँ एक सहस्र से अधिक होंगी। उन सबका एक के बाद एक अध्ययन किया जाय तो शायद अकस्मात् उनमें से किसी एक समस्या विशेष का हल निकल आये, किन्तु जीवन इतना दीर्घ नहीं है। फिर भी, यह सम्भव है कि सामान्य प्रारम्भिक परीक्षाओं द्वारा अप्रभावी कारकों का निरसन कर दिया जाय। इस प्रकार जाँच को सीमित किया जा सकता है। अब हम उन विभिन्न कारकों पर विचार करेंगे जिनके बने

रहने की सम्भावना है। ये गुरुत्व और प्रकाश की उद्दीपना के और तापमान के परिवर्तन के प्रभाव हैं।

क्या गुरुत्व की उद्दीपना का पुष्प के खिलने और बन्द होने की गति पर कोई विशेष प्रभाव है? पंखुड़ियाँ मध्याह्न में बन्द हो जाती हैं। प्रत्येक पंखुड़ी सीधी खड़ी रहती है। यदि गुरुत्व की उद्दीपना का प्रभाव पुष्प पर होता, तो पुष्प को उलटने पर उसकी बन्द पंखुड़ियाँ अपनी विपरीत स्थिति में ऊपर और बाहर की ओर खुलने लगतीं। इस प्रकार पुष्प खिल जाता। किन्तु ऐसा नहीं होता। अब हम विचार करें कि क्या प्रकाश की तीव्रता पंखुड़ियों की गति को प्रभावित करती है? प्रकाश प्रातः आरम्भ होता है और संध्या को समाप्त होता है। यदि पंखुड़ियों की गति सर्वथा प्रकाश पर निर्भर रहती तो प्रातः और संध्या के दो विपरीत परिणाम रहते। किन्तु इन दोनों समयों में पुष्प खिला रहता है। एक बात और भी है, खुलने और बन्द होने की गति की क्रिया प्रकाश और अन्धकार के दैनिक परिवर्तन को पूरा सहयोग नहीं देती। इसलिए कुमुद की पंखुड़ियों की गति का प्रकाश के परिवर्तनों पर निर्भर होना आवश्यक नहीं है।

कुमुद का दैनिक अभिलेख

यह दिखाया गया है कि इसकी पंखुड़ियों की गति पर गुरुत्व और प्रकाश का कोई प्रभाव नहीं है। तब फिर गति किस पर निर्भर है? इसका निश्चय करने के लिए हमें इसकी पंखुड़ियों की गति का सतत अभिलेख लेना होगा। वे दिन में खुली रहती हैं। हम यह जानना चाहते हैं कि ठीक किस समय ये अपनी जागरण-गति का आरम्भ करती हैं; किस समय गति सबसे अधिक तीव्र होती है और कब पुष्प पूर्ण रूप से विकसित हो जाता है।

इस खिलने के पश्चात् एक समय आता होगा जब पंखुड़ियों की गति विपरीत होती होगी या ये बन्द होती जाती होंगी। कब यह आरम्भ होता है, किस गति से यह चलता है, और कब पुष्प 'निद्रा' में अपनी पंखुड़ियों को बन्द कर लेता है?

केवल तापमान की विभिन्नता ही एक अन्य ऐसा परिवर्तित तत्व है, जो पंखुड़ियों की गति पर संभावित प्रभाव डाल सकता है। ग्रीष्म-ऋतु में छः बजे प्रातः निम्नतम तापमान होता है। इसके बाद तीव्रता से बढ़ने लगता है। प्रायः २ बजकर ३० मिनट पर अधिकतम पर पहुँचता है। उसके बाद तापमान घटने लगता है और दूसरे दिन प्रातः निम्नतम हो जाता है। निम्नतम से अधिकतम तक बढ़ने का समय ८½ घंटे का है; किन्तु दूसरी ओर उसी भाँति घटने की अवधि १५½ घंटे की होती

है। इस प्रकार बढ़ने की गति घटने की गति से कहीं तीव्रतर है। शीतकाल में निम्नतम तापमान आधा घंटा बाद और अधिकतम आधा घंटा पहले पहुँचता है। पुष्प की गति पर तापमान का प्रभाव स्पष्ट जानने के लिए पँखुड़ियों और तापमान का परिवर्तन, दोनों का ही चौबीस घंटे का दैनिक अभिलेख लेना आवश्यक है।

स्वतः अभिलेख द्वारा एक ही पट्ट पर दोनों अभिलेख साथ-साथ लिये जाते हैं। पूर्व अभिलेख (चित्र ६५) में ऊपरी मोड़ तापमान का दैनिक परिवर्तन दिखाता है, नीचे के मोड़ में संवादी मोटे बिन्दु दोनों आवश्यक परिवर्तनों का समय बताते हैं।

अब हम देखेंगे कि पुष्प की गति की तापमान के परिवर्तन-वक्र से कितनी अधिक समानान्तरता है। यह समानान्तरता बहुत ही विस्मयकारी है। अब कोई

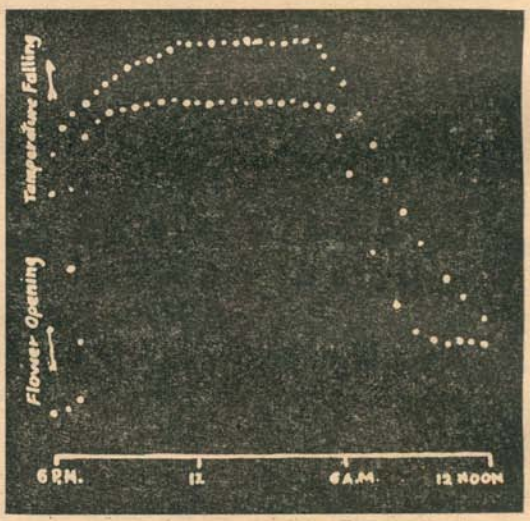

चित्र ६५—कुमुद की पंखुड़ियों का दैनिक अभिलेख।

सन्देह नहीं रह जाता कि पुष्प के खुलने और बन्द होने का कारण तापमान का दैनिक परिवर्तन है। पुष्प दिन को सोने की स्थिति में रहता है। छः बजे संध्या से तापमान तीव्रता से गिरने लगता है और पँखुड़ियाँ खिलने लगती हैं, पहले धीरे-धीरे फिर शीघ्रता से। १० बजे रात्रि तक पुष्प पूरा खिल जाता है। तापमान यद्यपि गिरता ही जाता है किन्तु अधिकतम के पश्चात् और विस्तार सम्भव नहीं है। प्रायः छः बजे प्रातः तापमान बढ़ने लगता है। इसलिए बन्द होने की विपरीत गति आरम्भ होती

है। पुष्प तीव्रता से तब तक बन्द होता जाता है जब तक कि निद्रा आ जाने की क्रिया पूरी नहीं हो जाती, जो १० बजे प्रातः तक होती है।

इस प्रकार यह दिखाया गया है कि तापमान की वृद्धि द्वारा पुष्प बन्द होता है और घटने पर खिलता है। गति की व्याख्या यह है कि युवा पुष्प वृद्धि की स्थिति में रहता है और तापमान की वृद्धि उसको बढ़ाती है तथा उसका घटना उसकी वृद्धि को रोकता है। कुमुद में पँखुड़ियों के दोनों पार्श्व संवेदनशीलता में भिन्न हैं; ठीक वैसे ही जैसे हमने लाजवन्ती के पीनाधार के ऊपर और नीचे के भागों की संवेदनशीलता को असमान पाया। भारतीय कुमुद में बाह्य भाग अधिक संवेदनशील होता है। इसलिए तापमान की वृद्धि के अन्तर्गत बाह्य भाग अन्दर के भाग की अपेक्षा अधिक तेजी से बढ़ता है, जिससे बन्द होने की गति प्रेरित होती है। तापमान के पतन में विपरीत गति होती है। इसका कारण है कि अधिक संवेदनशील बाह्य पार्श्व में गति अधिक मन्द होती है।

यूरोपीय कुमुद में अन्दर का भाग अधिक संवेदनशील होता है। इन पुष्पों को भारतीय कुमुद के विपरीत बनने के लिए बाध्य होना पड़ता है। ये दिन में खुलते हैं और रात में बन्द होते हैं। इसीलिए इन्हें चन्द्र-पूजा का दोषी नहीं ठहराया जा सकता। इनका स्वभाव प्राकृतिक है। दिन को जागरण और रात को निद्रा। अन्य, रात्रि को दिवस में परिवर्तित कर देते हैं और रात्रि-जागरण की पूर्ति दिन में सोकर करते हैं।

प्रकाश की विभिन्नता में कासमर्द (Cassia) की गति

प्रकाश में अंग की विशेष संवेदनशीलता के उदाहरण के लिए हम भारतीय पौधा द्रुम कासमर्द (Cassia alata) की पत्ती पर विचार कर सकते हैं। ये पत्तियाँ

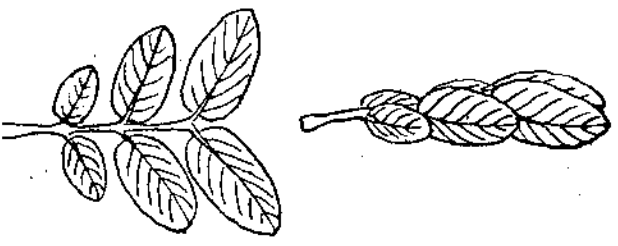

चित्र ६६—खुली और बन्द स्थिति में कासमर्द का पर्ण।

रात्रि में दृढ़तापूर्वक बन्द रहती हैं किन्तु बहुत तड़के ही खुलना आरम्भ कर देती हैं

और सारे दिन खुली रहती हैं (चित्र ६६)। ये पत्तियाँ इतनी संवेदनशील हैं कि मेघान्धकार में भी बन्द होने लगती हैं।

यह दिखाने के लिए कि इस पौधे की बन्द होने और खुलने की दैनिक गति प्रकाश और अन्धकार के क्रमागम द्वारा प्रेरित है, ४ बजे संध्या से लेकर दूसरे दिन मध्याह्न तक का सतत अभिलेख लिया गया। प्रथम मोटा बिन्दु ४ बजे संध्या को चिह्नित किया गया; इसके बाद वाले एक-एक घंटे के अन्तर से लघु बिन्दुओं का अन्तर १५ मिनट का था। यह दिखाई पड़ता है कि पत्तियों की बन्द होने की गति ५ बजे संध्या से आरम्भ हुई, जब प्रकाश मन्द होने लगा। ९ बजे रात्रि तक पत्तियाँ पूरी बन्द हो गयीं और दूसरे दिन ५ बजे प्रातः तक बन्द रहीं। इसके पश्चात् वे खुलने लगीं और ९ बजे प्रातः तक पूरी खुल गयीं। ये अपराह्न में देर तक खुली

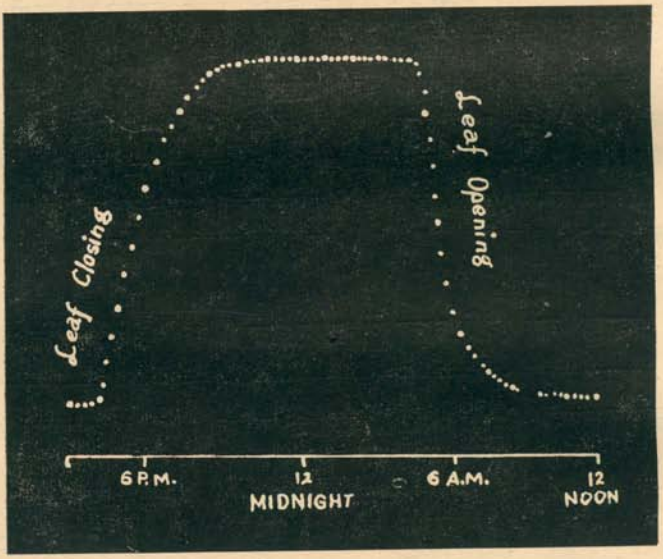

चित्र ६७--कासमर्द की पत्ती का दैनिक अभिलेख।

रहीं (चित्र ६७)। इसी प्रकार यह चक्र चलता रहा। मध्याह्न में इस पौधे पर एक काला वस्त्र रखकर यह तथ्य प्रमाणित किया जा सकता है कि ये गतियाँ प्रकाश के परिवर्तन से संपूर्णतया प्रभावित हैं, तापमान की विभिन्नता द्वारा नहीं। तापमान समान रहता है फिर भी कृत्रिम अन्धकार के कारण पत्तियाँ तीव्र गति से बन्द हो जाती हैं।

अध्याय १७

रस का उत्कर्ष

मृदा-जल में भोजन सामग्री घोल के रूप में वर्तमान रहती है। पौधा इसी को अवशोषित करता है। अवशोषित रस का विभाजन या रस का प्रवाह पौधे की कोशिकाओं की आर्द्रता बनाये रखने में सहायता देता है। यह आर्द्रता वही है जिसके बिना पौधे की वृद्धि और उसकी विभिन्न जीवन-गतियाँ रुक जाती हैं। किन्तु रस वृक्ष के शिखर पर कैसे पहुँच जाता है?

इस प्रश्न ने वैज्ञानिक अनुसंधानकों को दो सौ वर्ष से अधिक समय से उलझा रखा है। एक ओर तो यह विवाद है कि यह केवल भौतिक शक्ति द्वारा ही होता है और दूसरी ओर यह कि ऐसा जीवित ऊतकों की किसी सक्रियता द्वारा होता है। अभी जो कारण स्पष्ट किये जायेंगे, उनसे तो वास्तविक सर्वमान्यता भौतिक सिद्धान्त के ही पक्ष में है, किन्तु जो प्रमाण यहाँ प्रस्तुत किये जायेंगे उनसे यह दृष्टिकोण सर्वथा अमान्य सिद्ध हो जाता है।

हम एक दीर्घकाय और पत्तों से भरे हुए वृक्ष को लें। जड़ से पत्तों तक रस-प्रेषण करने का उत्तरदायित्व किन भौतिक शक्तियों पर है? इन पर्णों से सतत उत्स्वेद या जल-वाष्प का उच्छ्वसन होता रहता है और शिखर से जड़ तक काष्ठ-वाहिनियों में एक आंशिक शून्यक (Vacuum) बनता रहता है। इसके परिणाम-स्वरूप वायुमण्डल का दबाव जल को ऊपर की ओर ले जाता है। किन्तु इस प्रकार जल अधिकतम ३४ फुट तक ऊँचा पहुँच सकता है। यही ऊँचाई जल-वायुदाबमापी (Water-barometer) की है। किन्तु ताड़ वृक्ष कभी-कभी १०० फुट से अधिक ऊँचे होते हैं। लेकिन ताड़ वृक्ष भी ४५० फुट ऊँचे प्रतंग अनुकर्पूर (Eucalyptus Omygdalina) जैसे कुछ विशाल वृक्षों की तुलना में बौना है। इसलिए वायुमण्डल-दाब का सिद्धान्त अपर्याप्त है, जैसे केशिकत्व (Capillarity) का सिद्धान्त भी है।

रसाकर्षी (Osmotic) क्रिया का सिद्धान्त भी इस घटना को स्पष्ट करने के लिए काम में लाया जाता है। जब एक अर्ध पारगम्य (Semi permeable) थैले में तीव्र शर्करा-घोल रखकर जल में डुबोया जाता है तो जल उस तीव्र घोल वाले थैले में चला जाता है। वनस्पति-कोशिकाएँ भी तीव्र घोल से भरे थैले की तरह हैं और इस-

लिए वे अपने लिए सुलभ जल को ग्रहण कर लेंगी। इस प्रकार जड़ की कोशिकाएँ मृदा से जल लेती हैं, ऊपर की कोशिकाएँ नीचे वाली से और इस प्रकार ऊपर तक यही क्रम चलता जाता है।

किन्तु यह रसाकर्षी रीति अत्यधिक मन्द है। अब हम देखें कि अनुकपूर (Eucalyptus) के शिखर पर पत्ते जब तीव्र शुष्कता में मृतवत् हो जाते हैं तब इसका क्या अर्थ होता है? जब वर्षा उसकी जड़ों को सिंचित कर देती है तब वे शुष्क पत्ते किस आतुरता से रस के पहुँचने के लिए प्रतीक्षा कर रहे होंगे, इसकी हम सहज ही कल्पना कर सकते हैं। यदि जलगति पूर्णतया रसाकर्षी क्रिया पर निर्भर रहती तब उनका भविष्य विशेष उज्ज्वल न होता, क्योंकि रसाकर्षी क्रिया द्वारा जल को शिखर तक पहुँचाने में कम से कम एक वर्ष से अधिक ही लगता। भौतिक सिद्धान्त के समर्थकों में से एक स्ट्रासबर्गर (Strasburger) भी हैं। ये एक विख्यात वनस्पति-शरीर-वैज्ञानिक हैं। किन्तु इन्हें भी बाध्य होकर कहना पड़ा कि रसाकर्षी शक्तियाँ इतनी मन्द होती हैं कि वे निरर्थक-सी हैं और रसाकर्षी पदार्थों का कोई निश्चित विभाजन भी नहीं है जो किसी इस प्रकार की धारा का होना बता सकता।[1] इसलिए अवश्य कोई दूसरा कारक क्रियारत होगा, जो रस का तीव्रतर उत्कर्ष प्रभावित कर रहा है।

अग्रीय अंगों (Terminal Organs) द्वारा खींचातानी

एक दूसरा सिद्धान्त यह है कि अग्रीय अंग पर्ण और जड़, दोनों के ऊपर से खींचने और नीचे से धक्का देने की क्रिया द्वारा रस का उत्कर्ष होता है। यह सिद्धान्त आंशिक रूप में भौतिक है। क्योंकि खींचना और धक्का देना क्रम से पर्ण और जड़ की जीवन-क्रिया पर निर्भर है। ऐसी धारणा है कि उच्छ्वसन द्वारा पत्तों के जल को निकालने की क्रिया ही, काष्ठ में वर्तमान वाहिनियों के संयुक्त स्तम्भों में स्थित जल को खींचती है। किन्तु जल-स्तम्भ सतत नहीं होते, बीच-बीच में वायु के बुलबुले होते हैं। यह तो स्पष्ट ही असम्भव है कि ऐसी रस्सी जो जगह-जगह कटी हो, जल निकालने के काम में लायी जा सके। यह तो हुई ऊपर से खींचने की बात। यह धारणा है कि नीचे से जड़-दाब द्वारा धक्का दिया जाता है। किन्तु ताड़ में कोई ऐसा जड़-दाब नहीं है जिसका पता चले, फिर भी रस सौ फुट से ऊँचे चढ़ जाता है। पुनः सक्रिय उच्छ्वसन के समय जब वृक्ष को सबसे अधिक जल की आवश्यकता होती है, जड़-दाब सकारात्मक होने के स्थान पर यथार्थ में नकारात्मक

---

१. स्ट्रासबर्गर, *'Text-Book of Botany'* (Eng. Translation, page 187).

हो जाता है। आगे चलकर यह तथ्य कि पर्ण अथवा जड़, रस-उत्कर्ष के लिए नितान्त आवश्यक नहीं है, स्पष्ट किया जायगा। उस समय मैं यह दिखाऊँगा कि जड़ और पर्णों को हटा देने पर भी रस-उत्कर्ष होता रहता है।

मूलतः जीवन-क्रिया के कारण रस का उत्कर्ष

इस प्रकार विभिन्न भौतिक सिद्धांतों के असन्तोषजनक सिद्ध होने के बाद, यह प्रश्न रहता है कि कहीं जीवित कोशिकाओं की क्रिया ही तो रस-उत्कर्ष को प्रभावित नहीं करती? फिर भी इस शारीरिक सिद्धान्त को स्ट्रासबर्गर के कुछ अनिर्णयात्मक

चित्र ६८—कटे हुए छोर में पानी देने पर, कटी हुई शाखा के सूखे पर्णों का पूर्ण रूप से सीधा होना (हेमपुष्प)। सिंचाई के पहले (दाहिना) और बाद के चित्र (बायाँ)।

परिणाम वाले संपरीक्षणों से तीव्र आघात पहुँचा, जिनके कारण वे यह सोचने लगे कि रस-उत्कर्ष विष के द्वारा प्रभावित नहीं होता, जो सब जीवित ऊतकों के लिए

घातक है। मेरे परिणाम जो अभी दिये जायेंगे, स्ट्रासबर्गर के परिणामों से सर्वथा विपरीत निष्कर्ष पर पहुँचाते हैं।

चित्र ६९—फार्मेल्डिहाइड के घोल में झुकी हुई कासमर्द की कटी हुई शाखा के चित्र। पानी में डूबने के फलस्वरूप पानी के आरोहण से पूरा सीधा खड़े होने के बजाय झुकाव और अधिक हो गया; जैसा चित्र ६८ में है।

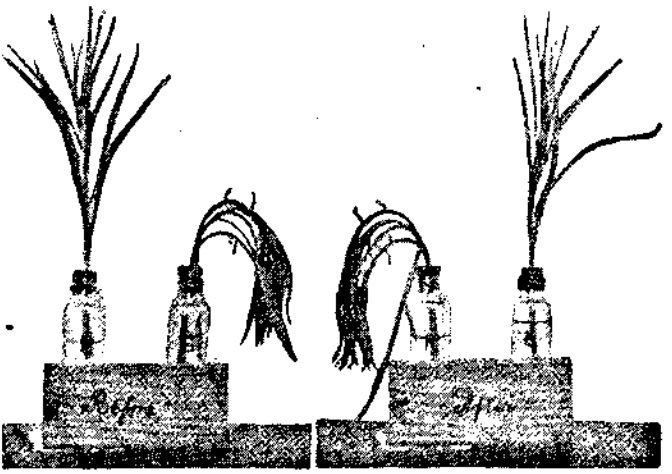

चित्र ७०—सीधा तना विषमय घोल में, और झुका हुआ तना उद्दीपक (पोषक) घोल में रखा है (बायीं ओर)। विषकृत तना झुककर मृत हो जाता है, जब कि झुका हुआ तना सीधा हो जाता है (दाहिनी ओर)

उद्दीपनाओं और विषों के प्रभाव पर ये अनुसन्धान पूरी तरह यह सिद्ध करते हैं कि रस-उत्कर्ष मूलतः जीवित कोशिकाओं की क्रिया द्वारा प्रेरित है, सेवन्तिका हेमपुष्प (Chrysanthemum Coronarium) की एक कटी हुई डाल बिना पानी के रखी गयी। पौधा झुककर दोहरा हो गया, पत्ते सिकुड़ कर मुरझा गये और ऐसा दिखने लगा मानो पौधा मृत हो गया है। किन्तु बहुत ही हलके उद्दीपक से युक्त जल से सींचने पर एक अद्भुत रूपान्तर हो जाता है। अब सक्रिय रस-उत्कर्ष के कारण प्रारम्भिक आशूनता की पुनः स्थापना होती है। झुकी हुई डाल उठ खड़ी होती है और पत्ते शक्ति से अपने स्वाभाविक रूप में पुनः फैल जाते हैं जैसा कि दिये हुए चित्र में दिखाई पड़ता है (चित्र ६८)। इस संपरीक्षण में १५ मिनट के थोड़े-से समय में संपूर्ण पुनरुन्नयन हो गया। इसके ठीक विपरीत दूसरा समानान्तर संपरीक्षण था, जिसमें गिरा हुआ स्कंध विषालु फार्मेल्डिहाइड घोल (Formaldehide Solution) द्वारा सींचा गया। यह प्रादर्श फिर कभी पुनर्जीवित नहीं हुआ, बल्कि पूर्ण अचेत होकर एक मरणासन्न ऊतक का कुण्डलित पिण्ड बन गया (चित्र ६९)।

इसके बाद वाले संपरीक्षण में मैंने कुछ रूपान्तरण किये; परीक्षणान्तर्गत प्रादर्श भी भिन्न था। प्रमुण्ड पुष्प (Centaurea) के पौधे का एक सीधा तना एक बरतन 'P' में रखा गया। बरतन में पोटैसियम सायनाइड का विषघोल था। तभी उसी पौधे का एक झुका हुआ तना 'S' बरतन में, जिसमें एक उद्दीपक (घोल) था, रखा गया। दाहिनी ओर चित्र-युगल में विषमय और उद्दीपक घोलों का विस्मयकारी विपरीत प्रभाव दिखाया गया है। जो प्रादर्श खड़ा था वह विष में पूर्णतः नष्ट हो गया, जब कि गिरा हुआ तना उद्दीपना द्वारा तीव्र उन्नयन का प्रदर्शन करता रहा है (चित्र ७०)।

जो प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं, वे सिद्ध करते हैं कि रस-उत्कर्ष निश्चय ही जीवित ऊतकों पर निर्भर है, किन्तु जीवित क्रिया की एक अस्पष्ट धारणा ही इस घटना का पूर्ण स्पष्टीकरण नहीं है। इसकी आन्तरिक सक्रियता का स्वरूप-विशेष निर्धारित करना भी आवश्यक है। कैसे यह सक्रियता प्रारम्भ होती है और किस प्रकार रस के परिवहन का निर्दिष्ट संचालन होता रहता है।

इस समस्या के पूर्ण समाधान के लिए मुझे संपरीक्षण की विपरीत प्रणालियाँ और विभिन्न यन्त्र बनाने पड़े। इन सबके परिणामों द्वारा हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि पौधा एक ऐसी यन्त्र-रचना द्वारा चालित है जो प्राणी में रक्त-प्रवाह बनाये रखने वाले यन्त्र की ही तरह है।

प्राणी में रक्त-उत्कर्ष

उच्चतर प्राणी में एक संकुचनशील अंग के--जिसे हृदय कहा जाता है--स्वतः सतत-स्पन्दन द्वारा रक्त-प्रवाह बना रहता है। फिर भी हमें हृदय और उसकी यन्त्र-रचना की एक सामान्य रूपरेखा बना लेनी चाहिये। क्योंकि वनस्पति में मनुष्य-हृदय की तरह अधिक जटिल और केन्द्रित अंग खोजना युक्ति-युक्त नहीं होगा। वनस्पति की समानता निम्न प्राणियों से ही करनी चाहिये, क्योंकि उसमें हृदय एक लम्बी नली की तरह होता है, जैसा कि एम्फिआक्सस (Amphioxus) में होता है। वृक्ष में जो पोषक रस होता है वह क्रमसंकोची संकुचन की तरंगों द्वारा संचालित होता है, जो आगे की ओर तीव्रता से बढ़ती हैं। उच्चतर प्राणियों के भ्रूण में भी हृदय एक लम्बी नली की ही तरह होता है। प्राणी के हृद्-ऊतक का आवश्यक लक्षण है इसका लयबद्ध स्पन्दन, जिसकी तीव्रता स्थितिविशेष में उपयुक्त रीति से रूपान्तरित होती रहती है।

इस प्रकार कुछ उद्दीपक भेषजों के प्रभावान्तर्गत हृदय तीव्र गति से स्पन्दित होता है और रक्त का तीव्रतर गति से उदंचन होता है। इससे रक्त-प्रवाह भी द्रुततर होता है। प्रावसादक ठीक इसके विपरीत प्रतिक्रिया करता है।

हृत्-स्पन्दन को आरम्भ करने के लिए आन्तरिक तनाव (Tension) की एक निश्चित मात्रा की आवश्यकता होती है। इस प्रकार घोंघे के निष्क्रिय हृदय को पूर्ववर्णित अन्तर्हृद्-दाब द्वारा स्पन्दित किया जाता है। एक सीमा के अन्दर हृदय की सक्रियता तापमान के बढ़ने पर बढ़ती है और शीत द्वारा घटती है।

ईथर की तरह का निश्चेतक हृद्गति को बढ़ाता है। क्लोरोफार्म की तरह का तीक्ष्ण निश्चेतक तत्काल उद्दीपना करता है, किन्तु इसके बाद सतत क्रिया से वृद्धि घटने लगती है और रुक जाती है।

अब मैं दिखाऊँगा कि जो भी दशा हृदय की क्रिया को बढ़ाती है, और इस प्रकार रक्त-प्रवाह की गति को द्रुततर करती है, वह रस-उत्कर्ष को भी बढ़ाती है, और इसके विपरीत दोनों ही में निम्नन कारक इसे घटाते हैं और रोक देते हैं। इस परीक्षण में जिस कठिनाई का सामना करना पड़ा था, वह थी रस-उत्कर्ष की स्वाभाविक गति के निरूपण और माप के लिए अब तक कोई सन्तोषजनक रीति का न मिलना।

रस-प्रवाह का संकेतक पर्ण

यह कठिनाई मैंने पर्ण को रस-प्रवाह का संकेतक मानकर दूर की। गमले के पौधे में कभी न कभी शुष्कता द्वारा पर्ण झड़ते हैं। सींचने के बाद वे खड़े हो जाते हैं।

अन्य भी कोई कारक, जो रस-उदञ्चन की वृद्धि करता है, पर्ण का शीघ्रतापूर्वक खड़ा होना भी उसी के द्वारा होता है। इसके विपरीत निम्नन द्वारा उदञ्चन-क्रिया घटाने से पर्ण का पतन होता है। ये गतियाँ इतनी सूक्ष्म होती हैं कि आसानी से दिखाई नहीं पड़तीं। जब निम्न युक्ति द्वारा इनका प्रवर्धन होता है, तभी ये दिखती हैं।

वैद्युत वनस्पति-आरेख (Phytograph)

रस-उत्कर्ष की परिवर्त्ती गतियों को पकड़ने के लिए यह एक बहुत ही संवेदन-शील यन्त्र है। अभिलेखक उत्तोलक से एक पतली रेशम की डोरी द्वारा पर्ण

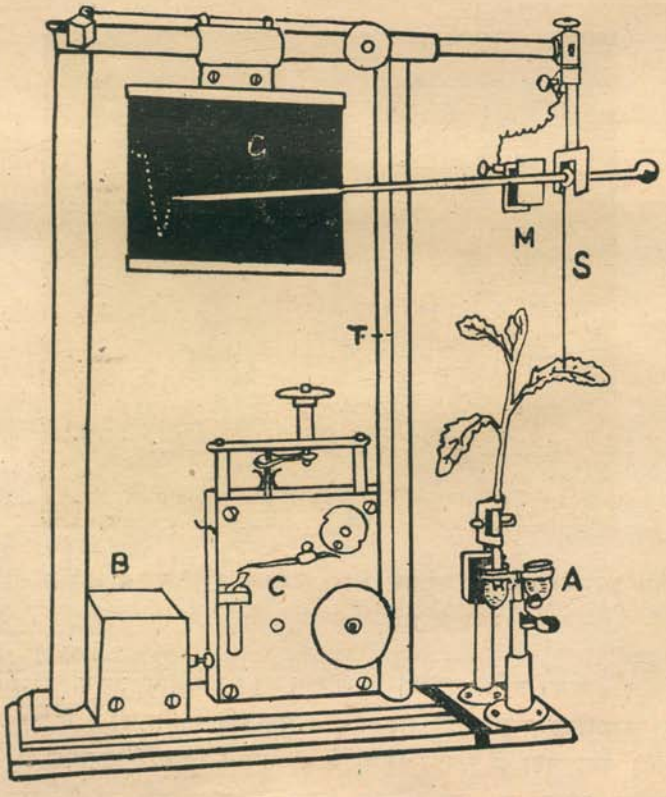

चित्र ७१—वैद्युत वनस्पति-आरेख ।

को जोड़ देते हैं। यह पर्ण की गति का दस से सौ गुना प्रवर्धन करता है। यह अभि-

लेख एक धूमित काँच-पट्ट पर लिया जाता है। एक विद्युत्-चुम्बकीय युक्ति द्वारा यह उत्तोलक दो से दस सेकेण्ड तक के अन्तर पर इस अभिलेख-पट्ट पर क्रमिक बिन्दुओं का अभिलेखन करता है (चित्र ७१)। एक कटी हुई डाल के पर्ण की अनुक्रिया प्रायः वही होती है जो जड़-सहित एक समूचे पौधे की होती है। कटी डाल इधर-उधर आसानी से घुमायी-फिरायी जा सकने के कारण परीक्षण के लिए स्पष्टतः अधिक उपयुक्त है।

विभिन्न घोलों से भरी दो प्रयोग-नलियाँ एक घूमती हुई शलाका पर चढ़ा दी जाती हैं। ये एक हस्तक द्वारा ऊपर-नीचे की जा सकती हैं। इस प्रकार डाल

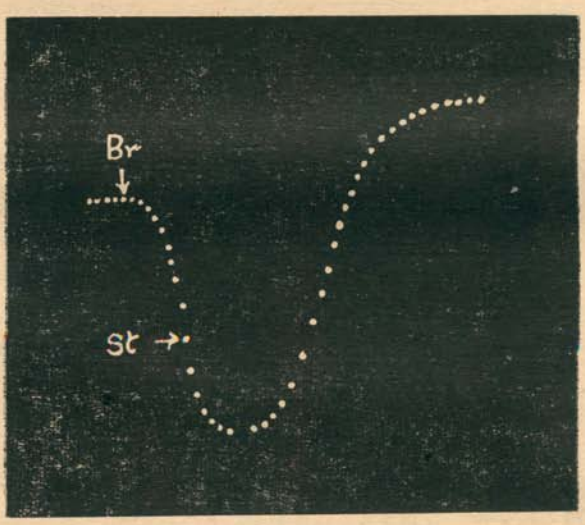

चित्र ७२—रसायन प्रावसादक और उद्दीपना द्वारा रस के आरोह का क्रमिक रोध और वृद्धि।

के कटे हुए भाग को उद्दीपना या निम्नन द्वारा या शीतल अथवा ऊष्म जल से उपयुक्त क्रियाशील कराया जा सकता है। वनस्पति या प्राणी में नोदक (Propulsive) यन्त्ररचना की समान क्रिया के प्रदर्शन के लिए मैं उद्दीपक या निम्नन के विपरीत प्रभावों का एक विस्तृत विवरण दूंगा। पर्ण एक संतुलित क्षैतिज स्थिति में था। पोटैसियम ब्रोमाइड (Potassium Bromide) के घोल द्वारा अवनमन इतना अधिक हुआ कि पर्ण द्रुत गति से गिर गया। कपूर की, जो उद्दीपक है,

एक लघु मात्रा के प्रभाव द्वारा गिरना रुक गया और इसके पश्चात् पर्ण उठने लगा (चित्र ७२)। इसलिए यह अनुमान किया जा सकता है कि पर्ण को रस का मिलना एक स्थिति में घट गया और दूसरी में बढ़ गया। प्रतिकारकों ने उन कोशिकाओं को अवश्य प्रभावित किया होगा जिनके द्वारा रस का मिलना सम्भव है।

शुष्कता का प्रभाव पर्ण के गिरने से प्रदर्शित हुआ। यहाँ भी संभवतः संचालक कोशिकाओं के तरल-स्थैतिक दाब के घटने से रस-उत्कर्ष में अवश्य बाधा हुई होगी। रस-उत्कर्ष की गति के क्रमिक उतार-चढ़ाव पर शीतल और उष्ण जल के प्रभाव को अभिलेख में स्पष्ट प्रदर्शित किया गया है (चित्र ७३)।

ईथर के मिश्रण द्वारा उत्कर्ष की गति में वृद्धि हुई और पर्ण द्रुत गति से उठने लगा। क्लोरोफार्म की क्रिया द्वारा पहले उद्दीपना किन्तु फिर अवनमन का प्रभाव, पर्ण के पहले उठने और बाद में तेजी से गिरने से स्पष्ट प्रदर्शित हुआ।

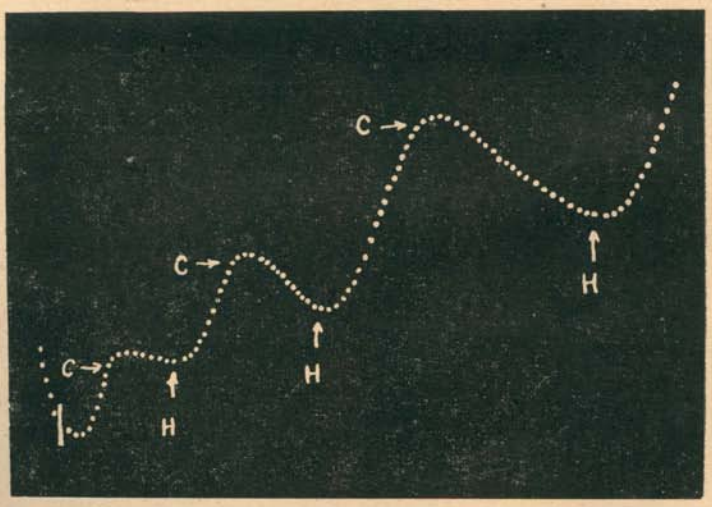

चित्र ७३—आरोह की गति के निम्नन (निम्न मोड़) में (C) शीतलता और वृद्धि (ऊपरी मोड़) में (H) ऊष्मता देने का प्रभाव।

इस अध्याय में सिद्ध किये गये कुछ तथ्यों की संक्षेपावृति कर ली जाय। वनस्पति में विष के प्रयोग से पहले रस-उत्कर्ष का रुकना और फिर स्थायी रूप

से नष्ट हो जाना यह प्रमाणित करता है कि इसका कारण जीवित ऊतक की सक्रियता है । सर्दी और गर्मी में उत्कर्ष का क्रम से रुकना और पुनर्जीवित होना, और हृत्-क्रिया के अवनमन और उद्दीपन द्वारा गति का लाक्षणिक रूप से बढ़ना या घटना आगे दिखाता है कि रस-उत्कर्ष की यन्त्र-रचना, प्राणी और वनस्पति में मूलतः एक ही है। शारीरिक यन्त्र-रचना द्वारा किसी भी प्रकार इन लाक्षणिक अभिक्रियाओं का प्रदर्शन नहीं किया जा सकता था।

●

अध्याय १८

प्रणोदक ऊतक

पिछले अध्याय में वर्णित संपरीक्षणों द्वारा प्रमाणित होता है कि वनस्पति के अन्तर में कहीं कोई सक्रिय ऊतक है जिसका स्पन्दन रस-उत्कर्ष को प्रभावित करता है, ठीक उसी प्रकार जैसे प्राणी में हृत्स्पन्दन रक्त-प्रवाह को बनाये रहता है। इसलिए पौधे में अवश्य आद्य हृदय जैसी कोई चीज होगी; किन्तु उतनी केन्द्रित और विभेदित नहीं जितनी कि उच्चतर प्राणी में। निम्न प्राणियों में और उच्चतर प्राणियों

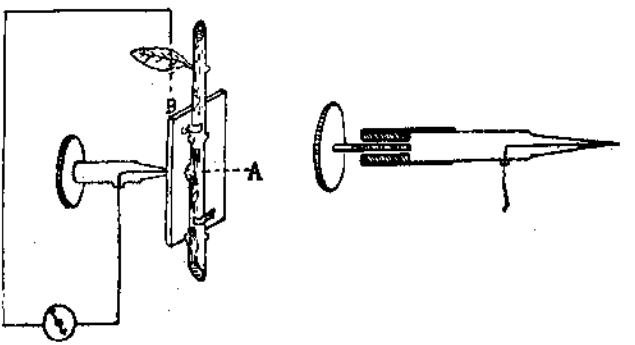

चित्र ७४—स्पन्दित स्तर का स्थान-निर्धारण करने वाली वैद्युत शलाका बिन्दु 'A' पर तने में घुसती है, द्वितीय वैद्युत स्पर्श एक दूर स्थित पर्ण से होता है। दाहिनी ओर का चित्र पौधे के ऊतकों में क्रम से शलाका को ले जाने का सूक्ष्ममापी पेंच सहित बढ़ा हुआ दीर्घ रूप है।

के भ्रूण में हृदय एक लम्बा अंग है। उसका पोषण क्रम-संकोची संकुचन द्वारा संचालित होता है। मैंने पाया कि इसी प्रकार पौधे में भी क्रम-संकोची क्रिया द्वारा रस-उत्कर्ष होता है क्योंकि पौधे की प्रेरक यंत्र-रचना इतनी विभेदित नहीं है जितनी

उच्चतर प्राणियों में है, इसीलिए प्रेरक अंग की तुलना मोटे तौर से लम्बायित हृदय से की जाती है, पौधों की प्रेरणा-प्रणाली की तुलना प्राणियों के हृदय और धमनियों से की जा सकती है।

वनस्पति के हृदय की खोज

तब हृदय कहाँ है? क्या वृक्ष के भीतर रस-उदञ्चन करती हुई सक्रिय कोशिकाओं का स्थान विशेष निर्धारित करना सम्भव है? इस प्रयत्न में हमें जीवन की लघुतम इकाई कोशिका या 'जीवन-अणु' तक पहुँचना होगा और उसके धड़कते हुए स्पन्दन का अभिलेख लेना होगा। कोशिका की स्पन्दित गति अति सूक्ष्मदर्शीय (Ultra-microscopic) होती है और इसका पता लगाना असम्भव है। लेकिन इस समस्या का समाधान मेरी उस वैद्युत खोज द्वारा सम्भव हो गया, जिसका मैंने इसके पहले उपयोग गुरुत्व की उद्दीपना के प्रतिबोधन करने वाले स्तर का पता लगाने के लिए किया था। एक संवेदनशील गैलवनोमीटर के साथ परिपथ में खोज द्वारा 'हृदय' की स्थिति का ज्ञान हुआ। एक विश्राम करती हुई पेशी में जब विद्युत्-स्पर्श होता है, गैलवनोमीटर निश्चल रहता है, किन्तु स्पर्श जब स्पन्दित हृदय से होता है, तब यान्त्रिक स्पन्दनों के साथ विद्युत्-स्पन्दन भी होते हैं। 'हृदय' की स्थिति जानने के लिए मैंने धीरे-धीरे शलाका प्रविष्ट की; जैसे ही इसका स्पन्दित-स्तर से स्पर्श हुआ, विद्युत-संकेत भेजे गये जिनका स्वतः अभिलेख गैलवनोमीटर पर हुआ।

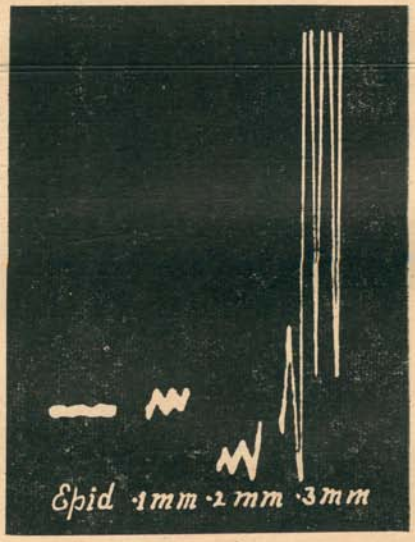

चित्र ७५—भिन्न स्तरों पर वैद्युत स्पन्दन के विस्तार का अभिलेख। तल से ०·३ मि. मी. की दूरी पर अकस्मात् वृद्धि को देखिये, विशिष्ट स्तर आन्तरिक छिलके में है। अभिलेख का एक भाग पट्ट से बाहर चला गया है।

संपरीक्षण इस प्रकार से हुआ---विश्राम करती हुई पेशी, जैसे पर्ण का अधिस्तर, को विद्युत्-स्पर्श कराया गया; दूसरा स्पर्श विद्युत्-शलाका द्वारा (चित्र ७४) स्कंध में ०·१ मिलीमीटर के अन्तर पर तिरछे प्रवेश द्वारा कराया गया। अधिस्तर में कुछ भी स्पन्दन नहीं हुआ। जब शलाका ०·१ की गहराई तक पहुँची, एक मन्द स्पन्दन का आभास हुआ, ०·२ की गहराई तक परिणाम यही रहा। किन्तु जब

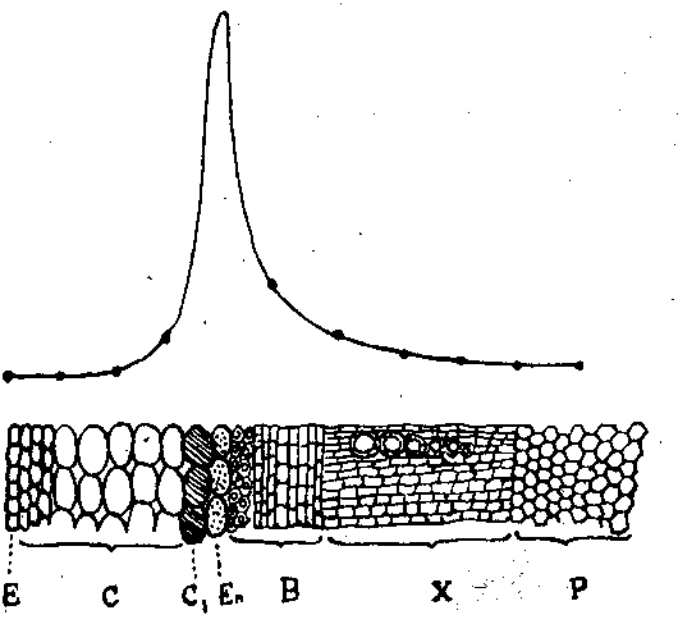

चित्र ७६---राजिका के पर्णवृन्त का एक टुकड़ा (अनुभाग), और विभिन्न ऊतकों की स्पन्दन-क्रिया का मोड़। (E), अधिस्तर; (C), छिलका; (C_1) सक्रिय आन्तरिक छिलके का स्तर; (E_n), अन्तःस्तर; (B), ल्फोएम; (X), दारु; (P), बाह्यक। स्तर (C_1) में सक्रियता की अकस्मात् वृद्धि पर ध्यान दीजिये।

शलाका ०·३ मिलीमीटर तक पहुँची, स्पन्दन अकस्मात् बढ़ गया। यह इतना तीव्र हुआ कि अभिलेखक का एक भाग पट्ट से हट गया (चित्र ७५)। निश्चय ही शलाका का,

स्पन्दित कोशाओं से स्पर्श हो गया था। उसको तने के अन्दर जितना ही अधिक ले जाया गया, स्पन्दन-क्रिया द्रुत गति से अदृश्य हो गयी। जब स्कंध में एक तिरछी काट शलाका के मार्ग में बनायी गयी तो देखा गया कि अधिकतम सक्रियता तब हुई जब शलाका ने तरुण संवहनीय ऊतक (Vascular tissues) से लगे हुए छिलके के आन्तरिक स्तर का स्पर्श किया। काष्ठ के साथ शलाका के स्पर्श से स्पन्दन नहीं हुआ। इससे यह प्रमाणित हुआ कि मृत काष्ठ रस-उत्कर्ष में कोई सक्रिय भाग नहीं लेता। राजिका (Brassica) के पर्णवृन्त के ऊतकों के विभिन्न स्तरों का सम्बन्धित स्पन्दन चित्र ७६ में दिया गया है। इसका मोड़ यह प्रदर्शित करता है कि सक्रियता 'C_1' आन्तरिक छिलके पर अधिकतम है।

चित्र ७७—आम्र वृक्ष के स्पन्दन का अभिलेख।

गैलवनोमीटर से प्रतिबिम्बित सांकेतिक प्रकाश-बिन्दु अपने दाहिने और बायें प्रदोलन की गति द्वारा पौधे की आन्तरिक सक्रिय

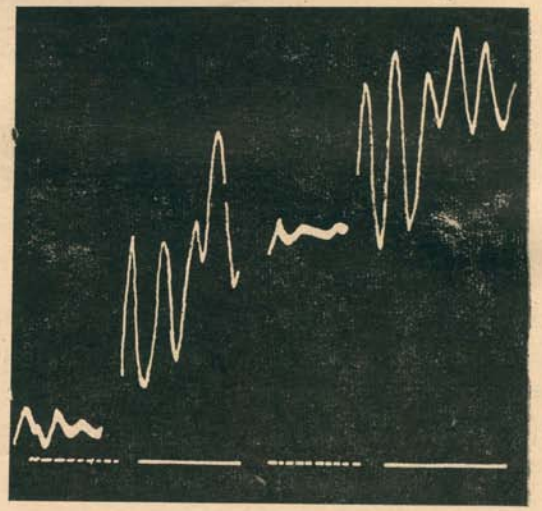

चित्र ७८—क्रमिक शुष्कता और सिंचाई से वैद्युत स्पन्दन के अभिलेख। नीचे बिन्दुमय रेखा शुष्कता की दशा का निरूपण करती है, सतत रेखा ताजी सिंचाई का।

कोशिकाओं के अदृश्य स्पन्दनों को दृश्य बनाता है। चित्र ७७ में आम्र वृक्ष के स्पन्दित स्तर के विद्युत्-स्पन्दनों का अभिलेख है।

हृदय-गति की परीक्षा

इसका क्या प्रमाण है कि ये विद्युत-स्पन्दन यथार्थ में पौधे में हृदय की धड़कन के समान हैं? हृदय की विशेष गति को विभाजित करने के लिए अनेक संपरीक्षण हैं, जिनमें से ये ही यथेष्ट हैं—(१) जब आन्तरिक रक्त-दाब मन्द हो, हृदय का स्पन्दन रुक जाता है, और आन्तरिक दाब की वृद्धि होने पर स्पन्दन पुनः होने लगता है, (२) स्पन्दन, हृदय की अवनमन (Depressed) या उपबल्य (Sub-tonic) दशा में भी रुक जाता है; तब उद्दीपना द्वारा हृत्स्पन्दन का पुनरुन्नयन होता है, (३) क्लोरोफार्म की तरह के निश्चेतक आरम्भ में हृदय को उद्दीपना देते हैं किन्तु दीर्घ निश्चेतना के पश्चात् यह एकदम रुक जाता है और इसके बाद प्राणी की मृत्यु हो जाती है। मैं अब दिखाऊँगा कि वनस्पति की स्पन्दन-अनुक्रिया प्राणी की स्पन्दन-अनुक्रिया के समान होती है।

कम और अधिक दाब के प्रभाव

शुष्कता में रस का दाब बहुत घट जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रेरक स्तर का स्पन्दन रुक जाता है। सींचने के बाद रस के दाब में वृद्धि होती है और रुका हुआ स्पन्दन पुनः होने लगता है। मैं प्रेरक स्तर के विद्युत्-स्पन्दन पर क्रम से, जल का देना बन्द करने और सींचने के प्रभाव को दिखाऊँगा। शुष्कता में स्पन्दन का बार-बार निम्नन और जल देने पर पुनरुन्नयन होता है (चित्र ७८)।

उपबल्य (Sub-tonic) स्थिति का प्रभाव

जब पौधे को चौबीस घंटे के लिए अन्धकार में रखा जाता है, वह इतना उपबल्य हो जाता है कि रस-उत्कर्ष को बनाये नहीं रह सकता। प्रकाश या विद्युत्-आघात द्वारा उत्कर्ष का पुनरुन्नयन होता है। इस परिवर्तन का आधारभूत कारण क्या हो सकता है? विद्युत्-स्पन्दनों के अभिलेख इसको स्पष्ट करते हैं। इनसे विदित होता है कि जब दीर्घ अन्धकार द्वारा स्पन्दन प्रायः रुक जाता है, तब विद्युत्-आघात या प्रकाश की उद्दीपना द्वारा धड़कन पुनः होने लगती है और उद्दीपना के बन्द होते ही फिर रुक जाती है (चित्र ७९)।

निश्चेतकों का प्रभाव

यह स्पष्ट कर दिया गया है कि कैसे क्लोरोफार्म अपने प्रयोग की पहली अवस्था में हृदय की क्रिया को बढ़ा देता है और इसकी सतत क्रिया किस प्रकार उसका निम्नन

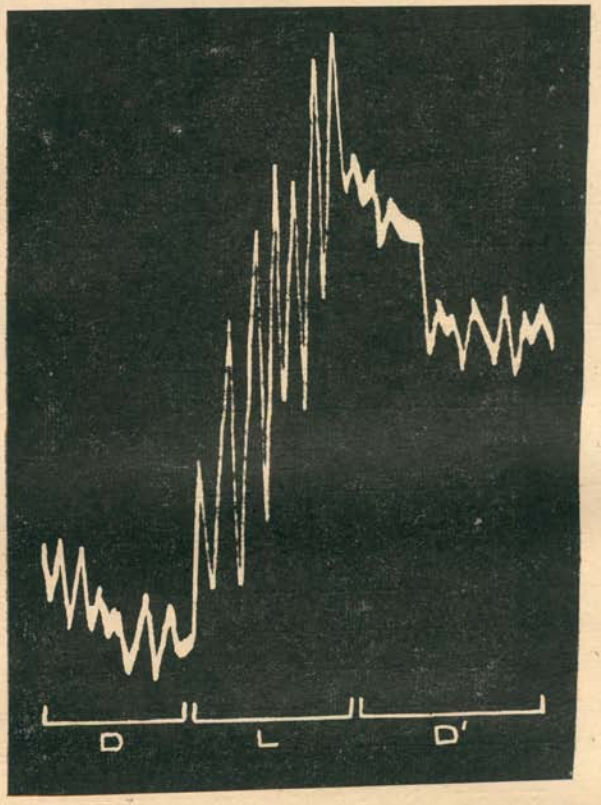

चित्र ७६—उप-बल्य प्रादर्श में वैद्युत स्पन्दन की वृद्धि पर प्रकाश की उद्दीपना का प्रभाव।
(D), अन्धकार में मन्द उद्दीपना; (L), प्रकाश में अधिक उत्तेजना; (D′), पुनः अन्धकार द्वारा निम्नन।

करती है और बाद में उसे रोक देती है। मैंने यह भी देखा कि क्लोरोफार्म के प्रयोग द्वारा रस-उत्कर्ष आरम्भ में तो बढ़ता है, किंतु बाद में घटकर रुक जाता है।

क्लोरोफार्म के प्रयोग द्वारा प्रेरक स्तर के विद्युत्-स्पन्दनों का अभिलेख समानान्तर प्रतिक्रियाएँ बताता है। प्रारम्भिक वृद्धि के बाद स्पन्दन के कम होने और रुकने की क्रिया होती है (चित्र ८०)।

ये परिणाम निश्चित रूप से प्रमाणित करते हैं कि उत्कर्ष प्रेरक स्तर की कोशिकाओं की स्पन्दन-क्रिया द्वारा होता है। यह प्रेरक स्तर वाहिनी-सिलिंडर को घेरे हुए

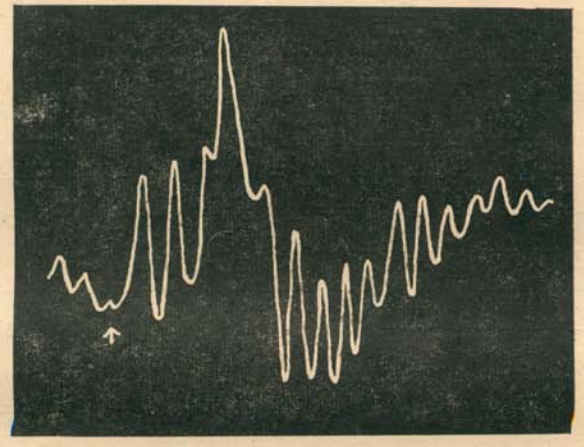

चित्र ८०—तीर पर दिये गये क्लोरोफार्म का स्पन्दन पर प्रभाव। स्पन्दन की प्रारम्भिक वृद्धि लम्बी ऊपरी रेखाओं द्वारा, सतत उद्दीपना द्वारा स्पन्दन स्थगित।

आन्तरिक वल्क (Cortex) है। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिये कि सामान्य स्थितियों में सब जीवित कोशिकाओं में लयबद्ध सक्रियता हो सकती है, फिर भी कुछ कोशिका-स्तर स्वाभाविक रूप से दूसरे स्तरों से अधिक सक्रिय होते हैं और इन्हीं आन्तरिक वल्कों की स्पन्दन-क्रिया द्वारा स्वाभाविक रस-उत्कर्ष बना रहता है।

एक द्विबीज पत्री (Dicotyledonous) वृक्ष का प्रेरक ऊतक सिलिण्डरनुमा (Cylindrical) नली होती है जो इसकी पूरी लम्बाई तक खिंची रहती है। यह सिलिण्डर तरुण वाहक ऊतक को निकट से घेरे रहता है। जैसा पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है, इस लम्बे सिलिण्डर का कार्य, निम्नतर प्राणी के लम्बे हृदय के कार्य के ही समान है, जिसमें रक्त-संचालन क्रमसंकोची तरंगों द्वारा होता है। वनस्पति में रस-उत्कर्ष यथार्थ में इसी प्रकार का क्रमसंकोची होता है जिसमें संकुचन की तरंगें रस को दबाकर आगे बढ़ाती हैं। इस प्रकार की लगातार क्रमसंकोची तरंगें रस का सतत उत्कर्ष बनाये रखती हैं।

स्वाभाविक और विपरीत क्रमसंकोची तरंगें

अब यह प्रश्न उठता है कि क्रमसंकोची तरंगें रस को सदा ऊपर क्यों भेजती हैं? क्या यह सम्भव है कि क्रमसंकोची तरंगों का मार्ग उलट दिया जाय और इसके परिणामस्वरूप रस नीचे की ओर बहने लगे? कौन-सी अवस्थाएँ प्रवाह की दिशा स्थिर करती हैं?

मैंने जो रस-प्रवाह का सामान्य नियम स्थापित किया है, वह यह है कि रस अधिक सक्रिय स्थान से कम सक्रिय स्थान की ओर बहता है। यह तो स्पष्ट है कि यदि अंग के दोनों छोरों पर स्पन्दन-क्रिया समान हो, तो वे परस्पर संतुलन करेंगे और तब इसका परिणाम होगा कि कोई भी दिशासूचक गति नहीं होगी। दोनों छोरों की गतियों की सक्रियता को दो प्रकार से भिन्न किया जा सकता है। पहला भेदीय आशूनता द्वारा, दूसरा भेदीय उद्दीपना द्वारा। अब मैं भेदीय आशूनता और भेदीय उद्दीपना का अर्थ बताऊँगा।

सींचने के बाद जल के प्रचूषण के कारण वृक्ष का निम्न भाग आतत (Tense) और आशून (Turgid) हो जाता है, जब कि ऊपरी भाग में उत्स्वेदित पर्णों द्वारा जल तेजी से उड़ाये जाने के कारण, प्रारम्भिक शुष्कता होती है। अब दिखाया गया है कि प्रेरक कोशिकाओं की लयबद्ध-क्रिया बढ़ी हुई आशूनता द्वारा बढ़ जाती है और शुष्कता द्वारा घटती है। इसलिए रस-उत्कर्ष अधिक आशून और सक्रिय से कम आशून तथा निष्क्रिय स्थान की ओर होता है। इस प्रकार पौधे के विभिन्न भागों की आशूनता को समान करता हुआ रस-प्रवाह आशूनता-प्रवणक (Turgor-gradient) का अनुगामी होता है।

अब मैं यह दिखाऊँगा कि आशूनता-प्रवणक को उलट देने पर रस-प्रवाह की ऊपर की ओर की स्वाभाविक गति को नीचे की ओर कर देना सम्भव है। इस प्रकार यदि गमले के पौधे को सींचा न जाय तो शुष्कता के कारण तना झुक जाता है और मुरझाये पर्ण झुक जाते हैं। सम्पूर्ण पौधे में स्पन्दन-क्रिया रुक जाती है। अब यदि जल से भरा एक गिलास इस प्रकार रखा जाय कि झुके हुए तने का ऊपरी भाग उसमें डूब जाय, तब तने का ऊपरी भाग जल-प्रचूषण करेगा और इस प्रकार निम्न भाग से अधिक आशून हो जायगा। ऊपरी भाग में स्पन्दन-क्रिया पुनर्जीवित हो जायगी; आशूनता-प्रवणक उलट जायगा और रस-प्रवाह स्वाभाविक प्रवाह के विपरीत नीचे की ओर होगा। झुके हुए पर्णों के पुनरुन्नयन द्वारा, जो तने के छोर से नीचे की ओर होता है, यह विपरीत प्रवाह प्रदर्शित है। मैंने रस-उत्कर्ष की स्वाभाविक और विपरीत गति का माप लिया है। इसके परिणाम से ज्ञात होता

है कि विपरीत या अनभ्यस्त दिशा में जाने वाली गति अत्यधिक मन्द है। रक्त-प्रवाह में अग्र-संचालन को कपाटों द्वारा सहायता मिलती है। ये कपाट प्रवाह के एक ओर जाने में सहायक होते हैं, विपरीत दिशा में नहीं। पौधे में कोशीय उदञ्चों (पम्प) के भाग बहुत कुछ इसी प्रकार से स्वाभाविक ऊपरी दिशा में प्रवाह के लिए कार्य करते हैं।

स्वाभाविक अवस्था में मूल कोशिकाएँ मृदा-घर्षण की उद्दीपना द्वारा उत्तेजित होती हैं। संभवतः क्रमसंकोची तरंगों का यही कारण है। सींचने पर निम्न भाग की बढ़ी हुई आशूनता भी रस-संचालन को अधिक सक्रिय स्थान से ऊपर कम सक्रिय स्थान की ओर भेजती है।

काष्ठ का कार्य

शाकीय पौधों में मृदा-जल से पर्णों की दूरी अधिक नहीं होती, किन्तु लम्बे वृक्षों में निकटतर प्रदाय-स्रोत की आवश्यकता होती है, जैसे जल से भरी हुई वाहक नली 'मृदा-विस्तार' के रूप में। ये वाहिनी नलियाँ तरुण काष्ठ-वाहिनियाँ हैं, जो पर्ण के सक्रिय उत्स्वेदन की आपातिक स्थिति में जल की यांत्रिक गति के काम में आती हैं। जब उत्स्वेदन मन्द होता है, छिलके के सहारे स्वाभाविक उत्कर्ष वृक्ष के प्रत्येक अंग को जल पहुँचाता है, पर्ण आशून हो जाते हैं और काष्ठ-वाहिनियाँ रस से पूर्ण। किन्तु सक्रिय उत्स्वेदना में शारीरिक संचालन आवश्यकता को पूरी करने में असमर्थ होता है और जल काष्ठ-संचिति से लिया जाता है। इस प्रकार दो कारक क्रियाशील होते हैं—सक्रिय वल्क-कोशिकाओं द्वारा और उनके सहारे शारीरिक प्रेरण (Propulsion) और काष्ठ या दारु (Xylem) के साथ-साथ दैहिक स्थानान्तरण।

अब हम रस-उत्कर्ष से सम्बन्धित सब आवश्यक क्रिया-विधियों (Processes) का निरूपण करें। प्रचूषण-रत मूल कोशिकाओं को मृदा के यांत्रिक घर्षण द्वारा सतत उद्दीपना मिलती है। इसके द्वारा आन्तरिक वल्क के सक्रिय प्रेरक स्तर के किनारे स्पन्दन की क्रमसंकोची तरंगें होती हैं। इस प्रवाह की दिशा विभेदी आशूनता द्वारा स्थिर होती है। यह निम्न भाग से ऊपरी भाग की ओर अधिक आशून होती है, जबकि ऊपरी भाग पर्णों के द्रुत उत्स्वेदन द्वारा प्रारम्भिक शुष्कता की दशा में रहता है। सक्रिय कोशिकाओं का लयबद्ध संकुचन रस को केवल ऊपर ही नहीं भेजता बल्कि तरुण दारु में भी पार्श्वतः भेजता है। यह दारु आवश्यकता के समय संचयागार का कार्य करता है, और जब उत्स्वेदन सर्वाधिक सक्रिय होता है तब जल यहीं से जाता है।

अध्याय १६

आम्र वृक्ष का रुदन

जब से मैंने फरीदपुर के विख्यात 'प्रार्थना करते हुए' ताड़ की काल्पनिक भक्तिपूर्ण क्रियाओं के निहित कारणों के अनुसन्धान की समाप्ति की, मुझे कई लोगों ने प्रारम्भ में अलौकिक प्रतीत होने वाली घटनाओं का समाधान करने का अनुरोध किया, जिससे मैं असमंजस में पड़ गया। प्रस्तुत मामले की अप्रत्याशित घटना कलकत्ते के एक उपनगर के एक आम्र वृक्ष के सर्वाधिक रुदन से सम्बद्ध है।

यह वृक्ष पूर्ण विकसित है और लम्बाई में लगभग ४० फुट है। इसके तने की परिधि ३८ इंच है और असंख्य पत्तियों से लदी इसकी शाखाओं का विस्तार लगभग १०० वर्गगज के क्षेत्रफल में है (चित्र ८१)। तथाकथित रुदन प्रति दिन ठीक १ बजे अपराह्न में वृक्ष के ऊपरी भाग से बिना किसी प्रकार की प्रकट उत्तेजना के आरम्भ हो जाता है। प्रारम्भ में यह रुदन यथेष्ट रूप से होता है और हर दो सेकेण्ड बाद एक बूंद गिरती है। यह आवेग क्रमशः मन्द होता जाता है और बूंदों के गिरने के बीच का समय २ बजे ५ सेकेण्ड, ३ बजे ८ सेकेण्ड, ४ बजे १५ सेकेण्ड और ५ बजे १५० सेकेण्ड हो जाता है। इसके बाद शेष दिन के लिए रुदन बन्द रहता है। इसी प्रकार यह कार्य प्रति दिन १ बजे आरम्भ होता है और उसी क्रम से चलता है। यह रहस्यमयी घटना अशुभ मानी जाने लगी और आस-पास के मनुष्य भयग्रस्त हो गये। इस रहस्य का समाधान उन्होंने मुझसे पूछा और कहा कि यदि सम्भव हो तो मैं इस वृक्ष के इन दुःखद लक्षणों का उपचार करूं।

प्रथम दृष्टि में ऐसा आभास हुआ कि १ बजे दिन में रस का दाब किसी प्रकार से अकस्मात् बढ़ गया और इस प्रकार वृक्ष के ऊपरी भाग के किसी छेद से रस निकलने लगा।

रस के दाब की घण्टेवार भिन्नता

जब किसी वृक्ष के तने में रस का दाब अत्यधिक होता है, तो उसमें छेद करने से रस निकलता है। इसके विपरीत आन्तरिक दाब बाह्य वातावरण के दाब से कम हो सकता है। तब निकलने की जगह के स्थान पर छिद्र द्वारा जल अन्दर खींचा

जाता है। आन्तरिक दाब के परिवर्तन का चाहे बढ़ना हो या घटना, एक स्वलेखन-दाबमापी को वृक्ष के तने में बाँधकर सतत अभिलेख लिया जा सकता है।

किसी भी समय दाब वृक्ष में जल की सापेक्षिक घट-बढ़ पर निर्भर रहता है। मृदा से जल का प्रचूषण होता है और जैसा कहा जा चुका है, पंप-क्रिया द्वारा तने के

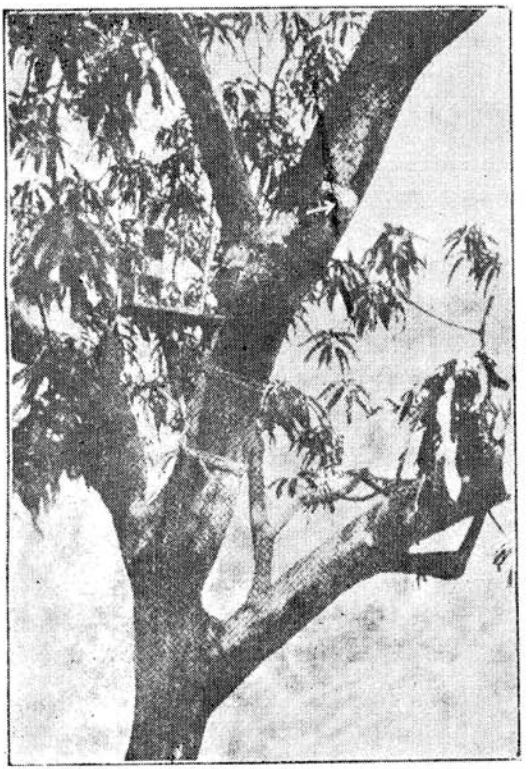

चित्र ८१—'रुदन' करते हुए आम्र वृक्ष का दृश्य। तीर द्वारा चिह्नित छोटे छिद्र के साथ स्राव-दाबमापी वृक्ष से संयुक्त है।

ऊपर तक भेजा जाता है। तापमान की वृद्धि के साथ इसकी सक्रियता की वृद्धि सीमित होती है। मैं अधिकतम तापमान के समय को 'तापीय मध्याह्न' कहूँगा और निम्नतम तापमान के समय को 'तापीय प्रातः'। स्वाभाविक स्थिति में बंगाल में

अधिकतम तापमान प्रायः २ बजे अपराह्न में और निम्नतम प्रायः ६ बजे प्रातः होता है।

पर्ण-रहित वृक्षों में दाब की भिन्नता

बहुत-से वृक्षों के पर्ण शीतकाल में झड़ जाते हैं। इस समय पर्णों के वाष्पोत्सर्जन से जल की हानि नहीं होती। रस के दाब की विभिन्नता परिवर्तित तापमान में प्रचूषण की गति द्वारा निर्धारित होती है। अधिकतम दाब २ बजे तापीय मध्याह्न में और निम्नतम दाब ६ बजे तापीय प्रातः होता है और तने में बनाये गये एक छेद से रस द्रुतगति से बहता है।

पर्णमय वृक्षों में दाब-भिन्नता

अनेक वाष्पोत्सर्जित पर्णों वाले वृक्षों की स्थिति कुछ जटिल होती है। यह सच है कि जल तापीय मध्याह्न में सबसे अधिक तीव्रता से प्रचूषित होता है, किन्तु उसी

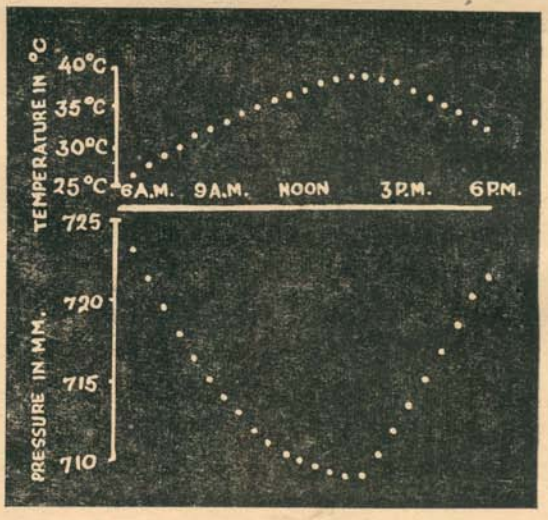

चित्र ८२—वनाम्लिका में दाब की भिन्नता का दैनिक मोड़। ऊपरी मोड़ तापमान की भिन्नता दिखाता है, निम्न मोड़ दाब की भिन्नता। ध्यान दीजिये कि २ बजे अपराह्न तापीय मध्याह्न में दाब निम्नतम था।

समय पर्णों का वाष्पोत्सर्जन भी अधिकतम होता है। सच तो यह है कि लाभ से अधिक

हानि होती है। इसलिए पर्णमय वृक्षों में दाब की दैनिक भिन्नता पर्णविहीन वृक्षों के विपरीत होती है। पर्णमय वृक्षों में अधिकतम तापीय दाब प्रातः और निम्नतम तापीय मध्याह्न में होता है।

चित्र ८२ में ऊपरी मोड़ तापमान की ६ बजे प्रातः से लेकर ६ बजे संध्या तक की भिन्नता दिखाता है। निम्न मोड़ एक पर्णमय वनाम्लिका (Rain-tree) में दाब की भिन्नता दिखाता है। निम्नतम दाब प्रायः दो बजे तापीय मध्याह्न में होता है। दाब-मोड़ तापमान-मोड़ का बिलकुल विपरीत प्रतिबिम्ब दिखता है। मध्याह्न का अधिकतम तापमान निम्नतम आन्तरिक दाब के समान है। इसलिए मध्याह्न में बनाये हुए छेद से जल खिंचता है, निकलता नहीं है।

आम्र वृक्ष से स्राव

आम्र वृक्ष में अधिक वाष्पोत्सर्जित पत्तों के होने के कारण आन्तरिक दाब को मध्याह्न में निम्नतम होना चाहिये था। फिर भी उस समय इसका रुदन अथवा स्राव अधिकतम था। वृक्ष का अधिक निकट से निरीक्षण करने पर ज्ञात हुआ कि उसके बहुत ऊपर छाल में एक स्थान पर छोटा छेद या रन्ध्र था। यह रन्ध्र प्रायः गोंद से बन्द हो जाता था। फिर १ बजे तीव्र आन्तरिक दाब के कारण रस को बाध्य होकर निकलना पड़ता था। मध्याह्न के लगभग स्राव का अधिकतम होना असंगत था, कारण, इस समय पर्णमय वृक्षों में आन्तरिक दाब निम्नतम रहता है।

इस तथ्य ने मुझे आम्र वृक्ष में दाब की भिन्नता पर अन्वेषण करने को प्रेरित किया। अभिलेखक दाबमापी को रन्ध्र के ठीक व्यासाभिमुख बनाये गये एक छिद्र में लगा दिया गया। जैसी आशा की गयी थी, दाब-भिन्नता मध्याह्न में निम्नतम थी; और बनाये हुए छिद्र से तनिक भी स्राव नहीं हुआ। तब तने के उसी खण्ड में ऐसी क्या भिन्नता थी, जिसके कारण एक पार्श्व के रन्ध्र से सक्रिय स्राव हो रहा था और दूसरी ओर बनाये गये छिद्र से बिलकुल नहीं ?

मैं सतर्कता से रन्ध्र के चारों ओर के वल्क और ऊतक को हटाते हुए अन्वेषण करता रहा। इस अन्वेषण द्वारा एक अनियमित आकार का बड़ा लम्बा छिद्र मिला यह तरुण काष्ठ के सड़कर नीचे गिर जाने से बना था। इस छिद्र का बाह्य भाग एक ऐसा वल्क था जो स्वस्थ अधोवाही और बाह्यक वल्क (Cortex) से बना था। छिद्र की आन्तरिक भित्ति, सार काष्ठ या दृढ़ काष्ठ की बनी होती है। यह काष्ठ रस का असंवाहक है (चित्र ८३)। तने के बायें पार्श्व के छिद्र से पूर्ण रूप से स्राव का न होना और दाहिने पार्श्व के रन्ध्र से अत्यधिक परिवाह का होना, इन दोनों का कारण दोनों पार्श्वों

की बनावट में भिन्नता ही थी, बायीं तरफ रस-काष्ठ (Alburnum) था जब कि दाहिनी तरफ वह नहीं था। सक्रिय बाह्यक छिद्र की भित्ति बनाता है और इसको भरने वाले रस के स्राव का कारण केवल बाह्यक की पार्श्वतः उदञ्चन-क्रिया ही हो सकती है। तापमान के बढ़ने से, जो दो बजे अधिकतम हो जाता है, यह क्रिया धीरे-धीरे बढ़ती है।

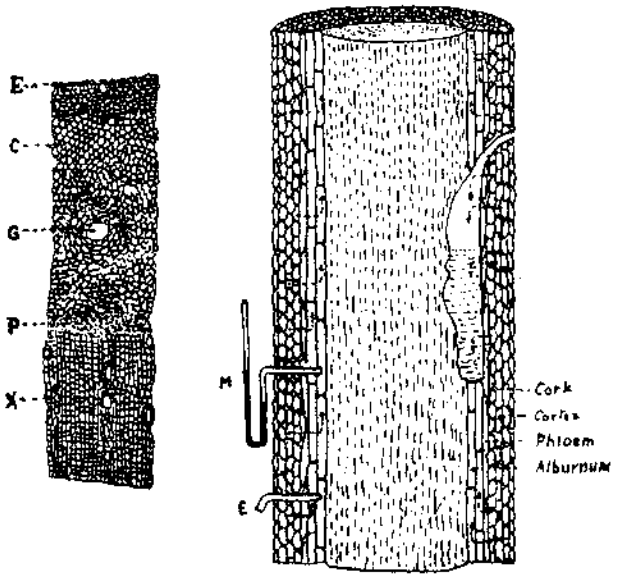

चित्र ८३—आम्र-स्कंध के अनुभाग। बायीं ओर का चित्र एक तरुण स्कंध का प्रवर्धित तिर्यक् टुकड़ा है। (E), अधिस्तर; (C), चौड़ा छिलका; (G), ग्रन्थि; (P), अधोवाही; (X), दारु। दाहिनी ओर का चित्र स्कंध के उस भाग का आरेखीय निरूपण है, जिसमें वह छिद्र है, जहाँ से स्राव होता है। छिलके द्वारा पार्श्वतः रस-उदञ्चन होकर छिद्र में भरता है। बायीं ओर पार्श्वतः अन्तःक्षेपित रस का, रस-काष्ठ द्वारा द्रुत अवशोषण होता है। यह रस-काष्ठ, पर्ण के उत्स्वेदन के कारण ऋण-निपीड़ में है। दाबमापी (M) द्वारा दाब दिया गया है। बनाये गये छिद्र से कोई स्राव नहीं हुआ।

अब हम एक बजे प्रारम्भ होने वाले स्राव को स्पष्ट करेंगे। वृक्ष का आगे निरीक्षण किया गया, जब दिन के अधिक भाग में पत्ते तने पर छाया करते हैं। फिर भी डालों

के मध्य एक खुला भाग था, जिससे सूर्य की पूर्व से पश्चिम की ओर यात्रा में ठीक एक बजे तने के इस स्रावित भाग पर सूर्य का प्रकाश पड़ता था। इस कारण स्थानीय तापमान बढ़ जाता था। इसके परिणामस्वरूप इसके नीचे के वाह्यक की सक्रियता अत्यधिक बढ़ जाती थी और इस कारण जो स्राव बढ़ा उसके द्वारा छिद्र में संचित रस का स्तर द्रुत गति से बढ़ने लगा। दाब की अत्यधिक वृद्धि से बन्द करने वाला डाट निकल गया और अकस्मात् ही रस का परिवाह हुआ। दिन के अन्त में पत्तों से सूर्य छिप गया और तापमान द्रुत गति से गिरने लगा। इससे वृक्ष का स्राव मन्द हो गया और संध्या समय रुक गया।

स्तम्भ की बायीं ओर तरुण काष्ठ या रसदारु निर्विघ्न रहा और वल्क की संचालक कोशिकाओं द्वारा जितना भी जल पार्श्वतः उसमें दिया गया, वह प्रचूषण करता रहा। इस प्रकार बायीं ओर के रन्ध्र में संचय भी नहीं हुआ, न उसका स्राव ही।

अतः 'रुदन' का कारण था छिद्र में पार्श्वतः दिया हुआ रस, और उसका छिद्र से सावधिक परिवाह। छिद्र को नष्ट कर अरक्षित तल पर कोलतार का लेप कर देने पर वृक्ष का स्राव रुक गया।

ऊपर दिये गये परिणाम प्रमाणित करते हैं कि वल्क की संचालन-गति रस को केवल ऊपर संचालित नहीं करती, बल्कि पार्श्वतः भी करती है। इस प्रकार यह संस्पर्शी तरुण वाहिनियों में, जो जलाशय का कार्य करती हैं, रस का प्रवाह करती है। यह भी प्रमाणित होता है कि तरुण काष्ठ यांत्रिक जलप्रवाह के लिए एक जलमार्ग है और जल को अन्तःक्षेपण की शक्ति सक्रिय वल्क द्वारा मिलती है।

अध्याय २०

ताड़ वृक्ष का दोहन

भारत में ताड़ वृक्ष के रस से काफी मात्रा में शक्कर बनायी जाती है।

भारतीय खजूर वृक्ष (Phoenix Sylvestris) ३० से ४० फुट तक बढ़ता है। स्कंध के ऊपरी भाग को काटकर उसमें से एक विशेष प्रकार से रस निकाला जाता है (चित्र ८४)। इस वृक्ष से प्राप्त प्रति दिन के रस की मात्रा कभी-कभी १६ लीटर तक पहुँच जाती है। एक लीटर प्रायः २ पिण्ट के बराबर होता है। यह शक्कर से भरा रस ताजा पिया जाता है, या फिर शक्कर बनाने के काम में आता है। इसको किण्वित (Fermented) कर मादक मदिरा बनायी जाती है।

ग्रन्थ-ताड़ (Borassus flabellifer) से भी शक्कर-युक्त रस निकलता है। यह बहुत ही मन्द गति से बढ़ने वाला वृक्ष है और सौ से अधिक वर्ष तक जीवित रहता है। इसकी फूली हुई शूकी (Spike) अथवा छद-शूकी (Spadix) के कटे हुए भाग से रस निकाला जाता है। यह केवल ग्रीष्म के पहले निकलती है। उच्च ताप-मान में किण्वन अधिक होता है, और रस को अकिण्वित पाने के लिए विशेष साव-धानी की आवश्यकता होती है। संचय-पात्र को साधारण तरीके से साफ करना इस कार्य के लिए यथेष्ट नहीं होता। कलीचूना (Quick-lime) का लेपन कर उसे धो देना ही प्रचलित रीति है। इस प्रकार की पूतिदोषरोधी (Antiseptic) कार्यवाही से पीने के लिए ताजा रस पाने में प्रायः सफलता मिलती है।

एक ही वृक्ष के संपूर्ण जीवन का रस कभी-कभी १,२०,००० लीटर तक हो जाता है। इस रस में शक्कर अधिक मात्रा में रहती है, कभी-कभी १० प्रतिशत तक। शक्कर बनाने के लिए यह एक अति लाभकारी वृक्ष माना जा सकता है, क्योंकि एक ही वृक्ष से उसके संपूर्ण जीवन में १२,००० किलोग्राम तक शक्कर पायी जा सकती है। यह करीब १२ टन के बराबर हुई।

रसोत्पादन में घण्टेवार अन्तर

शक्कर-युक्त रस की गति दिन और रात के सभी समय समान नहीं होती। इसकी भिन्नता बहुत रोचक है। संपरीक्षण के लिए मैंने अवनामी (Tilter) बनाया।

इसके द्वारा संचित रस की निश्चित मात्रा का अभिलेख घंटों और दिनों तक स्वतः होता रहता है। इस अभिलेख-उपकरण को वृक्ष से किसी भी दूरी पर, प्रयोगशाला

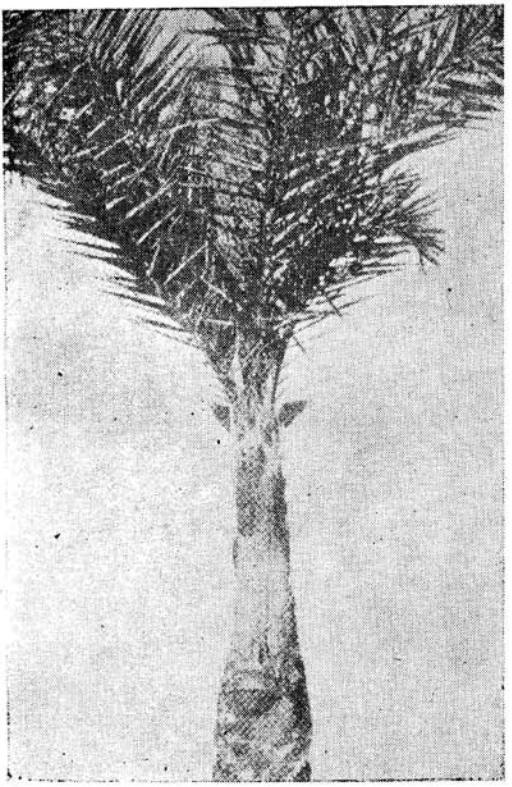

चित्र ८४--सामान्य खजूर। बरतन में रस-संचय के लिए स्कन्ध को छीला गया है।

में रखा जा सकता है। जैसे ही अवनामी का संचय-पात्र भर जाता है, वह उलट कर अपने को रिक्त कर लेता है। यह उलट-पलट प्रत्येक बार एक विद्युत्-परिपथ को पूरा करता है और इस प्रकार एक विद्युत् संकेत अभिलेखक ढोल पर चिह्न अंकित कर देता है।

केवल चिह्नों को गिन लेना ही आवश्यक है, क्योंकि स्राव के अधिक होने पर ये चिह्न अधिक पास-पास होते हैं और जब स्राव कम होता है तब चिह्न दूर-दूर

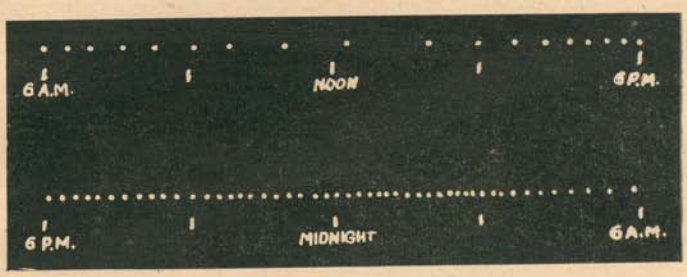

चित्र ८५—सामान्य खजूर का, चौबीस घंटे के रस स्राव के अभिलेख बिन्दुओं का १ बजे अपराह्न के बाद अलग होने और ३ बजे अपराह्न के बाद पास आने पर ध्यान दीजिये।

होते हैं। रस के उत्पादन की गति प्रायः १ बजे अपराह्न में निम्नतम और लगभग २ बजे रात्रि में अधिकतम रहती है (चित्र ८५)। इस प्रकार ज्ञात होता है कि रात्रि में स्राव दिन से कहीं अधिक होता है।

रात्रि में अधिक स्राव होने का कारण

एक विशेष खजूर वृक्ष के उत्पाद का सावधानी से माप लिया गया। इससे ज्ञात हुआ कि इसने ६ बजे प्रातः और ६ बजे संध्या के बीच ७०० घन सेण्टीमीटर रस दिया, जब कि इसके पश्चात् रात्रि के १२ घंटों में २१५० घन सेण्टीमीटर रस दिया, जो तीन गुना अधिक था। इस अन्तर का कारण यह है कि वृक्ष में, पर्णों के वाष्पोत्सर्जन तथा साथ-साथ आहत तल में रस के स्राव से भी जल की हानि होती है। इसलिए अधिकतम वाष्पोत्सर्जन को स्राव का संवादी होना चाहिये तथा इसके विपरीत, रात्रि में वाष्पोत्सर्जन द्वारा हानि मन्द होने से कटे हुए तल का स्राव अपेक्षाकृत अधिक होता है। दूसरी ओर दिन में पर्णों के वाष्पोत्सर्जन द्वारा अत्यधिक हानि होती है, इसलिए रस की प्राप्ति कम होती है।

पुनरावृत्त आघात की आवश्यकता

मैं अब भारतीय खजूर वृक्ष के रस के स्राव का स्पष्टीकरण करूँगा। अनेक वृक्षों में वसंत ऋतु के आरम्भ में पर्णों के खुलने के पहले, अधिक दाब के कारण, रस भरा रहता है। इसलिए जैसे ही छिद्र बनाया जाता है रस स्रवित होने लगता है।

किन्तु ताड़ के स्कंध में छिद्र बनाने पर रस का स्राव नहीं होता। मैंने एक वृक्ष को काटा किन्तु स्कंध के कटे हुए छोरों से एक बूंद भी रस नहीं निकला। स्कंध के आन्तरिक ऊतकों के टुकड़े लेकर देखे गये, वे पूर्ण शुष्क थे और अत्यन्त कठिनाई से बहुत निचोड़ने पर थोड़ी-सी मात्रा में रस निकला। इस संपरीक्षण द्वारा यह प्रमाणित हुआ कि आहत स्थान से स्राव होने का कारण जड़ का दाब नहीं है। इस विषय में यह स्मरण रखना चाहिये कि खजूर शुष्क भूमि में और मरुभूमि में भी उत्पन्न होता है, इसलिए आवश्यकता उसे अल्प और अनिश्चित जल-प्राप्ति का पूरा-पूरा उपयोग करने के लिए बाध्य करती है। वृक्ष यथेष्ट दूरी तक एक सहस्र से अधिक जड़ें फैलाता है। प्रत्येक जड़ अँगुलियों के समान स्थूल होती है। मैंने इन जड़ों का प्रायः १० फुट तक अनुगमन किया किन्तु अन्त नहीं मिला। इस प्रकार वृक्ष के स्कंध को बृहत् और विस्तृत जड़-प्रणाली द्वारा धीरे-धीरे जल प्राप्त होता है और वृक्ष के स्कंध में रस दृढ़तापूर्वक रुका रहता है।

जैसा पहले कहा जा चुका है, ताड़ के स्कंध में छेद करने से रस की एक बूंद भी नहीं निकलती। फिर किस प्रकार इसे अपनी सचित राशि देने के लिए बाध्य किया जाता है? यह तथ्य कि स्कंध के ऊपरी भाग में उदग्र टुकड़े काटने पर भी स्राव नहीं होता, ताड़ के आहत तल की स्वाभाविक निष्क्रियता को प्रकट करता है। प्रायः एक सप्ताह तक लगातार छीलने पर ही रस का स्राव प्रारम्भ होता है।

इन तथ्यों का स्पष्टीकरण क्या है? पहले ही एक अध्याय में दिखाया गया है कि जीवित ऊतक को उचित उद्दीपना द्वारा निष्क्रिय से बहुमुख सक्रिय बनाया जा सकता है। स्वभावतः एक अति निष्क्रिय ऊतक को सक्रिय बनाने के लिए अत्यधिक तीव्र उद्दीपना या पुनरावर्ती उद्दीपना की आवश्यकता होगी। इसके सम्मिलित प्रभाव से ही वह प्रभावित होगा। ताड़ को स्राव के लिए बाध्य करने के लिए तीव्र आघात-उद्दीपना का प्रत्यावर्तन कई दिन तक लगातार करना पड़ता है।

दोहन-क्रिया

ग्राम्य-ताड़ में, जिसमें रस फूली हुई शूकी या छद-शूकी से निकलता है, बाध्य करने की विधि कुछ भिन्न होती है। जब छद-शूकी (Spadix) का अग्र भाग काटा जाता है, स्राव नहीं होता। वह तभी होता है जब पुष्पक्रम को कई दिन तक विशेष विधि से साधित किया जाय। इस कार्य के लिए भिन्न-भिन्न देशों में दो प्रकार की विभिन्न विधियाँ काम में लायी गयी हैं, जिनके लिए उपयुक्त शब्द 'टक्कर मारना' और 'दोहन' करना ही हो सकते हैं। यह बछड़े की उस क्रिया के सदृश ही है जिससे वह गाय को दूध देने के लिए बाध्य करता है।

मलय (Malaya) देशवासी फूली हुई शूकी को प्रायः एक सप्ताह तक काठ की मुँगरी से पीटते हैं, उसके बाद एक कटे हुए छिद्र से शक्कर-युक्त रस निकलता है। भारत में प्रचलित प्रणाली कदाचित् अधिक कोमल है। लम्बी छद-शूकी को अँगुलियों के बीच में रखकर ऊपर से नीचे की ओर गूँधा जाता है, ठीक उसी प्रकार जैसे गाय का दूध निकाला जाता है। यह दोहन-विधि एक सप्ताह तक प्रति दिन होती है। इसके पश्चात् उसका अग्रभाग काटने पर काफी मात्रा में रस निकलता है। प्रारम्भ में मुँगरी से मारना 'सिर को टक्कर' के समान है और 'गूँधना' दूध निकालने के समान।

ताड़ के पूर्व निष्क्रिय ऊतक से रस के स्राव के लिए जो प्रणाली काम में लायी जाती है, वह भी मूलतः इसी प्रकार की है। दोनों का ध्येय एक समान है, यानी उद्दीपना के प्रत्यावर्ती उपयोग द्वारा सुषुप्त सक्रियता को जाग्रत करना, जो लगातार काटने-मारने या लगातार गूँधने से भी हो सकता है। इस क्रिया द्वारा निष्क्रिय ऊतक-ग्रन्थि ऊतक के ही समान सक्रिय हो जाती है और इस प्रकार आन्तरिक दाब की अनुपस्थिति में भी रस का स्राव होता रहता है।

अध्याय २१

प्राणी और वनस्पति पर ऐलकालायड और नाग-विष की क्रिया

जैसा पहले एक अध्याय में स्पष्ट किया जा चुका है, विद्युत्-प्रणाली द्वारा मैं यह प्रमाणित करने में सफल हुआ कि प्रेरक ऊतक पौधे की पूरी लम्बाई में होता है और रस-स्राव एक ऐसे यंत्र द्वारा होता है जो प्राणी के रक्त-प्रवाह यंत्र के समान होता है। जैसा पहले ही स्पष्ट कर दिया गया है, पौधे में इस ऊतक का लयबद्ध स्पन्दन केवल संवादी स्पन्दनों द्वारा ही देखा गया।

रस-प्रवाह की जो वाहिका है, उसे धमनी मान लिया जाय, जिसकी धड़कन क्रिया ही नाड़ी-स्पन्दन के सदृश है। क्या यह किसी प्रकार सम्भव है कि यथार्थ स्पन्दन का यांत्रिक अभिलेख लिया जा सके। यदि हम ऐसा करने में सफल हो जायँ तो पौधे की स्पन्दन-क्रिया दो पूर्ण स्वतंत्र प्रणाली, विद्युत् और यांत्रिक, द्वारा प्रदर्शित की जा सकती थी।

इससे भी अधिक कठोर परीक्षाएँ हैं जो रस और रक्तप्रवाह की यंत्ररचनाओं की मूल समानता को प्रदर्शित कर सकती हैं। विभिन्न ऐलकालायडों द्वारा प्राणी के स्पन्दन में विशेष प्रकार की अभिक्रियाएँ होती हैं; क्या ये पौधे के स्पन्दन को भी इसी प्रकार प्रभावित करती हैं?

प्राणी के स्पन्दन का अभिलेख

प्राणी के स्पन्दनों का प्रत्यक्ष अभिलेख हृत्स्पन्दन-लेखी (Cardiograph) द्वारा हो सकता है और परोक्ष अभिलेख नाड़ी-लेखी (Sphygmograph) द्वारा हो सकता है। हृत्स्पन्दन-लेखी एक विशेष प्रकार का प्रवर्धन उत्तोलक है जिसकी छोटी बाँह स्पन्दित हृदय से युक्त रहती है और लम्बी बाँह एक गतिमान् धूमित काँच-पट्टपर स्पन्दनों का अभिलेख लेती जाती है। उद्दीपक भेषज द्वारा उद्ञ्चन-क्रिया काफी बढ़ जाती है,

अभिलेख जल्दी-जल्दी आवृत्ति या स्पन्दन का बढ़ा हुआ आयाम दिखाता है। दूसरी ओर अवसादी अभिकारक स्पन्दन की वृद्धि या विपुलता को घटाता है।

धमनियों में हृदयगति का एक संवादी स्पन्दन होता है। हृदय की बढ़ी या घटी हुई क्रिया और इसी कारण रक्त के दाब में परिवर्तन धमनी-स्पन्दन द्वारा दिये गये अभिलेखों से ज्ञात हो सकता है। मनुष्य में कलाई की सतह पर अरीय धमनी रहती है। रुधिरदाब-लेखी द्वारा धमनी में दाब-परिवर्तन का अभिलेख लिया जा सकता है, जिसमें नाड़ी द्वारा चालित प्रवर्धन उत्तोलक की एक शृंखला होती है। यदि धमनी सतह पर होने के स्थान पर अन्य उदासीन ऊतकों के नीचे दब जाती, तो यह स्पष्टतः असम्भव होता।

वनस्पति-अभिमर्श (Feeler)

यह दिखाया गया है कि तने के प्रेरक स्तर के लयबद्ध स्पन्दन द्वारा रस संचालित होता है। किन्तु पौधे की नाड़ी को देखने का मामला ही ऐसा है कि यह प्रयत्न निराशामय दिखेगा। इसका कारण यह है कि प्रत्येक स्पन्दन के विस्तार और संकुचन को देखना अधिक क्षमता वाले सूक्ष्मदर्शी की भी सामर्थ्य के बाहर है, क्योंकि इसका विस्तार प्रायः एक इंच का दस लाखवाँ भाग होगा। सक्रिय कोशिकाएँ पौधे के अन्दर दबी रहती हैं, तब किस प्रकार अदृश्य और अमूर्ति को सुलभ बनाया जाय?

हम रस-स्रोत का अनुगमन करें। जब पौधा तने में रस-उदञ्चन करता है, प्रत्येक स्पन्दन के मार्ग में अत्यल्प विस्तार उपस्थित रहता है। स्पन्दन-तरंग की मन्द गति के पश्चात् तना अपने पूर्व व्यास पर आ जाता है जब तक कि दूसरा स्पन्दन इसे पुनः स्फुरित नहीं करता। स्कन्ध के रसदाब की विभिन्नता का अभिलेख लेना इसलिए कठिन है कि अरीय धमनी के विपरीत संचालक वाहिनी दूसरे ऊतकों के नीचे दबी रहती है और वाहिनी का क्षेत्र तने के पूर्ण क्षेत्र की तुलना में नगण्य है। स्पन्दन-तरंग के कारण अत्यधिक हलके विस्तारण और संकुचन का ज्ञान केवल अत्यधिक परिष्कृत और संवेदनशील वनस्पति-अभिमर्श द्वारा ही हो सकता है।

प्रकाशीय रुधिरदाबलेखी (Optical Sphygmograph)

इस कार्य के लिए प्रकाशीय रुधिरदाबलेखी परम संवेदनशील यंत्र पाया गया। इसमें एक उत्तोलक और एक घूर्णित दर्पण द्वारा मिश्र प्रवर्धन होता है। तने

को दो शलाकाओं के बीच में रखा जाता है; इनमें एक स्थिर और दूसरी गतिमान् होती है। दोनों शलाकाएँ दो 'V' आकार के हाथी-दाँत के टुकड़े लिये रहती हैं, जो तने के दो व्यासाभिमुख बिन्दुओं R और I का स्पर्श करती हैं। गतिमान् उत्तोलक की आलम्ब-शलाका F रत्नभार (Jewel Bearing) पर आधारित रहती है। यह उत्तोलक-शलाका, साही के काँटों (Porcupine Quill) की बनी होती है जिसमें हलकेपन के साथ-साथ असाधारण मात्रा में दृढ़ता होती है। इसकी निष्क्रियता नगण्य होने से यह शीघ्रता से स्पन्दन-गति का अनुगमन करती है। उत्तोलक के

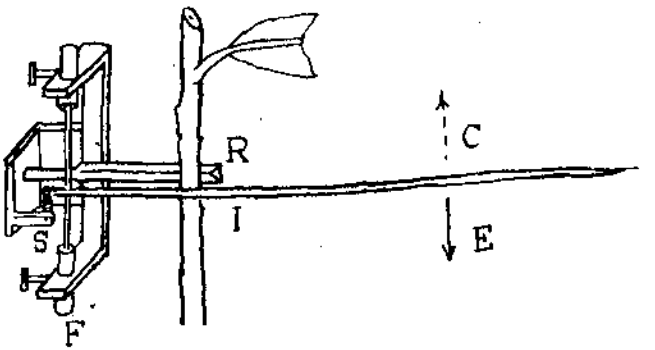

चित्र ८६—वनस्पति हृत्स्पन्दलेखी

तने पर पार्श्वतः दाब का समायोजन 'S' स्प्रिंग द्वारा उसे आगे या पीछे ले जाकर किया जा सकता है। उत्तोलक की लम्बाई प्रायः तीस गुना प्रवर्धन करती है। (चित्र ८६)। किन्तु यह स्पन्दन को गोचर बनाने के लिए अत्यधिक अल्प है। इसलिए इससे भी अधिक प्राकशीय प्रवर्धन की आवश्यकता है। रुधिर-दाब-लेखी उत्तोलक के अग्रभाग में रेशम की पतली डोरी बाँध कर एक पतली उदग्र शलाका को जो ऊपर-नीचे दोनों ओर रत्न-भार पर अवलम्बित रहती है, हम घुमा सकते हैं। डोरी का दूसरा छोर एक पतली सर्पिल कमानी से जुड़ा होता है जिसके द्वारा तने पर पड़ने वाले स्पर्श-दाब का समायोजन हो सकता है। विस्तार के समय स्पन्द-तरंग द्वारा 'L' उत्तोलक की बाह्य गति उदग्र शलाका को दक्षिणावर्त (Clockwise) दिशा में घुमाती है। संकुचन से वामावर्त (Anti-Clockwise) घूर्णन होता है।

इस प्रकार के घूर्णन का एक लघु दर्पण 'M' द्वारा उच्च प्रवर्धन होता है। इस दर्पण द्वारा प्रकाश की किरण एक दूरस्थ परदे पर परावर्तित होती है (चित्र ८७)।

प्रकाशीय रुधिर-दाब-लेखी का समस्त प्रवर्धन दस लाख गुना है जो पौधे के कोष्ठक प्रेरक ऊतक पर विभिन्न ऐलकालायडों, के विशिष्ट प्रभावों को जनसाधारण के सम्मुख प्रदर्शित करने के लिए यथेष्ट है। चित्र ८८ में संपूर्ण यंत्र चित्रित है। विशिष्ट

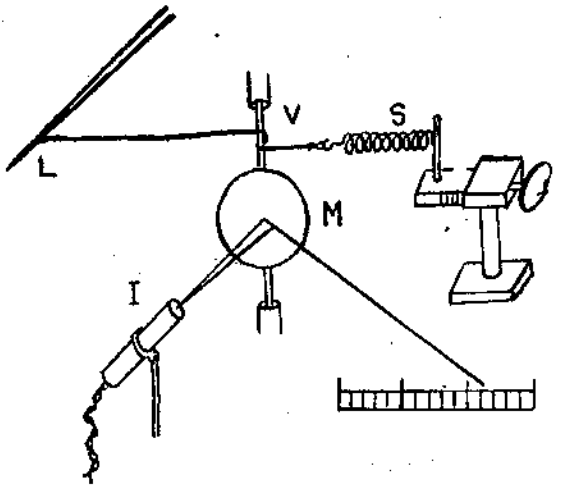

चित्र ८७–हृत्स्पन्द लेखी का प्रकाशीय संयोजन के साथ आरे

प्रयोजक (Applicator) में तीन छोटे-छोटे कटोरे होते हैं। इन तीनों में क्रम से एक उद्दीपक, एक अवसादक और एक विषमय घोल होता है। इसमें से एक या दूसरा द्रुत गति से तने के कटे हुए भाग पर प्रयुक्त किया जा सकता है।

पौधे की प्रत्येक स्पन्द-गति का अभिलेख लेने के लिए इससे भी उच्चतर प्रवर्धन–सौ लाख गुने–की आवश्यकता है। वह मेरे चुम्बकीय रुधिर-दाब-लेखी द्वारा संभव हुआ है।

पौधे की स्वाभाविक अवस्था में औसत दाब स्थिर रहता है। यह रुधिर-दाब-लेखी में लगभग एक क्षैतिज अभिलेख द्वारा प्रदर्शित है। संतुलन की यह स्थिति

गतिशील (Dynamic) है, स्थैतिक नहीं और इसमें एक संतुलन स्थान पर प्रदोलन होता है। लयबद्ध सक्रियता द्वारा विस्तार और संकुचन, स्पन्द अभिलेखों में प्रदर्शित हैं–

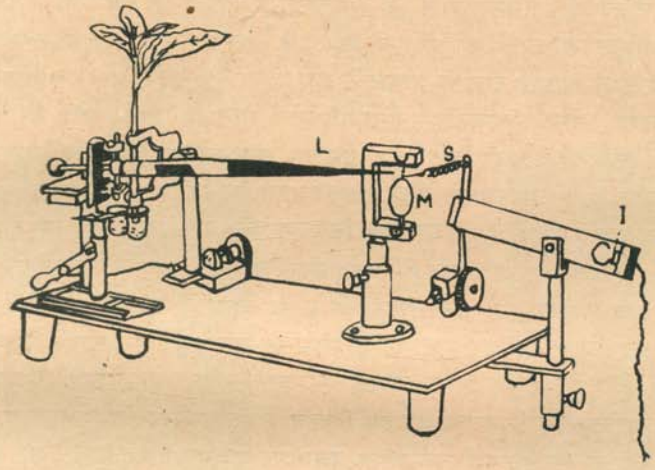

चित्र ८८—सम्पूर्ण कोशिकीय हृत्स्पंदलेखी यंत्र।

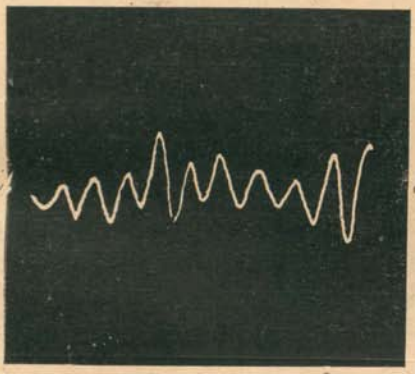

चित्र ८९—कोशिकीय स्पन्दनों का अभिलेख।

ऊपरी मोड़ द्वारा विस्तार और निम्न मोड़ द्वारा संकुचन (चित्र ८९)। ये दोनों ही समान होते हैं। जैसा पहले कहा गया है, इन दोनों स्पन्दनों के बहुत ही सूक्ष्म होने से इनके प्रदर्शन के लिए दस करोड़ गुने अधिक उच्च प्रवर्धक की आवश्यकता है। फिर भी दाब-परिवर्तन के समय इनका प्रदर्शन स्पष्ट होता है।

उद्दीपकों और प्रावसादकों के प्रभाव के अंतर्गत स्पन्द-अभिलेख

जैसा पहले ही कहा गया है, प्राणी में रक्त-दाब उद्दीपक द्वारा बढ़ाया और प्रावसादक द्वारा घटाया जा सकता है। पौधे के साथ समानान्तर संपरीक्षण में कोशीय उदञ्च की यथार्थ क्रिया तथा उत्कर्ष की गति की वृद्धि या निम्नन–जिससे

रस-दाब में परिवर्तन होता है—के सम या विषम आघातों के अवलोकन का भी बड़ा अनूठा अवसर मिलता है। अब ऐसे परिणामों का वर्णन किया जायगा जो इस महत्त्वपूर्ण सामान्यीकरण को प्रतिष्ठापित करता है, कि जो उत्तेजनशील अभिकारक उत्कर्ष की गति को बढ़ाता है वह ऐसा स्पन्दन उत्पन्न कराता है जिसका ऊपरी आघात नीचे के आघात से बड़ा होता है। दूसरी ओर एक प्रावसादक अभिकारक, संघटक स्पन्दनों में ऐसा परिवर्तन करता है जिससे नीचे का आघात ऊपरी आघत से बडा हो जाता है। इसलिए स्पन्द-अभिलेख द्वारा अभिकारक का उद्दीपक या प्रावसादक स्वभाव शीघ्र ज्ञात हो जाता है। इस प्रेक्षण-प्रणाली की संवेदनशीलता अत्यधिक बड़ी है। उदाहरण के लिए एक उद्दीपक अभिकारक के कार्य को लिया जाय। इसका तात्कालिक प्रभाव है—बृहत् ऊपरी आघात के पश्चात् एक दुर्बल निम्नाघात। यह प्रभाव तब तक तीव्रता से बढ़ता जाता है जब तक ऊपरी आघात का विस्तार इतना नहीं बढ़ जाता कि अभिलेख को पट्ट से हटा दे। स्पन्दन की आवृत्ति इतनी बढ़ जाती है कि प्रत्येक स्पन्दन एक-दूसरे में लुप्त हो जाता है। प्रावसादक ठीक विपरीत परिवर्तन करता है। इस विवर्तन में प्रत्येक स्पन्दन के आचरण का परिवर्तन बहुत रोचक है। अभी तक बढ़ता हुआ दाब अब घटने लगता है। कुछ हिचक के बाद निम्न-आघात प्रधान हो जाता है। इस प्रकार के संघटक-स्पन्दनों की एक शृंखला अधोगामी वक्र बनाती है जो दाब के प्रेरित ह्रास को प्रदर्शित करता है।

ऐलकालायडों की विशिष्ट क्रिया

ऐलकालायड प्राणी के हृत्स्पन्द पर विशिष्ट प्रभाव डालते हैं। सुविधा के लिए इन्हें तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—(१) उद्दीपक जो सक्रियता को बढ़ाता है, (२) प्रावसादक जो निष्क्रिय करता है, (३) उद्दीपक प्रावसादक जो लघु मात्रा में उद्दीपन करते हैं और सीमित दीर्घ मात्रा में निम्नन।

प्राणी के हृदय में सक्रियता के परिवर्तनों का पता लगाने के लिए हृत्स्पन्द-लेखी रुधिरदाब-लेखी से अधिक प्रत्यक्ष और संवेदनशील है। किंतु पौधे के हृत्स्पन्द का अभिलेख लेने वाला यंत्र केवल चुम्बकीय रुधिर-दाब-लेखी है। प्राणी और वनस्पति में कतिपय ऐलकालायडों के प्रभावों की समानता निम्नांकित सारणी से प्रदर्शित होगी—

प्रभाव	प्राणी हृत्स्पन्द लेखी	वनस्पति रुधिर-दाब-लेखी
उद्दीपक	वर्धित आवृत्ति	बढ़ा हुआ रस-दाब। स्पन्द का ऊपरी आघात निम्नाघात से बड़ा
प्रावसादक	घटी हुई बारंबारता	घटा हुआ रस-दाब। निम्नाघात, ऊपरी आघात से बड़ा

प्राणी और वनस्पति दोनों ही में (१) ऊतक की बल्य दशा और (२) उपयोग की मात्रा और अवधि से परिणाम में हेरफेर हो जाता है। मैं अभी कुछ सामान्य और विशिष्ट उदाहरणों का वर्णन करूँगा।

सर्पशीर्ष (Ophiocephalus) नामक मछली के हृदय का हृत्स्पन्द-लेख लिया गया। इस मछली का स्वाभाविक स्पन्द काफी लम्बे समय तक समान रहता है। वनस्पति के रुधिर-दाब-लेख लेने के लिए मनोज्ञा (Cosmos), प्रमुण्ड पुष्प (Centaurea) और नास पुष्प (Antirrhinum) का उपयोग किया गया।

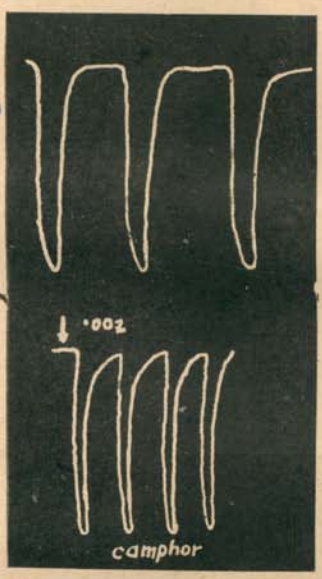

चित्र–९०

चित्र–९१

चित्र ९०––कर्पूर का प्रभाव। ऊपरी अभिलेख हृत्स्पन्द की स्वाभाविक गति दिखाता है। द्रुतगति से नीचे जाने वाली रेखा से हृत्कोची संकुचन द्वारा रस-स्राव का निरूपण होता है; ऊपर जाने वाली रेखा द्वारा सक्रिय हृद् प्रसारण का, क्षैतिज या थोड़ा ऊपर जाने वाली रेखा द्वारा निष्क्रिय हृद् प्रसारण या पूर्व हृत्कोच का जिसकी अवधि भेषजों की क्रिया द्वारा वर्धित होती है, निरूपण होता है। निम्न अभिलेख, हृत्स्पन्द के त्वरण पर कर्पूर की उद्दीपक क्रिया का निरूपण करता है। (मछली का हृदय)

चित्र ९१––वनस्पति पर कर्पूर का प्रभाव; उदञ्चन क्रिया की वृद्धि द्वारा रस-दाब का बढ़ना। प्रत्येक स्पन्द का ऊपरी आघात, निम्नाघात से बड़ा है।

उद्दीपकों का प्रभाव

कर्पूर का मन्द घोल प्राणी के हृदय की सक्रियता बढ़ाता है। उदीप्त प्रभाव उस प्रादर्श द्वारा अधिक सरलता से प्रदर्शित हो जाता है, जो कुछ प्रावसादी अवस्था

चित्र–६२

चित्र–६३

चित्र ६२--निश्चेतक की क्रिया : मछली में हृद्गति का अवनमन।
चित्र ६३—पौधे में रस-दाब का ह्रास।

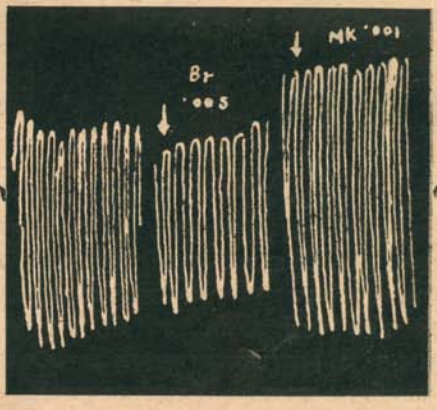

चित्र ६४—प्रथम श्रेणी, स्वाभाविक हृद्गति का अभिलेख है; द्वितीय, पौटैसियम ब्रोमाइड द्वारा अवसाद; और तृतीय, कस्तूरी द्वारा वर्धित सक्रियता।

में हो। यह तो स्पष्ट ही है कि जो हृदय स्वयं ही अधिकतम सक्रियता में है उसकी सक्रियता बढ़ाने की चेष्टा का विशेष प्रभाव नहीं हो सकता। चित्र ९० के ऊपरी अभिलेख में प्राणी-हृदय के स्पन्दन का स्वाभाविक अभिलेख दिखाया गया है। फिर कर्पूर–एक सहस्र में दो भाग–की सुई लगायी गयी। इससे हृत्स्पन्द यथेष्ट द्रुत हो गया जैसा निम्न अभिलेख में है––

चित्र ९१ में कर्पूर का पौधे पर प्रभाव दिखाया गया है। स्पन्दन का प्रारम्भिक विस्तार मन्द था, इसलिए अभिलेख एक क्षैतिज रेखा दिखाता है। कर्पूर के

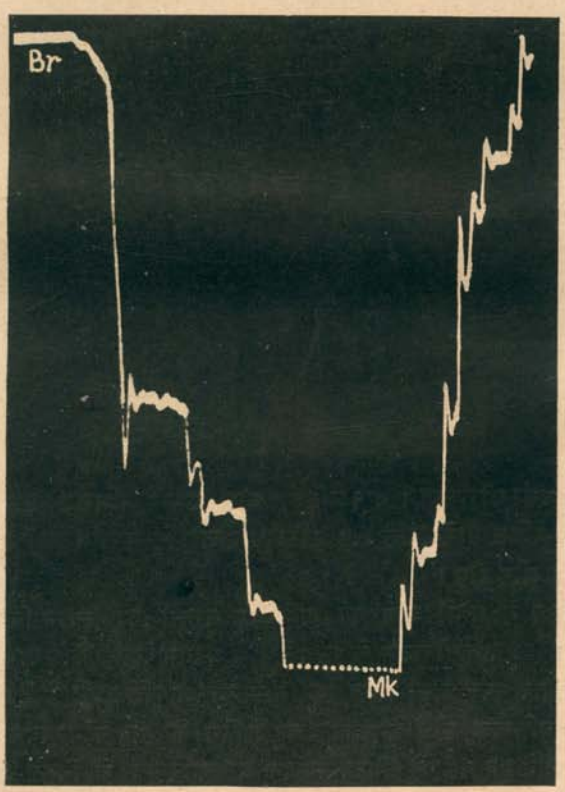

चित्र ९५—रस-दाब के उन्नयन में कस्तूरी का और निम्नन में पोटेसियम ब्रोमाइड का प्रभाव।

मन्द घोल को देने से दाब अकस्मात् बढ़ गया, जैसा ऊपर उठते हुए मोड़ से दिखाया गया है जिसमें संघटक स्पन्दन के ऊपरी आघात, निम्न आघात से बड़े हैं। मुझे अन्य उद्दीपकों, जैसे कस्तूरी का समान परिणाम मिला। बशर्ते कि मात्रा अधिक न हो।

प्रावसादकों की क्रिया

अफीम के सत (Morphine) को एक विशिष्ट प्रावसादक माना जा सकता है।

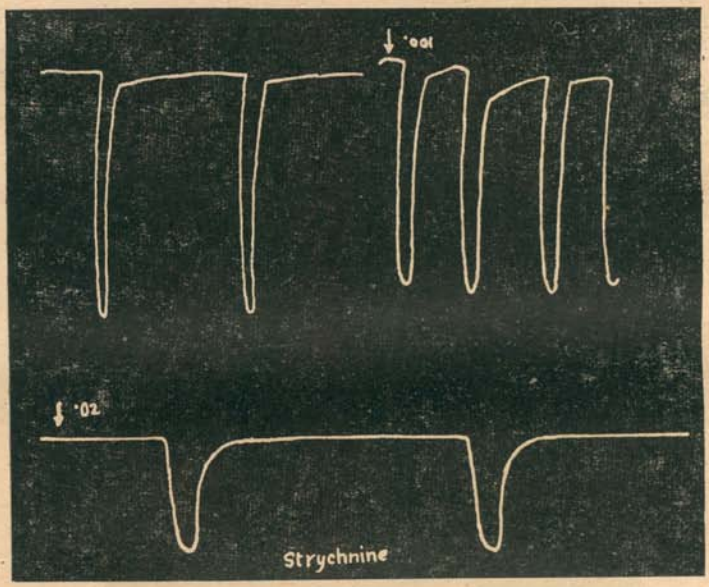

चित्र ६६--कुचला की क्रिया। ०·१ प्रतिशत घोल (ऊपरी अभिलेख) द्वारा हृत्स्पन्दन की वर्धित बारंबारता। २ प्रतिशत घोल (निम्न अभिलेख) द्वारा अवनमन और रोध।

चित्र ६२ में बायीं ओर का अभिलेख मछली का स्वाभाविक हृत्स्पन्द प्रदर्शित करता है। दाहिनी तरफ के अभिलेख में अफीम के सत के प्रभाव के अन्तर्गत अवसाद का द्योतक स्पन्दन का विस्तार और उसकी आवृत्ति प्रदर्शित है।

दूसरा अभिलेख, पौधे के हृत्स्पन्द पर अफीम के सत की प्रावसादक क्रिया का है। नीचे जाते हुए वक्र के संघटक स्पन्दन प्रत्येक स्पन्द के निम्न आघात को ऊपरी आघात से बड़ा दिखाते हैं (चित्र ६३)। अल्कोहल अल्प मात्रा में भी स्पन्द का निम्नन करता है।

विरोधी प्रतिक्रियाएं

अब मैं प्राणी और वनस्पति दोनों पर प्रावसादक और उद्दीपक के क्रमिक (क्रमशः) प्रयोग से प्राप्त आश्चर्यजनक अभिलेखों को उद्धृत करूँगा। मन्द प्रावसादक

के लिए मैंने पोटैसियम ब्रोमाइड का उपयोग किया। चित्र ९४ में अभिलेखों की प्राथमिक शृंखला में स्वाभाविक हृत्स्पन्द दिखाया गया है। पोटैसियम ब्रोमाइड का मिश्रित घोल एक सहस्त्र में पाँच भाग देने के पश्चात् विस्तार और आवृत्ति दोनों में ही अत्यधिक निम्नन हुआ। तब कस्तूरी का घोल, एक सहस्त्र में एक भाग दिया गया। इसने न केवल ब्रोमाइड की प्रावसादक क्रिया को निष्प्रभावित किया, बल्कि सक्रियता को प्रसामान्य से अधिक बढ़ा दिया। पौधे के ऐसे ही मामले में ब्रोमाइड से अत्यधिक अवसाद उत्पन्न हुआ; कस्तूरी के उपयोग द्वारा न केवल अवसाद समाप्त हुआ बल्कि उदञ्चन क्रिया के अत्यधिक बढ़ने से दाब बढ़ गया (चित्र ९५)।

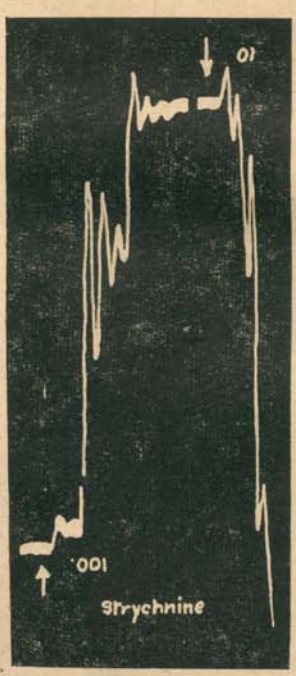

चित्र ९७--कुचला की क्रिया। मन्द मात्रा में रस-निपीड की वृद्धि और तीव्र मात्रा में क्षय।

ऐसी विरोधी प्रतिक्रियाओं का विष और उसके प्रतिकारक की क्रिया द्वारा और भी आश्चर्यजनक प्रदर्शन होता है। इसलिए जब अफीमसत की सतत क्रिया में पौधा मृतप्राय था, जैसा प्रकाश देशना के बिलकुल बायीं ओर हटने से दिखता है, ऐट्रोपीन के प्रयोग से स्पन्दन पुनः होने लगा। प्रकाश-किरण दाहिनी ओर चली गयी। इससे पौधे के पुनर्जीवित होने का पता चलता है।

उद्दीपक-प्रावसादक

कुचला (Strychnine) की एक मात्रा एक सहस्त्र भाग में एक भाग ने हृत्स्पन्द की क्रिया को अत्यधिक बढ़ा दिया; जिससे स्पन्दन की गति द्रुत हो गयी। दूसरी ओर २ प्रतिशत के घोल ने अत्यधिक निम्नन किया और अन्ततः हृत्स्पन्द रुक गया (चित्र ९६)।

कुचला की छोटी और बड़ी मात्रा द्वारा उद्दीपन और निम्नन का समानान्तर प्रभाव हुआ। एक सहस्त्र भाग में एक भाग की मात्रा ने उद्दीपन का कार्य किया, रस-दाब को बढ़ाया किन्तु एक प्रतिशत की मात्रा में अत्यधिक निम्नन और ह्रास हुआ (चित्र ९७)।

काले सर्प के विष की क्रिया

प्राणी पर काले सर्प के विष का प्रभाव अतीव घातक होता है। जब यह विष अधस्त्वक रूप से प्रविष्ट (Injection subcutaneously) होता है, तब ०·००००२ ग्राम जितनी छोटी मात्रा होने पर भी, घातक प्रमाणित होता है। भारत में एक यह विश्वास बहुप्रचलित है कि काले सर्प के काटने पर मनुष्य के मृत होने के सब चिह्न—जैसे श्वास और स्पन्द-गति का रुकना—प्रकट होने पर भी, पुनर्जीवित होने की आशा रहती है। इसीलिए इस प्रकार के मृत शरीर को दूसरे प्रकार के मृत शरीर की तरह जलाते नहीं, बल्कि एक बेड़े पर रखकर नदी में प्रवाहित कर देते हैं।

मैंने प्राणी और वनस्पति दोनों ही पर काले सर्प के विष के प्रभाव का अध्ययन किया। इसके लिए मैंने शुष्क विष काम में लिया जिसके घातक गुण अनेक वर्षों तक अपरिवर्तित रहे।

सर्प-विष की मध्यम मात्रा का प्रभाव

मछली के तीव्रतापूर्वक स्पन्दित हृदय का स्वाभाविक अभिलेख लेने के बाद शिरा में विष के घोल का 0 5 सी. सी., एक सहस्र में एक भाग का इंजेक्शन, दिया

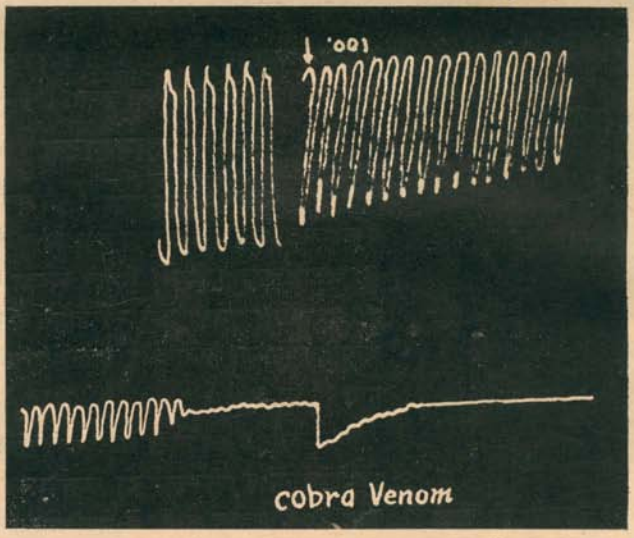

चित्र ९८—काले सर्प का विष : स्वाभाविक हृत्स्पन्दन; १ प्रतिशत विष की मात्रा के घोल द्वारा स्पन्दन की क्षीणता और अन्त में समाप्त, जैसाकि निम्न अभिलेख में दिया गया है। मृत्यु और अग-संकोचन पर ध्यान दीजिये।

गया । स्पन्दन का विस्तार शीघ्र घट गया और बारह मिनट के भीतर ही स्पन्द-गति रुक गयी। इसके थोड़ी देर पहले मछली में एक पेशी संकोच हुआ था जो अभिलेख में नीचे गिरे हुए स्फुरण द्वारा दिखाया गया है (चित्र ९८)।

पौधे में तब एक प्रतिशत विष का घोल दिया गया; इससे पहले अत्यधिक निम्नन हुआ, जैसा नीचे वाले अभिलेख में दिया गया है और इसके थोड़े समय के बाद ही स्पन्द गति सदा के लिए रुक गयी (चित्र ९९)। इसके बाद सूखने और सड़ने से मालूम हुआ कि पौधा मर गया।

हृत्स्पन्दन पर शुचिकावरण का प्रभाव

काले सर्प के विष की अल्प मात्रा, एक सहस्र में एक भाग, ने एक पौधे में सक्रियता को बढ़ाया और रस-उत्कर्ष की गति बढ़े हुए दाब द्वारा प्रदर्शित हुई

चित्र–९९

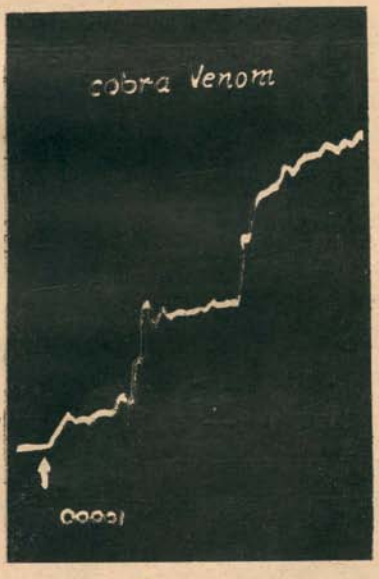

चित्र–१००

चित्र ९९–रस के दाब के क्षय और सक्रियता के नाश पर काले सर्प के विष का प्रभाव।
चित्र १००–रस के दाब की वृद्धि पर काले सर्प के विष के अत्यधिक मिश्रित घोल का प्रभाव।

(चित्र १००)। कई दिन तक कटा हुआ तना इस घोल में रखा गया और यह प्रादर्श प्रबल जीवित दशा में पाया गया।

इसके पश्चात् मैं हृद्-सक्रियता पर काले सर्प के विष की लघु मात्रा के प्रभाव पर अनुसन्धान करने लगा। इस सम्बन्ध में मुझे शुचिकावरण नामक एक भेषज, जिसका मुख्य संघटक, काले सर्प के विष की एक लघु मात्रा है, में रुचि हुई। यह भेषज हिन्दू भेषज-प्रणाली में प्रायः एक सहस्र वर्ष से प्रयोग में लाया जाता है। इसके उपयोग के साथ-साथ अन्वेषकों के लिए एक नयी अध्ययन-शाखा का आविर्भाव हुआ। इन लोगों ने विविध ऐलकालायडों और धात्विक मिश्रणों के भेषजीय पदार्थों का व्यवस्थित अध्ययन किया। अब भी जब रोगी, रोग की अन्तिम दशा में रहता है और उसके हृत्स्पन्द के रुकने से लगभग मृत्यु के मुख में होता है, उस आपातिक स्थिति में शुचिकावरण का उपयोग होता है। ऐसा कहा जाता है कि ऐसी आपातिक स्थिति में हृद्-सक्रियता को पुनर्जीवित करने और बली बनाने के लिए काले सर्प के विष का यह भेषज अत्यधिक प्रभावी होता है।

शुचिकावरण का प्रभाव निम्नन की दशा में प्राणी-हृदय पर क्या होता है, यह देखने के लिए मैंने मछली के कोटर में भेषज के मिश्रित घोल का इंजेक्शन दिया।

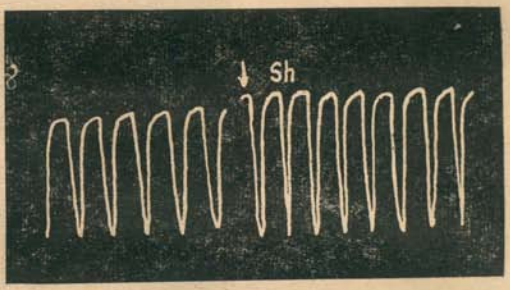

चित्र १०१—हृदय को उद्दीप्त करने में शुचिकावरण का प्रभाव।

इसके द्वारा स्पन्दन के विस्तार और आवृत्ति में एक निश्चित सुधार हुआ। दूसरी स्थितियों में इंजेक्शन के पश्चात् अनियमित स्पन्दन स्पष्ट रूप से नियमित हो गये।

अध्याय २२

कार्बन का परिपाचन

जीवन की निरन्तर सक्रियता के लिए जीव द्वारा पहले से संचित शक्ति के व्यय की आवश्यकता होती है। उदाहरणार्थ रस-उत्कर्ष को लिया जाय। प्रेरक ऊतक की सतत उदञ्जन क्रिया द्वारा अत्यधिक मात्रा में जल यथेष्ट ऊँचाई तक ले जाया जाता है। इस कार्य के लिए शक्ति कार्बनिक रासायनिक पदार्थों के आन्तरिक दहन या श्वसन से मिलती है। शक्ति के ह्रास को पुनः स्थापित करने के लिए बाह्य शक्ति के अवशोषण और संचय की आवश्यकता होती है।

शक्ति की यह प्राप्ति दो प्रकार से बनायी रखी जा सकती है—जीव द्वारा इसका सक्रिय या गतिमूलक अवशोषण अथवा निष्क्रिय, गुप्त या अदृश्य अवशोषण। पहली प्रणाली वनस्पति की विशेषता है और दूसरी प्रणाली प्राणी की। वनस्पति अपने पर्णहरित (Chlorophyll) के कारण सूर्य की गतिक किरणों की शक्ति का अवशोषण करती है; और इस प्रकार वायुमण्डल की कार्बनिक गैस से यह कार्बनिक पदार्थ बनाने में सफल होती है। यह कार्बनिक पदार्थ, मिश्र कार्बन का मिश्रण होता है; जिसमें अवशोषित प्रकाश की शक्ति रासायनिक मिश्रण के रूप में संचित रहती है। इस प्रकार से प्रस्तुत कार्बनिक पदार्थ का कुछ भाग वनस्पति-शरीर की वृद्धि को बनाये रखने और इसकी जीवन-क्रिया का संचालन करने के काम में आता है। बचा हुआ भाग वनस्पति ऊतक में भविष्य की वृद्धि के लिए आरक्षित पदार्थ के रूप में और विशेषतः प्रजनन-कार्य के लिये बीज और फल में संचित रहता है।

इसके विपरीत प्राणी अपनी शक्ति और सामग्री की पूर्ति के लिए पूर्णतः कार्बनिक भोजन पर निर्भर है। यह भोजन प्रारम्भ में हरी वनस्पति से ही बनता है। इस प्रकार प्राणी वनस्पति पर निर्भर है और दोनों सूर्य पर निर्भर हैं; वनस्पति प्रत्यक्ष रूप से और प्राणी परोक्ष रूप से। वस्तुतः सूर्य, जीवित जीव में और सामान्यतः दहन-प्रक्रियाओं में व्याप्त उष्मता, विद्युत्दाह या गति, सब शक्तियों का एक मुख्य

स्रोत है और कोयले की आग के सम्मुख खड़ा होना, उस सूर्य की धूप सेंकना है जो लाखों वर्ष पहले कार्बन युग (Carboniferous Period) में दीप्तिमान था।

इस प्रकार हरे पौधे का कार्बन-आत्मीकरण जिसे आजकल प्रकाश-संश्लेषण (Photosynthesis) कहते हैं, सर्वाधिक सैद्धान्तिक और व्यावहारिक रुचि की वस्तु है जिस पर पूरा अनुसन्धान, विशेषकर इसकी सक्रियता को प्रभावित करने वाली स्थितियों का निश्चय करने के लिये, होना चाहिये। यह प्रकाश-संश्लेषण के समय वनस्पति और वायुमण्डल के बीच गैसीय विनिमय का यथार्थ माप लेकर किया जा सकता है अर्थात् या तो अवशोषित कार्बन-डाइआक्साइड की मात्रा या प्रस्तुत ऑक्सीजन की समान मात्रा। कार्बन डाइआक्साइड के अवशोषण के माप में रासायनिक विश्लेषण की जटिलता है और यह प्रणाली अत्यधिक लम्बी और परिश्रमसाध्य है। ऑक्सीजन के प्रदाय का माप अधिक उत्साहवर्धक है। यथार्थ में मैं इस उद्देश्य को लेकर एक यन्त्र बनाने में सफल भी हुआ हूँ। मैं अब इसका उल्लेख करूँगा।

परिपाचन का स्वतः अभिलेख

जल-पादप को अपना कार्बन जल में मिश्रित कार्बनिक अम्ल से मिलता है। जब सूर्य का प्रकाश इन पौधों पर पड़ता है, कार्बनिक अम्ल गैस में विभाजित हो जाती है और कार्बोहाइड्रेट नामक कार्बनिक यौगिकों के रूप में स्थिर हो जाती है। समान मात्रा में ऑक्सीजन बनता है जो पौधे से बुद्बुद के स्रोत के समान उठता है। ऑक्सीजन के निष्कासन की गति आत्मीकरण की गति बताती है।

इस प्रणाली को व्यवहार में लाने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। मेरे स्वतः अभिलेखक द्वारा ये कठिनाइयाँ समाप्त हुईं। एक जल-पादप का एक टुकड़ा, उदाहरणार्थ, हाइड्रिला वर्टिसिलेटा (Hydrilla Verticillata) को एक ऐसी बोतल में, जिसमें भरे ताल-जल में यथेष्ट कार्बन डाइआक्साइड का घोल हो, रखा जाता है। इस बोतल का मुख एक विशेष बुद्बुद यंत्र, बुद्बुदक से उसकी निष्कासित ऑक्सीजन का माप लेने के लिए बन्द कर दिया जाता है। यह बुद्बुदक एक U नली से बना होता है, जिसका दूर का मुख पारद की एक बूँद द्वारा बन्द कर दिया जाता है। यह पारद, कपाट का कार्य करता है। पौधे से निष्कासित ऑक्सीजन U नली में घुसकर दाब को बढ़ाती है, और अन्त में यह पारद कपाट को उठा देता है और गैस के एक बुदबुद को निकल जाने देता है। फिर तत्काल ही कपाट बन्द हो जाता है, जब तक यह एक बार फिर गैस की समान मात्रा के निकलने के लिए उठाया न जाय। पारद की यह गति एक विद्युत्-परिपथ को पूरा करती है, जो अब या तो एक घंटी बजाती

है या एक विद्युत चुम्बकीय लेखक द्वारा एक घूर्णित ढोल पर अनुक्रम से बिन्दु बनाती है (चित्र १०२)। स्वतः क्रिया की प्रणाली व्यक्तिगत अवलोकन की सब त्रुटियों को दूर करती है। यह इतनी अधिक संवेदनशील होती है कि कार्बोहाइड्रेट के एक ग्राम के दस लाखवें भाग जितने लघु निक्षेप (Deposit) का भी माप लेना सम्भव होता है।

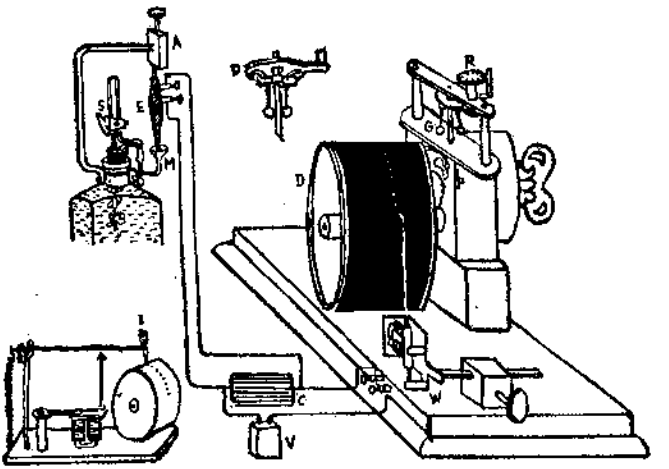

चित्र १०२—प्रकाश-संश्लेषण का स्वतः अभिलेखक।
(S) डाट के साथ बुदबुद यन्त्र; (E), पारद (M) की बूंद से वैद्युत्स्पर्श को पूर्ण करने के लिए पेंसिल; (A) समायोजक पेंच; (V), वोल्टीय सेल; (C) संघनित्र; (D) घूर्णित ढोल; (W), वैद्युत्चुम्बकीय अभिलेखक; (G) प्रेरक, (P) पर पृथक् कब्जेदार लीवर (H) के साथ दिखाया गया; (I), स्याही अभिलेखक। वैद्युत घंटी अदृश्य है।

इस यंत्र की व्यावहारिक क्रिया का चित्रण करने के लिए मैं निम्न उदाहरण दूंगा। यंत्र के साथ पौधा इस प्रकार रखा जाता है कि उसका मुख उत्तर की ओर हो; प्रत्येक बार जब यह अवशोषित कार्बन डाइआक्साइड की समान मात्रा में ऑक्सीजन को निष्कासित करता है तो घंटी बजती है। अब यदि कोई प्रकाश को रोक कर खड़ा हो जाय, परिपाचन मन्द हो जाता है, और घंटी अब देर में बजती है। जब पौधे पर तीव्र प्रकाश फेंका जाता है, घंटी पर क्रमिक आघात द्रुत हो जाते

हैं। पौधा प्रकाश का इतना संवेदनशील खोजी है कि उसे आकाश के प्रकाश की तीव्रता की अल्पतम भिन्नता का पता लगाने के लिये ज्योतिर्मापी (Photometer) के रूप में काम में लाया जा सकता है।

मैं एक ऐसी योजना में सफल हुआ जिसके द्वारा जैसे ही आकाश का प्रकाश किसी गतिमान कोहरे से अवरुद्ध होने के कारण मन्द होता है, पौधा एक विद्युत्बटन को प्रेरित कर बत्ती जलाता है। जैसे ही आकाश स्वच्छ होता है, बटन से बत्ती बुझ जाती है। लन्दन में शीतकाल में यह योजना कार्यशील हो सकती है। इससे भी अधिक रोचक है, विद्युत् चुम्बकीय अभिलेखक का ढोल पर क्रमिक बिन्दुओं के रूप में स्वतः अभिलेख। परिपाचन की गति जब बढ़ती है बिन्दु अधिक पास हो जाते हैं। परिपाचन में गिराव का पता बिन्दुओं के दूर-दूर होने से लगता है।

परिपाचन की घंटेवार भिन्नता

दिन के किस समय पौधा सबसे अधिक तीव्रता से कार्बन. डाइआक्साइड का परिपाचन करता है, इसका निश्चय करने के लिए मैंने ७-३० प्रातः से ५ बजे संध्या तक का प्रत्येक ५ मिनट का क्रमिक अभिलेख लिया। जब सूर्य प्रातः ६-४५ बजे उदय हुआ, प्रकाश प्रभावी होने के लिए अति मन्द था। प्रातः ७-३० बजे परिपाचन प्रारम्भ हुआ और पाँच मिनट में पौधे द्वारा चार बुद्बुद निष्कासित किये गये। जैसे-जैसे दिन बढ़ता गया, यह अधिक भूखा होता गया और १ बजे अपराह्न में इसने प्रातः से चार गुना कार्बन डाइआक्साइड लिया। यह बात कितनी विस्मयकारी है कि हमारे भोजन के समय ही पौधा भी अधिकतम भूखा हो! एक बजे अपराह्न के बढ़े हुए परिपाचन का यथार्थ कारण प्रकाश और तापमान की अनुकूल अवस्थाएँ हैं। अपराह्न में यह सक्रियता घट गयी और अंधकार के आते ही अवरुद्ध हो गयी। (चित्र १०३)।

परिपाचन पर उद्दीपना का प्रभाव

जैसे खाद्य का परिपाचान निश्चय ही एक जीवनावश्यक प्रक्रिया है, वैसे ही अत्यधिक उद्दीपना द्वारा उत्तेजना बहुत ही अहितकर प्रमाणित हो सकती है। इस प्रकार जो पौधा साक्रियतापूर्वक परिपाचान कर रहा था और द्रुतगति से घंटी बजाकर अपनी प्रसन्नता व्यक्त कर रहा था, तीव्र विद्युत् आघात पाकर अकस्मात् ही अवसादित हो गया। यह अपने खाद्य से यथेष्ट समय तक अलग रहा, जैसा कि घंटी के बजने के रुकने से पता लगा। जितनी ही तीव्र उद्दीपना होती है उतनी ही देरी तक परिपाचन रुका रहता है। इससे हमें यह स्पष्ट शिक्षा मिलती है कि भोजन

के पहले हमें कम से कम आधा घंटा विश्राम करना चाहिये। यदि हम तीव्र उत्तेजना में रहते हैं, खाद्य विष में परिवर्तित हो सकता है।

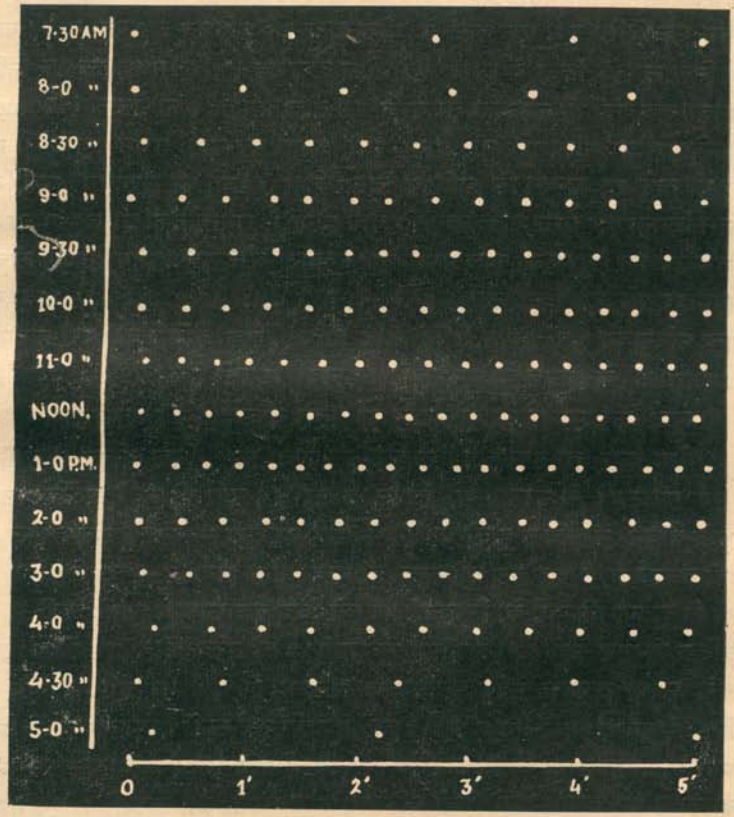

चित्र १०३—दिन के विभिन्न समय पर प्रत्येक ५ मिनट पर क्रमिक बुद्बुदों का स्वतः अभिलेख। प्रातः ७·३० बजे मन्द गति और अपराह्न ४·३० बजे द्रुत गति पर ध्यान दीजिये।

अतिसूक्ष्म रासायनिक पदार्थों का प्रभाव

अपने अनुसन्धान की अवधि में मैंने पता लगाया कि कतिपय रासायनिक पदार्थों की सूक्ष्मतम मात्रा की उपस्थिति ने कार्बन परिपाचन को अत्यधिक बढ़ाया। इसमें जो मिश्रण काम में लाया गया वह बिलियन में एक भाग था (फ्रांसीसी माप

में बिलियन का अर्थ १००० मिलियन होता है)। कतिपय पदार्थों में २ बिलियन में एक भाग ने शतप्रतिशत सक्रियता बढ़ायी। जब घोल की शक्ति एक विशेष मात्रा से अधिक हुई तो सक्रियता घट गयी। गल-ग्रन्थि (Thyroid gland) के मिश्रित निस्सार—एक बिलियन में एक भाग—के घोल द्वारा ७० प्रतिशत सक्रियता बढ़ी। गल-ग्रन्थि निस्सार की क्रिया में ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि मिश्रण की एक निश्चित मात्रा तक कोई भी सक्रियता स्वाभाविक से नीचे नहीं हुई। आयोडीन (Iodine) की तनिक मात्रा का प्रभाव भी प्रायः इसी प्रकार का था। प्रथम दृष्टि में यह सोचा भी नहीं जा सकता कि कतिपय रासायनिक पदार्थों की सूक्ष्मतम मात्रा का जीवन-सक्रियता पर ऐसा शक्तिशाली प्रभाव होगा। रासायनिकों की लघु मात्रा का कार्बन-परिपाचन पर पड़ने वाले प्रभाव का तत्काल और मूर्त प्रदर्शन विशेष रोचक है क्योंकि इससे हमें विटामिनों की पार-माप्य (Ultra-measurable) मात्रा का सामान्य परिपाचन पर प्रभाव, और साथ ही शारीरिक अभिक्रिया पर हारमोन (Hormones) के प्रभाव को समझने में सहायता मिलती है।

सूर्य की ऊर्जा के संचयन में हरे पौधों की प्रवीणता

ऐसा कहा जा सकता है कि आधुनिक काल का आर्थिक जीवन एक सीमा तक सूर्य की ऊर्जा के उपयोग पर निर्भर करता है। सूर्य की ऊर्जा अतीतकाल से वनस्पति-जीवन में संचित होती आयी है। पौधे की शरीर-रचना में संचय करने की कितनी दक्षता है ? अब तक इसे बहुत ही मन्द माना गया है—एक प्रतिशत से भी कम। किन्तु इस निष्कर्ष के लिए जो प्रणाली अब तक काम में लायी गयी है, वह न्यूनाधिक दोषपूर्ण रही है। इसलिए मैंने नयी और संवेदनशील प्रणालियों द्वारा फिर से इसका सावधानीपूर्वक पुनर्निश्चय आरम्भ किया। मेरे चुम्बिक विकिरण-मापी (Magnetic radiometer) द्वारा आपाती सूर्य-ऊर्जा सावधानी से निश्चित की गयी और पौधे द्वारा संचित ऊर्जा का भी यथार्थ माप हुआ। सामान्य रूप से जैसा सोचा जाता था, दक्षता उससे कहीं अधिक ७·४ प्रतिशत तक निकली। एक साधारण वाष्प-इंजन की रूपान्तरण-दक्षता से प्रकाश संश्लेषी अंग (Photo synthetic-organ) की रूपान्तरण-दक्षता की तुलना बहुत रोचक है। वाष्प-इंजन में कोयले की शक्तिशाली ऊर्जा गतिशीलता की गतिक ऊर्जा में रूपान्तरित होती है, दूसरे में विकिरण की गतिक ऊर्जा सम्मिश्र रासायनिक यौगिकों की शक्तिशाली ऊर्जा में। प्रकाश-संश्लेषी अंग की दक्षता वाष्प-इंजन की दक्षता से प्रायः आधी समझनी चाहिये। अन्ततः सूर्य के प्रकाश को संचित करने के लिए पर्णहरित उपकरण (Chlorophyll apparatus) बनाना शायद कोई बहुत अव्यावहारिक प्रस्ताव नहीं होगा।

अध्याय २३

पौधों की तंत्रिका

जब हमारी अँगुली के अग्र भाग को खरोंचा जाता है, एक आवेग होता है जो मस्तिष्क में संवेदना के रूप में प्रतीत होता है। यह सन्देश एक तंत्रिका-तन्तु द्वारा ले जाया जाता है जो आवेग के संवाहन की एक निश्चित वाहिका के रूप में काम करता है। यदि तंत्रिका किसी प्रकार आहत हो जाती है तो संवेदना का अन्त हो जाता है। खरोंच और उसके कारण उत्पन्न संवेदना ऐसा लगता है कि एक साथ होते हैं, किन्तु यथार्थ में प्रेरणा को अँगुली के अग्रभाग से मस्तिष्क तक जाने के लिये कुछ समय लगता है। तंत्रिका-आवेग की गति कुछ इस प्रकार की है कि जिस व्यक्ति पर यह संपरीक्षण किया जाता है उसे जैसे ही अपनी अँगुली पर खरोंच की संवेदना का आभास होता है, वैसे ही वह संकेत भेजता है। खरोंच और संकेत के मध्य का समय हमें तंत्रिका की लम्बाई में आवेग की गति की गणना के लिए समर्थ करता है।

यदि तंत्रिका पेशी में जाकर समाप्त हो जाती है, तो आवेग के आगमन का संकेत पेशी के स्फुरण द्वारा होता है। तंत्रिका-आवेग-विषयक संपरीक्षण प्रायः मेंढक की तंत्रिका और पेशी के एक टुकड़े पर, जो अलग करने पर भी कई घंटे तक जीवित रहती है, किया जाता है। अब यदि तंत्रिका के एक दूरस्थित बिन्दु पर विद्युत आघात किया जाय तो आवेग तंत्रिका में से होता हुआ अन्तिम पेशी तक जायगा। यह अन्तिम पेशी एक अभिलेखक उत्तोलक से संयुक्त रहती है। यह अभिलेख एक घूमते हुए ढोल पर लिया जाता है। इस ढोल पर कालालेखी (Chronograph) द्वारा समय-बिन्दु अंकित होते हैं। आवेग की गति तंत्रिका की लम्बाई और उसके जाने में लगने वाले समय से ज्ञात की जाती है।

प्राणी के तंत्रिका-परिपथ में तीन अलग-अलग भाग गिने जा सकते हैं। पहला है 'संग्राहक' जो बाह्य आघात को लेता है; दूसरा है 'संवाहक' अर्थात् वह नाड़ी जिसके द्वारा दूर तक उत्तेजना ले जायी जाती है, यद्यपि आवेग के जाते समय इस संवाहक ऊतक में कोई दृश्यमान परिवर्तन नहीं होता। अन्त में आवेग अन्तिम अनु-

क्रियाशील अंग पर धक्का देता है। इसे प्रभावी कहेंगे, जो एक पेशी हो सकती है। तब गति द्वारा अनुक्रिया स्पष्ट रूप से व्यक्त होती है।

कुसुमाम (Sea-anemone) जैसे निम्न प्राणी में भी इस तंत्रिका और पेशी-प्रणाली का प्रारम्भ दिखता है। इसमें इसके अंग को उद्दीप्त करने पर दूर के भाग में एक गतिमान प्रतिक्रिया होती है। मध्य भाग में कोई गति नहीं होती। संग्राहक और प्रभावी, एक दूसरे से कुछ दूरी पर रहते हैं और इनका संयोग तंत्रिका द्वारा होता है।

उत्तेजना को इस प्रकार ले जाने की रीति, जिसमें एक बिन्दु में उद्दीपना देने पर कुछ दूरी पर वह गति द्वारा व्यक्त होती है, संवेदनशील लाजवन्ती में जो कुछ होता है, उससे भिन्न नहीं हैं। यहाँ भी एक छोटे पर्णवृन्त में उद्दीपना, यथा विद्युत् आघात देने पर आवेग होता है। यह आवेग पर्णवृन्त पर चलता हुआ इसके गतिमान अंग, पीनाधार तक पहुँचता है। पीनाधार के संकुचन द्वारा पर्ण अकस्मात् गिर जाते हैं। यद्यपि वनस्पति और प्राणी में प्रभाव इतने समान हैं, फिर भी प्रचलित विचार यही है कि वनस्पति और प्राणी में आवेग भिन्न रीति से चलता है।

जल-नली अथवा तंत्रिका

अब हम विचार करें कि किन संपरीक्षक तथ्यों द्वारा इस मत की पुष्टि होती है। फेफर (Pfeffer) ने एक पौधे को उद्दीप्त करने के लिए छुरी से आघात किया। अब देखा जाय कि इस क्रूर व्यवहार का पौधे ने किस प्रकार उत्तर दिया। जब उद्दीपना छुरी का आघात हो तब मनुष्य द्वारा एक विचारशील उत्तर देने की कल्पना कीजिये। वह तो समुचित उत्तर देने के स्थान पर अव्यवस्थित-सा हो जायगा। फेफर ने देखा कि छुरी के आघात से पौधे के व्रण से रस निकलने लगा। उन्होंने कल्पना किया कि पौधे का आशून तना जल से भरी एक रबर की नली है। उन्होंने यह भी सोचा कि रस के निकलने से दाब में अकस्मात् कमी होती है। इस कमी से संवेदनशील पीनाधार में एक खिचाव होता है। यह जल यांत्रिक आवेग नली के जल की गति के ही समान माना जाता है।

रिक्का (Ricca) भी उद्दीपना के लिए छुरी के आघात की रीति पर मुग्ध है। वह कल्पना करते हैं कि काष्ठ पर आघात करने से हारमोन की तरह एक उद्दीपक पदार्थ निकलता है और यह परिकल्पनात्मक हारमोन रस-उत्कर्ष द्वारा पर्ण में पहुँचता है, जिसे वह गति के लिए उद्दीप्त करता है। हारमोन का जो सिद्धांत उसके लेखकों स्टार्लिंग (Storling) और बेलिस (Bayliss) द्वारा प्रस्तुत किया

गया है, यह उसका दुरुपयोग है। इनका हठ था कि दो दूरस्थित अंगों के यातायात की दो प्रणालियों में—पदार्थ के स्थानान्तरण से, और गति के पारेषणद्वारा—आधारभूत भिन्नता है। पहले का उदाहरण है, रासायनिक उद्दीपनाओं के घोल से युक्त तरल-पदार्थों की मन्द गति जैसा पौधे के रस-उत्कर्ष में या प्राणी के रक्त-परिभ्रमण में होता है। दूसरा है, उत्तेजना का एक से दूसरे बिन्दु पर द्रुतगति से संवाहन जो तंत्रिका आवेग के संचरण से सम्बन्धित है। इन दो भिन्न प्रणालियों की तुलना डाक या तार द्वारा सम्पर्क-स्थापन से ठीक ही की गयी है। दोनों गतियों में इतना अधिक अन्तर है कि एक से दूसरे को मिला देना अक्षम्य होगा।

जल-यांत्रिक सिद्धान्त और रस-उत्कर्ष द्वारा हारमोन-यातायात का सिद्धान्त, दोनों इस परिकल्पना पर आधारित हैं कि यांत्रिक बाधा उपस्थित करने के लिए अथवा उद्दीपना के लिए संतापक का निकलना, दोनों ही के लिए आघात की आवश्यकता है। यदि यह प्रमाणित कर दिया जाय कि पौधे में उत्तेजित आवेग मन्द उद्दीपना या बिना आघात के उत्पन्न और संवाहित किया जा सकता है, तो ये सिद्धांत व्यर्थ हो जायेंगे।

पौधा अत्यधिक उत्तेज्य है और एक मन्द उद्दीपना उसमें आवेग का प्रारम्भ करने के लिये यथेष्ट है। उद्दीपना के लिये छुरी से आघात करना इस भ्रान्तिपूर्ण कल्पना के कारण एकमात्र बहाना हो सकता है कि पौधे प्राणी की अपेक्षा बहुत कम संवेदनशील हैं और इसलिए हिंसा द्वारा ही उनको सक्रिय होने के लिए बाध्य किया जा सकता है। यह एक व्यर्थ और अकारण धारणा है क्योंकि जैसा पहले कहा चुका है, मैंने पाया है कि जो विद्युत्-आघात मनुष्य को संवेदित कर सकता है उसकी तीव्रता का दसवां भाग लाजवन्ती को उत्तेजित कर सकता है। कोई घाव नहीं होता, किन्तु फिर भी उत्तेजना का यथेष्ट दूरी तक पारेषण होता है। जल-यांत्रिक और हारमोन-आरोहण के सिद्धान्तों को पूर्णतः निराधार प्रमाणित करने के लिए यह परिणाम ही यथेष्ट है। मैं आगे और दूसरे संपरीक्षणों का भी वर्णन करूँगा, जिनसे ये सिद्धान्त असिद्ध हो जायेंगे।

रस की गति का सिद्धांत

इस सिद्धान्त के अनुसार एक परिकल्पित उद्दीपना आरोही रस के साथ पर्ण तक पहुँचती है। इस प्रकार रस की ही दिशा में आवेग को भी ऊपर जाना चाहिये, न कि विपरीत दिशा में नीचे। आवेग की गति भी रस की गति के समान होनी चाहिये। लाजवन्ती के तने के एक पार्श्व में मैंने एक हल्की खरोंच की और पाया कि

उत्तेजना ऊपर और नीचे दोनों ही ओर साथ-साथ गयी। इससे ऊपर और नीचे दोनों ओर के पर्ण गिर गये। उद्दीपना की तीव्रता बढ़ाने पर उत्तेजना तने के एक पार्श्व

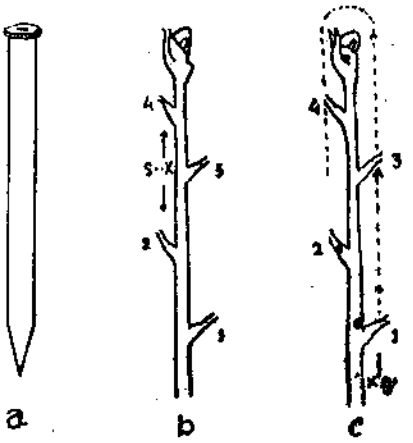

चित्र १०४—एक पार्श्विक खरोंच की उद्दीपना का प्रभाव।
(a) खरोंच-उद्दीपक; (b) मध्यम तीव्रता की उद्दीपना का प्रभाव, (S) उद्दीपना बायीं ओर देने से ऊपर नीचे, दोनों ओर साथ-साथ आवेग होता है; तीव्र उद्दीपना (S′) को दाहिने पार्श्व में देने पर उसका प्रभाव होता है, एक आवेग जो दाहिने पार्श्व पर चढ़ता है और बायें पार्श्व से उतरता है।

से चढ़कर शीर्ष तक पहुँच गयी और तब दूसरे पार्श्व में उतर गयी (चित्र १०४)। रस के आरोहरण का ऐसा लाक्षणिक परिणाम सम्भव न होता। तने के ऊपर और नीचे उत्तेजना के संवाहन का कारण एक विशेष संवाहक ऊतक—तंत्रिका ऊतक—की उपस्थिति ही हो सकती है।

मैंने जो यथार्थ माप लिये, उनसे ज्ञात हुआ कि उत्तेजना के पारेषण की गति, रस-आरोहण की गति से कई सौ गुना द्रुततर है। रस-क्रिया से उत्तेजना के संवाहन का कोई सम्बन्ध नहीं है। इसका एक आश्चर्यजनक प्रदर्शन इस संपरीक्षण से भी होता है—हाइड्रोक्लोरिक एसिड की एक बूँद लाजवन्ती के सबसे ऊपरी पत्ते के अग्र भाग पर डाली गयी। इससे यथेष्ट दूरी तक आवेग हुआ; वह रस-आरोहण के विपरीत दिशा में नीचे की ओर भी गया। इसके पश्चात् रासायनिक परीक्षा द्वारा

यह प्रमाणित हुआ कि उद्दीपना का संवाहन हुआ ही नहीं, और वह जिस बिन्दु पर दिया गया था, वहीं रुक गया।

यह प्रमाणित करने के बाद कि उत्तेजना का पारेषण न जल-यांत्रिक है, न रस की गति के कारण होता है, मैं यह प्रमाणित करने के लिए साक्ष्य उपस्थित करूँगा कि पौधे में संवाहन प्ररसीय उत्तेजना का संचरण है, ठीक उसी प्रकार जैसे प्राणी की उत्तेजित तंत्रिका में होता है।

तंत्रिका-आवेग के लिए परीक्षण

यह स्पष्ट है कि पाइप के भीतर जल की यांत्रिक गति पर गर्मी या सर्दी का एक उचित सीमा तक कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। पाइप को यदि निश्चेत किया जायगा, तो वह अचेत होकर जल के प्रवाह को रोकेगा नहीं और उसके चारों तरफ विष से आप्लुषित पट्टी लपेटने से उसकी संवाहन शक्ति भी नष्ट न होगी। ये अभिकारक तंत्रिका-उत्तेजना के पारेषण को अत्यधिक प्रभावित करेंगे। आवेग का स्वभाव, चाहे वह यांत्रिक हो या तंत्रिका, कतिपय निर्णायक परीक्षाओं द्वारा विभेदित किया जा सकता है।

यदि दैहिक परिवर्तन संवाहन की गति को प्रभावित करता है, तब आवेग तंत्रिका-सम्बन्धी होता है। ऐसे किसी प्रभाव का न होना आवेग के यांत्रिक होने का प्रमाण है।

तंत्रिका-आवेग को घटाना या रोकना विभिन्न दैहिक उपायों द्वारा सम्भव है, किन्तु इनका प्रभाव यांत्रिक आवेग पर नहीं होता। इनमें से कुछ निम्नोक्त हैं—

(१) जब संवाहक ऊतक या तंत्रिका शीतल हो जाती है, आवेग की गति मन्द हो जाती है और अन्त में रुक जाती है।

(२) विषमय घोल द्वारा तंत्रिका की संवाहन शक्ति सदा के लिए विनष्ट हो जाती है।

(३) संवाहन शक्ति कुछ देर के लिए एक बाधा द्वारा रुक सकती है। इस बाधा की उत्पत्ति, जिस तंत्रिका द्वारा आवेग का पारेषण होता है, उसी के एक भाग में विद्युत्-धारा के जाने से होती है। धारा को रोक देने पर यह विद्युत्-बाधा हट जाती है।

आवेग के वेग का माप

ये परीक्षाएँ पहले स्वाभाविक अवस्थाओं में आवेग के वेग का स्वतः निर्धारण करके की जाती हैं और तब उन अन्य अवस्थाओं में, जो प्राणी की तंत्रिका

की उत्तेजना के पारेषण का न्यूनन करती हैं। पर्णवृन्त पर चर पीनाधार से एक निर्दिष्ट दूरी ३० मिलीमीटर पर एक निश्चित तीव्रता का विद्युत्-आघात देकर स्वाभाविक वेग पाया जा सकता है। इसमें उद्दीपना की तीव्रता बाद के संपरीक्षणों में स्थिर बनी रहती है। आघात का समय अभिलेख में एक उदग्र रेखा द्वारा अंकित होता है। प्रतिस्वन-अभिलेखक, थोड़े-थोड़े समय पर, जैसे एक सेकेण्ड के दसवें भाग पर, क्रमिक बिन्दु बनाता है और इस प्रकार उद्दीपना देने और पर्ण की परिणामी गति, जो ऊपर जाने वाले मोड़ द्वारा बतायी जाती है, दोनों के अन्तराल का माप

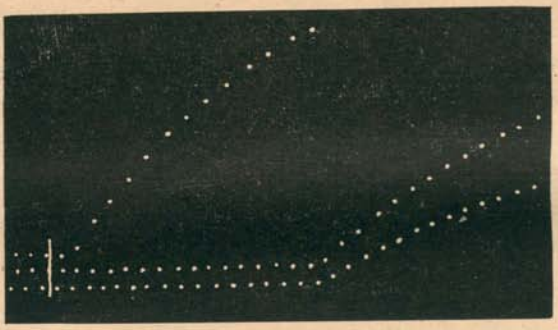

चित्र १०५––लाजवन्ती के पर्णवृन्त में पारेषण के वेग का निश्चयन। दो निम्न अभिलेख ३० मि० मी० पर परोक्ष उद्दीपना की अनुक्रिया के हैं; प्रत्यक्ष उद्दीपना का ऊपरी अभिलेख गुप्त अवधि को बताता है। १० वेग प्रति सेकेण्ड अभिलेखक।

लेता है। उद्दीपना और अनुक्रिया का अन्तराल १६·२ अन्तरों पर दिखता है, इस अन्तर का मान ०·१ सेकेण्ड होता है (चित्र १०५)। सम्पूर्ण अन्तराल इस प्रकार १·६२ सेकण्ड हुआ। इस प्रणाली की विश्वस्तता प्रमाणित करने के लिए दो क्रमिक अभिलेख लिये जाते हैं जो यह प्रमाणित करते हैं कि दोनों ही संपरीक्षणों में स्वाभाविक अवस्थाओं में एक ही समय लगता है। अभिलिखित समय में ही पीनाधार का अदृश्य समय (Latent period) भी होता है। यह अदृश्य समय, मोटर-यंत्र चालू करने में जो समय लगता है, उसे दिखाता है। इस अदृश्य समय की लम्बाई अर्थात् उद्दीपना और अनुक्रिया को अन्तराल पीनाधार को प्रत्यक्ष उद्दीपना देकर निर्दिष्ट किया जाता है। प्रस्तुत घटना में यह ०·१२ सेकेण्ड था और ३० मिलीमीटर की दूरी तक आवेग के पारेषण का वास्तविक समय १·६२–०·१२ सेकेण्ड अथवा

१·५ सेकेण्ड है। अतएव प्रेरणा का वेग ३०/१·५ या २० मिलीमीटर प्रति सेकेण्ड होता है।

उत्तेजना के पारेषण के वेग का यथार्थ न्यूनन पौधे की जीवनीय दशा पर निर्भर है। यह ग्रीष्मकाल में शीतकाल से अधिक होता है। दूसरा अजीब तथ्य जो दिखाई पड़ा, वह यह है कि जब एक स्थूल प्रादर्श की अनुक्रिया मन्द होती है, एक दुर्बल प्रादर्श अति लघु समय में उत्तेजना की पराकाष्ठा तक पहुँच जाता है। मनुष्य-प्रादर्श में भी ऐसी भिन्नता अज्ञात नहीं है। लाजवन्ती के एक दुर्बल पर्णवृन्त में वेग २४००० मिलीमीटर प्रति मिनट या ४०० मिलीमीटर प्रति सेकेण्ड की गति का हो सकता है जब कि लाजवन्ती में आवेग का वेग उच्चतर प्राणियों के वेग से कम है, इसका वेग अदन्त (Anodon) जैसे लघु प्राणियों के वेग से अधिक है। इसलिए पौधे का वेग इन दोनों के मध्य का मानना चाहिये। तापमान के बढ़ने-घटने से लाजवन्ती और प्राणी की तंत्रिका का पारेषण-वेग एक सीमा के भीतर बढ़ता-घटता है। लाजवन्ती में तापमान के प्रायः ९° तक बढ़ने पर वेग दूना हो जाता है।

दैहिक बाधा द्वारा प्रेरणा का रुकना

संरचना के एक विशेष लम्बे भाग को, जिसके बीच से आवेग जाता है, इस प्रकार साधित किया जा सकता है कि इसके मार्ग की गति मन्द या बन्द की जा सके (चित्र १०६)।

शीत से बाधा—पर्णवृन्त के एक भाग का तापमान जब शीतल जल द्वारा कुछ कम किया गया, पारेषण का समय बढ़ गया, जैसा कि अभिलेख में दिखाया गया है। अत्यधिक हिम-शीतल जल द्वारा संवाहन-शक्ति नष्ट हो गयी (चित्र १०७)। यह दिखाने के लिए कि शीतलता के स्थानीय उपयोग द्वारा संवाहन की शक्ति के नष्ट होने से पीनाधार की उत्तेजना में कोई अन्तर नहीं पड़ता, पीनाधार को एक प्रत्यक्ष आघात दिया गया, जिसने स्वाभाविक अनुक्रिया की।

इस विषय के सम्बन्ध में मुझे एक रोचक तथ्य का पता चला जो कड़े शीत की तीव्रता के बाद के प्रभाव के रूप में संवाहन के पक्षाघात से सम्बन्धित है। यह पक्षाघात ऊतक के तापमान के स्वाभाविक हो जाने पर भी प्रायः एक घण्टे तक बना रहा। मनुष्यों में कई प्रकार के पक्षाघात का उपचार विद्युत्-आघात द्वारा होता है और मुझे इस प्रबोधक तथ्य का पता लगा कि पौधे की नष्ट संवाहक शक्ति पर्णवृन्त के पक्षाघात-पीड़ित भाग पर विद्युत्-आघात कर बहुत जल्दी पुनर्जीवित की जा सकती है।

विष द्वारा बाधा--अब मैं संवाहक-शक्ति को सदा के लिए नष्ट करने में विष

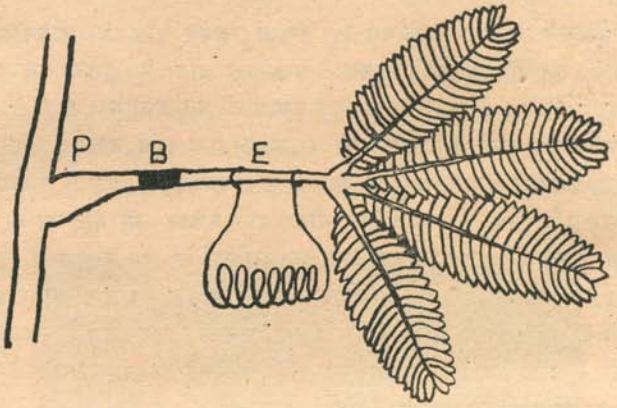

चित्र १०६–संवाहन के मार्ग में विभिन्न दैहिक बाधाएँ (B) पर अन्तःप्रवेशित होती हैं।

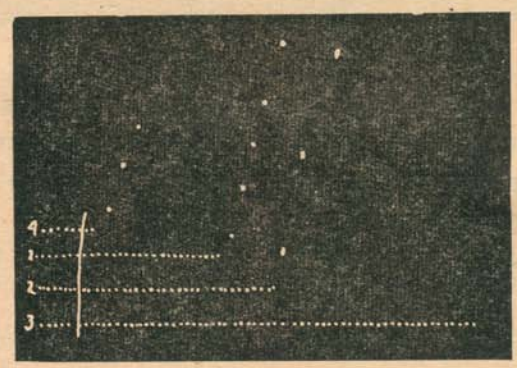

चित्र १०७–पारेषण के विलम्बन और समाप्ति को प्रेरित करने में शीत का प्रभाव। (1) स्वाभाविक अभिलेख; (2) अल्पशीत द्वारा विलम्बन; (3) अतिशीत द्वारा संवाहन की समाप्ति; (4) प्रत्यक्ष उद्दीपना का अभिलेख।

की क्रिया का प्रदर्शन करूँगा। पर्णवृन्त की लम्बाई के मध्य चारों ओर एक आधा

इंच चौड़ा कपड़ा बाँध दिया गया, और पोटैसियम साइनाइड का विषमय घोल उस पर डाला गया। इसका प्रभाव इतना अधिक हुआ कि पाँच मिनट से कम समय में ही संवाहक शक्ति नष्ट हो गयी। आघात की तीव्रता आठ गुनी बढ़ाने पर भी कोई

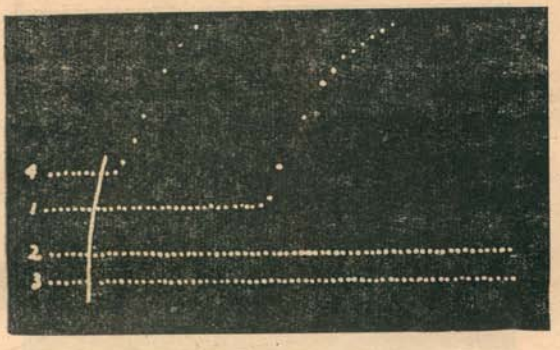

चित्र १०८–पोटैसियम साइनाइड की क्रिया द्वारा संवाहिता की समाप्ति। (1) स्वाभाविक अभिलेख; (2) ५ मिनट की उद्दीपना के बाद संवाहन की समाप्ति; (3) तीव्र उद्दीपना देने पर भी आवेग की समाप्ति का अभिलेख; (4) प्रत्यक्ष उद्दीपना का अभिलेख।

अनुक्रिया नहीं हुई। पीनाधार की प्रत्यक्ष उद्दीपना द्वारा पता चला कि उसकी गतिशीलता में कोई परिवर्तन नहीं हुआ (चित्र १०८)।

एलेक्ट्रानीय (Electronic) बाधा––ऊपर की घटना में संवाहिता सदा के लिए नष्ट हो गयी, प्राणी की तंत्रिका में, जैसा पहले ही कहा गया है, संवाहन-मार्ग में सतत विद्युत्-धारा बनाये रखने पर एक अस्थायी बाधा होती है। जब तक विद्युत्-धारा रहती है बाधा बनी रहती है और बाधा देने वाली धारा के बन्द करते ही संवाहन-शक्ति पुनर्जीवित हो जाती है। लाजवन्ती में भी एक इसी प्रकार का परिणाम हुआ; बाधा 'B' पर रखी गयी और बाद में हटा दी गयी। ऐसा दो बार किया गया और चित्र १०९ के अभिलेख से यह पता चलता है कि जब भी बाधक धारा दी जाती उत्तेजना का पारेषण स्थिर रूप से रुक जाता था और धारा के रोक देने पर पुनः स्थापित हो जाता था।

विद्युत्-धारा द्वारा ध्रुवीय उत्तेजना

मैं अब प्राणी और वनस्पति में उत्तेजना के पारेषण के समान रूप को प्रमाणित करने के लिए निश्चित साक्ष्य प्रस्तुत करूँगा।

यह तो भली-भाँति ज्ञात है कि प्राणी की तंत्रिका पर विद्युत्-धारा का विशिष्ट उत्तेजक प्रभाव होता है। अकस्मात् ही तंत्रिका के बीच से एक धारा भेजने

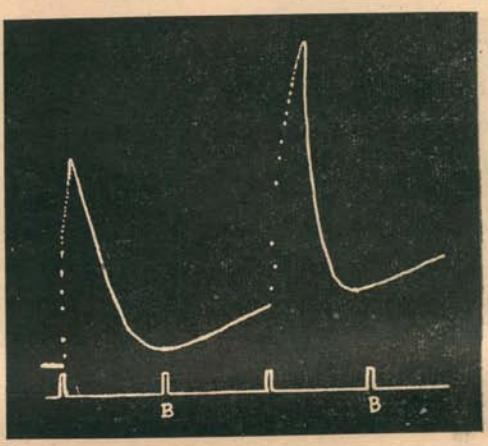

चित्र १०६—पारेषित उत्तेजना, बाधा के साथ, या बाधा रहित का अभिलेख ऐलेक्ट्रानिक बाधा (B) 'B' द्वारा पारेषित उद्दीपना की समाप्ति।

पर उत्तेजना तंत्रिका के उस बिन्दु पर होती है जहाँ ऋणाग्र (Kathode) है, अर्थात् वह स्थान जहाँ धारा ऊतक से पृथक् होती है। अकस्मात् धारा को रोकने पर उत्तेजना स्थानान्तरित होकर धनाग्र (Anode) पर चली जाती है, जहाँ धारा ऊतक में प्रविष्ट होती है। उत्तेजना स्थानीय नहीं होती बल्कि कुछ दूर तक संवाहित होती है, जैसा कि अन्तिम पेशी के संकुचन से ज्ञात होता है। इसी के समान परिणाम लाजवन्ती और दूसरे संवेदनशील पौधों में मिलता है। मैं सामान्य पंक्तिपत्र (चित्र ११०) में प्रेक्षित इन प्रभावों का रेखाचित्र प्रस्तुत करूँगा, बायें चित्र में ऋणाग्र-बिन्दु पर धारा के आरम्भ में उत्तेजना का प्रदर्शन है। यह धारा दोनों दिशाओं में संवाहित हुई। जब पत्तियाँ पुनर्जीवित हुईं, परिपथ (Circuit) भग्न हो गया और उत्तेजना धनाग्र-बिन्दु पर स्थानान्तरित हो गयी।

उत्तेजना, प्राणी और वनस्पति दोनों में ऋणाग्र-निर्माण और धनाग्र-भंग पर दी जाती है और दोनों ही में अत्यधिक शीत, विष के प्रयोग और ऐलेक्ट्रानीय बाधा द्वारा प्रेरणा रुकती है। इसका अनिवार्य निष्कर्ष यह है कि पारेषण-निश्चय दोनों

ही में समान दैहिक विद्या है। प्राणी में यदि इसे तंत्रिका की संज्ञा कह सकते हैं तो

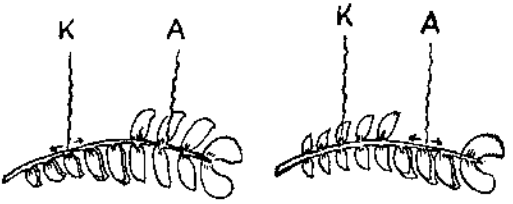

चित्र ११०—बायीं ओर का चित्र ऋणाग्र-आकार पर उत्तेजना को दिखाता है। दाहिनी ओर धनाग्र भंग का प्रभाव (सामान्य पंक्तिपत्र)।

वनस्पति में भी इसे वही संज्ञा देने के लिए प्रचुर प्रमाण मिलेंगे।

अध्याय २४

तंत्रिका का स्थान-निर्धारण

यह निश्चय करके कि वनस्पति में तंत्रिका-संवाहिता (Nervous Conduction) है, अब यह खोजना है कि संवाहक ऊतक कहाँ और क्या है? तंत्रिका से होकर आवेग के गुजरने पर कोई परिवर्तन नहीं दिखता। वस्तुतः हम उसके मार्ग को केवल

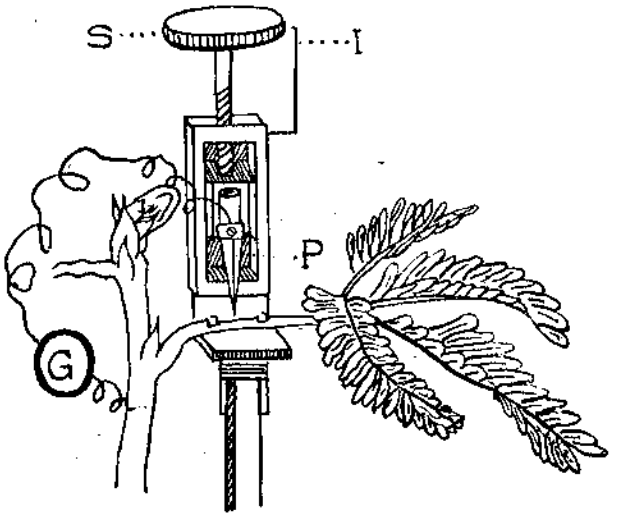

चित्र १११—लाजवन्ती के पर्णवृन्त के तंत्रिका-ऊतक का स्थान-निर्धारण करने वाली वैद्युतशलाका।
(P), शलाका गैलवनोमीटर (G) की परिधि में; (S), पेंच का सिर जिसे घुमाने से शलाका पर्णवृन्त में भेजी जाती है; (I) वेशना, जिसके द्वारा जाने की गहराई का निश्चय होता है।

उसके साथ ऋण वैद्युत परिवर्तन द्वारा ही जान पाते हैं। असंवाही ऊतक में स्थित तंत्रिका एक असंवाही गटापार्चा में भरे हुए विद्युत्-केबुल (Electric cable) की

तरह है। केबुल में केवल एक ही संवाहक हो सकता है, या दो संवाहक हो सकते हैं। हम गैलवनामीटर से उपयुक्त रूप में संयुक्त एक धातविक सुई चुभोकर जाते हुए

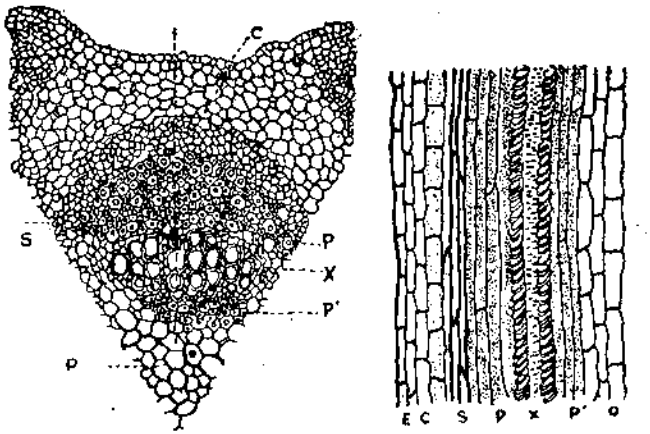

चित्र ११२—एक ही वाहिनी-बंडल के तिर्यक् और क्षैतिज अनुभाग।
बायाँ चित्र—तिर्यक् अनुभाग। बिन्दुमय उदग्र रेखा वैद्युतशलाका का मार्ग दिखाती है।
(C), बाह्यक; (S'), दृढ़ कोशाभित्ति; (P), बाह्य फ्लोएम; (X), दारु; (P'), आन्तरिक फ्लोएम; O, मध्यक।
दाहिना चित्र—बंडल का क्षैतिज अनुभाग। बाह्य और आन्तरिक दोनों फ्लोएम में लम्बित नाल के आकार की कोशिकाओं पर ध्यान दीजिये (अनुभाग बंडल के एक पार्श्व से गया है, मध्य से नहीं।

संवाद को सुन सकते हैं। जब तक सुई संवाहक को नहीं छूती, कोई संवाद नहीं सुना जा सकता; सुई चुभने की दूरी संवाही पट्ट की गहराई बताती है।

इस सिद्धान्त पर काम करता हुआ मैं पिछले अध्यायों में उल्लिखित विद्युत्-शलाका द्वारा तंत्रिका-रहित ऊतक में जमी हुई तंत्रिका का स्थान निर्धारण करने में सफल हुआ। लाजवन्ती के अनुपर्ण-वृन्त के दूरस्थ छोर को समय-समय पर उत्तेजित किया जाता है, और तभी पर्णवृन्त में थोड़े अन्तराल से, जैसे एक बार में ०·०५ मि० मी० पर, शलाका चुभायी जाती है। प्रारम्भ में तंत्रिका-आवेग को बताने वाला कोई विद्युत्-परिवर्तन नहीं पाया गया। हमें और अधिक गहराई तक शलाका चुभाने

पर संवाद मिलना आरम्भ होता है; और एक निश्चित गहराई पर विद्युत्-बाधा अत्यधिक स्पष्ट हो जाती है। हम बाधा की इस गहराई का माप लेते हैं। शलाका जब और अधिक गहराई में जाती है, विद्युत्-सूचना लुप्त हो जाती है; शलाका अब संवाही ऊतक को पार कर एक असंवाही ऊतक तक पहुँच गयी तब और भी गहराई में एक बिन्दु पर संवाद फिर मिलते हैं। इसके आगे किसी भी आवेग का संकेत नहीं मिलता। इस प्रकार संवाही ऊतक को एक इंच के सौवें भाग तक के स्थान में सीमित कर सकते हैं। इन प्रेक्षणों द्वारा पता चलता है कि उत्तेजना का संवहन एक निश्चित ऊतक में सीमित है, अतः उसे तंत्रिका कह सकते हैं।

यह ज्ञात करने के लिए कि किन स्थानों से संदेश प्राप्त हुए, हम पर्णवृन्त के एक भाग को उस रेखा पर काटते है जहाँ शलाका धँसायी गयी थी। बाह्य त्वचा असंदेशवाही थी, वल्क (Cortex) भी स्पष्टतः एक असन्देशवाहक लपेटन था किन्तु अधोवाही (Phloem) में शलाका पहुँचने पर सबल संदेश प्राप्त हुए। जैसे ही यह दारु (Xylem) में पहुँची, संदेश लुप्त हो गये, किन्तु दूसरी सतह पर पहुँचते ही फिर आरम्भ हो गये। दूसरा वाहक ऊतक द्वितीय आन्तरिक अधोवाही (Internal Phloem) है जो अभी तक वनस्पति-दैहिक वैज्ञानिकों ने सोचा भी नहीं था। इस प्रकार हमने एक नहीं, दो वाहक तंत्रिकाओं का पता लगाया (चित्र ११२)। इन दोहरी वाहक तंत्रिकाओं—एक बाहरी और एक आन्तरिक—की सार्थकता आगे समझायी जायगी।

प्रभावी अभिरंजन द्वारा तंत्रिका के विस्तार का चित्रण

यदि हम एक ऐसे अभिरंजक (Stain) का पता लगाय जो पहले से ही निर्धारित तंत्रिका-आवेग के वाहक तन्तुगुच्छों का अभिरंजन कर सके तब हम पौधे में तंत्रिका-विभाजन को स्पष्ट समझ पायेंगे। इस प्रकार दो भिन्न कार्य करने वाले ऊतकों की दो प्रतिवेशी प्रणालियों का विभेद करना अथवा दो अलग-अलग पड़ी हुई किन्तु समान कार्य करने वाली ऊतियों का साम्य स्थापित करना सम्भव होगा। शोणद्रुवि (Haematoxylin) और कुंकुम (Saffranin) के प्रयोग से चेता ऊतक गहरे नील-लोहित रंग का हो गया और अन्य ऊतकों से पृथक् दिखाई पड़ने लगा। इस परीक्षा से विद्युत्-शलाका द्वारा सूचित परिणामों की पुष्टि हुई; बाह्य और आन्तरिक अधोवाही समान अभिरंजित हुए। इससे यह पता चलता है कि यथार्थ में वे दो पृथक् तंत्रिकाएँ हैं। पर्णवृन्त में ऐसे चार दोहरे तन्तुगुच्छ होते हैं; प्रत्येक युग्म अनुपर्ण-वृन्त से आरम्भ होता है और पीनाधार में समाप्त होता है।

लाजवन्ती के तने में ही दो विपरीत मुख्य वाही-पूल (Vascular Bundles) होते हैं। इनमें से प्रत्येक में तंत्रिकाओं के दोहरे तन्तु होते हैं। ये पर्णों को पार्श्वतः शाखाएँ देते हैं। इस प्रकार ये तने और पर्णों के मध्य संवाहन-सातत्य बनाये रहते हैं। तने की उद्दीपना द्वारा निर्धारित आवेग इस प्रकार बाहर की ओर पर्णों तक भेजा जा सकता है। दूसरी ओर, पर्णों में उत्पन्न आवेग अन्दर तने तक जाता है और उनका पर्णों तक ऊपर-नीचे संवाहन होता है, जिसके कारण ये पर्ण गिर भी सकते हैं। यह भी देखा जायगा कि संवाहक अधोवाही के दोनों मुख्य तन्तु अभिसृत होकर तने के शिखर पर मिल जाते हैं (चित्र ११३)। इससे स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार मध्यम उद्दीपना यदि तने के एक पार्श्व में दी जाय, आरोही आवेग ऊपर पार कर विपरीत पार्श्व में उतरने वाला आवेग हो जाता है।

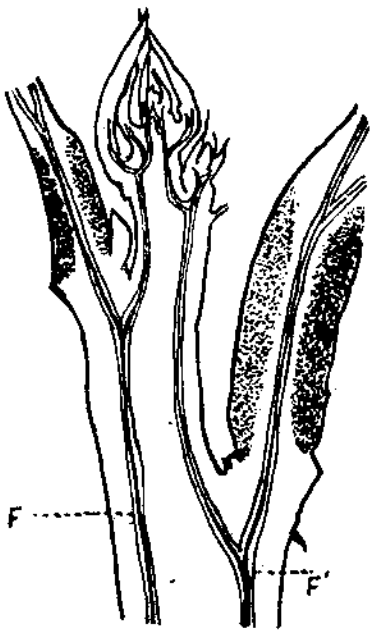

चित्र ११३—तने और पर्ण के बीच संवाहन सातत्य। दोनों पार्श्वों में पर्णों सहित तने का लम्बा अनुभाग दोनों ऊपर चढ़ते हुए पूल F F' पर्णों को पार्श्वतः शाखाएँ देते हैं और शिखर पर मिलते हैं। द्विग्म फलोएम बैंगनी अभिरंजित पृष्ठभूमि पर पृथक् दिखता है। पर्णों का स्थूलाधार गहरा होता है।

वियुक्त (Isolated) वनस्पति तंत्रिका

यह दिखाया गया है कि लाजवन्ती के वाहिनी-बंडल में अधोवाही वलयक (Phloem Strand) उत्तेजना-संवाही तंत्रिका है। लाजवन्ती से इसे बिना टुकड़े-टुकड़े किये निकालना असम्भव है; किन्तु मैं एक पर्णांग (Fern) के पर्णवृन्त से तंत्रिका को अलग करने में सफल हुआ। पर्णवृन्त का कड़ा छिलका सावधानी से तोड़ दिया गया, और इसको पृथक् करने पर वाही-नाड़ीतन्तु अलग हो गये। वे कोमल

और रंग में सफेद होते हैं और प्राणी की तंत्रिका के समान ही विस्मयकारी हैं (चित्र ११४)।

अब हमने प्राणी-दैहिकीविज्ञों द्वारा सामान्यतः मेढक की तंत्रिका पर किये गये संपरीक्षणों को पर्णांग की अलग तंत्रिका पर किया। मेढक की तंत्रिका पर एक गैलवनोमीटर द्वारा संपरीक्षण किया जाता है। यह गैलवनोमीटर तंत्रिका-आवेग

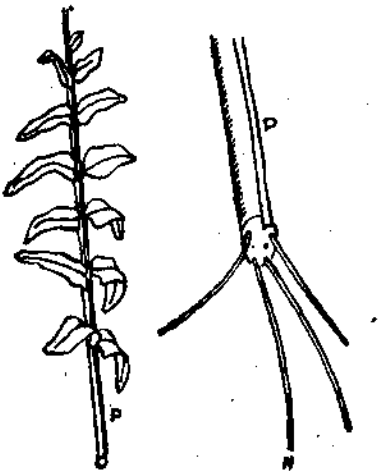

चित्र ११४–पर्णांग का अपुष्प पर्ण (Frond); **वाहिका-वलयक 'N' दाहिने वर्धित चित्र में दिखाया गया है।**

द्वारा किये गये विद्युत्-परिवर्तनों का अभिलेख लेता है। वनस्पति-तंत्रिका की विभिन्न स्थितियों में विद्युत्-अभिलेख सब प्रकार से प्राणी-तंत्रिका के अभिलेख के समान है। निम्नलिखित उदाहरण द्वारा इसका स्पष्ट प्रदर्शन हो जाता है—

यह तो सर्वविदित तथ्य है कि तंत्रिका अधिक दिनों तक व्यर्थ पड़े रहने पर न्यूनाधिक अचेत हो जाती है और यह भी कि इसे सतत उद्दीपना या सतत संकोचन द्वारा सक्रिय बनाया जा सकता है। सतत संकोचन की एक अवधि के पश्चात् अचेत तंत्रिका की मन्द अनुक्रिया अत्यधिक बढ़ जाती है। यह चित्र ११५ में चित्रित है, जिसमें प्रथम तीन अनुक्रियाएँ अचेत मेढक की तंत्रिका की हैं, सतत संकोचन के पश्चात् अनुक्रिया प्रारम्भ की अपेक्षा अत्यधिक बढ़ी हुई है। ठीक इसी प्रकार का परिणाम पर्णांग (Fern) की तंत्रिका में भी पाया जाता है (चित्र ११६)।

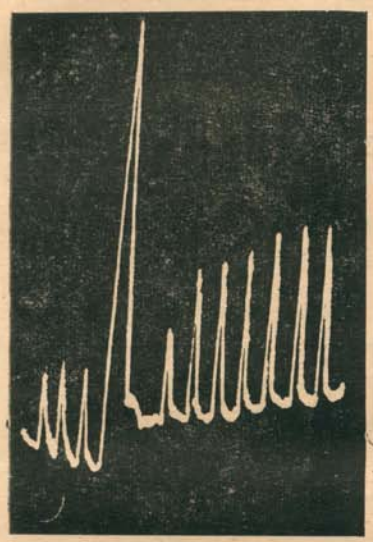

चित्र ११५—मेढक की तंत्रिका में तापीय धनुस्तम्भ के पश्चात् प्रभाव के रूप में अनुक्रिया के विस्तार की वृद्धि का अभिलेख। प्रथम तीन अनुक्रियाएँ स्वाभाविक हैं। तब लघुतापीय धनुस्तम्भ दिया जाता है और उसके परिणामस्वरूप जो प्राथमिक उद्दीपना की अनुक्रियाएँ होती हैं, वे बढ़ जाती हैं।

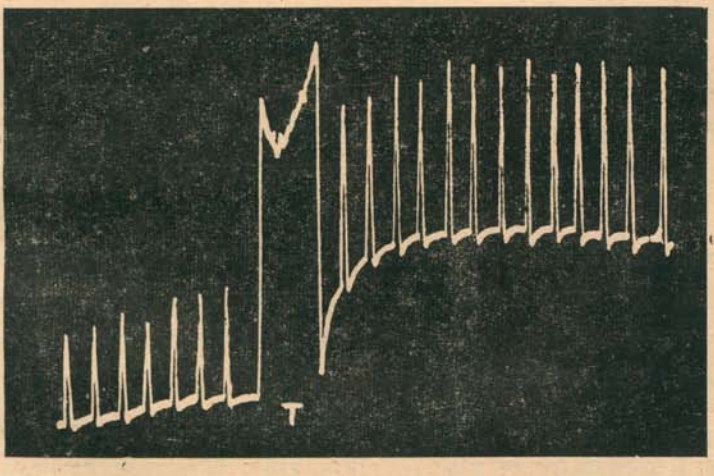

चित्र ११६—धनुस्तम्भ के प्रभाव का चित्रीय अभिलेख। यह पर्णांग की तंत्रिका में स्वाभाविक अनुक्रिया को बढ़ाता है।

संदृढ़ झिल्ली

किसी समय पौधों में उत्तेजना के संवाहन के लिए प्ररसीय सातत्य अनिवार्य माना जाता था। किन्तु प्राणी में तंत्रिका-संगम केन्द्र के आरपार, जहाँ तंत्रिका-कोशिका से तंत्रिका-कोशिका संयुक्त होती है, कोई प्ररसीय सातत्य नहीं मिलता। इस पृथक् करने वाली झिल्ली को अन्तर्ग्रथन (Synapse) कहते हैं। यह अन्तर्ग्रथन एक कपाट का कार्य करता है और इस प्रकार तंत्रिका के आवेग को विपरीत दिशा के बजाय सही दिशा में जाने में सहायता देता है। तंत्रिका-आवेग के कतिपय दूसरे लक्षण अन्तर्ग्रथन की कपाट जैसी क्रिया से ही पैदा होते हैं।

पौधे के तंत्रिका-ऊतक के एक विस्तृत परीक्षण द्वारा देखा गया कि इसमें लम्बी नलियों की तरह कोशिकाएँ होती हैं जिनकी आड़ी प्राचीरें संदृढ़ झिल्लियों का कार्य करती हैं।

सुगमीकरण

उद्दीपना की बारंबारता द्वारा कपाट के प्रायः खुलते रहने के कारण इसकी क्रिया स्पष्ट ही सुगम हो जायगी। एक जंग खाये हुए कब्जे को काम में लाने के लिए, ऐसे कब्जे की अपेक्षा जिसे बारबार काम में लाने से उसका सुगमीकरण हो गया हो, अधिक बलशाली धक्के की आवश्यकता होगी। तंत्रिका-ऊतक के परीक्षण में भी समान परिणाम मिलता है, इसमें भी आवेग की गति द्वारा अवरोध घटता है, जिससे दूसरी बार उद्दीपना देने पर अभिक्रिया का सुगमीकरण होता है।[1] इस लाक्षणिक अभिक्रिया को "Bahnung" या बारंबार गमनागमन द्वारा मार्ग का खुलना कहते हैं।

वनस्पति-तंत्रिका के लक्षण प्राणी के ऊतकों के समान ही हैं। यद्यपि सर्वप्रथम आवेग दोनों दिशाओं में चलता है, एक अधिमान्य दिशा ऐसी होती है जिसमें संदृढ़ झिल्लियों की कपाट-क्रिया के कारण इसका गमनागमन अधिक सुगम और गति द्रुततर होती है। अतः अभिकेन्द्र (Centripetal) से अधिक सुगमता अपकेन्द्री (Centrifugal) पारेषण में होती है।

पुनश्च, सुगमीकरण पहले वाली उद्दीपना द्वारा होता है। अतः एक विशिष्ट घटना में प्रादर्श की संवाहक शक्ति इतनी निम्न थी कि पीताधार से १५ मि० मी०

---

१. Starling, *Principles of Human physialogy* (1920), P. 305.

की दूरी के पर्णवृन्त पर परीक्षक उद्दीपना देने पर वह वहाँ तक पहुँचने में असफल रही। तीव्रतर उद्दीपना द्वारा प्रेरणा अवरोध के प्रभाव से बलपूर्वक हटायी गयी और पीनाधार तक इसका पारेषण यथेष्ट द्रुत गति से हुआ। एक बार मार्ग बन जाने पर बाद के आवेगों का पारेषण सुगम हो गया और पहले की असफल उद्दीपना अब प्रभावी हो गयी।

रुई का उपचार

प्रयोग या अप्रयोग द्वारा तंत्रिका-क्रिया की कार्य-वृद्धि या निम्नन के ये निम्न लिखित प्रेक्षण प्रबोधक हैं। प्रकृति के उद्दीपक आघातों से काँच के अन्दर सावधानी से सुरक्षित एक पौधा कोमल और विकसित दिखता है। किन्तु यथार्थ में वह क्षीण और ह्रासोन्मुख रहता है, शारीरिक रूप से तंत्रिका-ऊतक उसमें वर्तमान रहता है, किन्तु उपयोग न होने के कारण प्रयोग की दृष्टि से यह निष्क्रिय है।

इस स्थिति में एक पौधे में उद्दीपक आघातों के प्रभाव से तंत्रिका-संवाहन की वृद्धि का अवलोकन बहुत ही रोचक है। पहले कोई पारेषण नहीं होता, कुछ देर बाद उद्दीपक आवेग का पारेषण होने लगता है। सतत उद्दीपना संवाही शक्ति को अधिकतम तक बढ़ाती है।

यहाँ हमारे सामने 'जीव के अपने पर्यावरण द्वारा वर्धन' का प्रदर्शन उद्दीपना के संचयी प्रभाव द्वारा अंग की सृष्टि के रूप में प्रस्तुत है। उद्दीपना-रहित तंत्रिका निष्क्रिय और अचेत रहती है; किन्तु उद्दीपना द्वारा इसमें स्फूर्ति आ जाती है और इसकी उत्तेजकता और संवहन-शक्ति अत्यधिक बढ़ जाती है।

उद्दीपना के ग्रहण-आस्थान के रूप में पर्ण

वनस्पति के जीवन को बनाये रखने के लिए उद्दीपना की सक्रियता का एक विशेष पक्ष अत्यधिक आवश्यक है। इसकी स्वाभाविक सक्रियता के सातत्य को बनाये रखने के लिए आन्तरिक ऊतकों को उद्दीपना द्वारा अधिकतम बल्य दशा में रखना पड़ता है। वनस्पति के लिए स्वाभाविकतया प्राप्य उद्दीपनाओं में प्रकाश से अधिक शक्तिशाली कोई उद्दीपना नहीं है। सब परिस्थितियाँ इसके उद्दीपक प्रभाव को तंत्रिका-वाहिका—वाहिनी-ऊतक में अधोवाही—के साथ-साथ आन्तरिक पारेषण होने में सहायता देती हैं। वनस्पति में प्रकाश को रोक देने पर रस-आरोह को बनाये रखने वाला स्पन्दन रुक जाता है, किन्तु प्रकाश-उद्दीपना से संबन्ध होते ही स्पन्दन की गति पुनर्जीवित हो जाती है, रस का उदंचन होने लगता है और तंत्रिका रूपी वाहिनियों में जीवन तीव्र गति से दौड़ने लगता है। विस्तृत पर्ण, जिसमें

वाहिनी-पूल (Vascular Bundles) सूक्ष्म शाखाओं में विभाजित रहता है, केवल वायु में कार्बन एसिड गैस से कार्बन को स्थिर करने के लिए ही एक विशिष्ट संरचना नहीं है। यह प्रकाश की उद्दीपना के लिए एक ग्रहण-आस्थान भी है। प्रकाश का उद्दीपक प्रभाव दीर्घतर तंत्रिका-स्कंधों में वनस्पति के भीतर पारेषण के लिए संचित होता है। भीतर वाहिनी-पूलों का ऐसा विभाजन है कि इन तंत्रिका-वाहिकाओं द्वारा ले जायी गयी उत्तेजना से उद्दीप्त होने के लिए कोई भी जीवित ऊतक-पिण्ड बचा नहीं रह सकता।

इस प्रकार वनस्पति का समस्त भाग तंत्रिका-योजना से पोषित होता है। इस तंत्रिका-योजना में परस्पर अत्यधिक घनिष्ठ और द्रुत संचरण होता है। तंत्रिका-तंत्र की उपस्थिति के कारण ही पौधा स्वयं में एक संघटित समग्र है, जिसका प्रत्येक भाग किसी अन्य भाग पर पड़ने वाले प्रभाव से प्रभावित होता है।

अध्याय २५

सूर्य और उसका पर्ण-रथ

प्राणी में उसके विभिन्न अंगों के बीच द्रुत संचार-साधन प्रायः जीवन और मरण का प्रश्न होता है। कारण, इसे जब दृष्टि या ध्वनि द्वारा अनिष्टकर भय का आभास होता है, संचलन-अंग को तंत्रिका द्वारा एक अविलम्ब संदेश भेजा जाता है। संचलन-अंग तत्काल ही मुक्ति के लिए सक्रिय हो जाता है। उद्दीपना की क्रिया द्वारा जीव की अभिवृत्ति में गूढ़ रूपान्तरण होते हैं। यदि वह उसके लिए लाभकारी है, वह उसकी ओर, तथा यदि हानिकर है तो उससे विपरीत दिशा में मुड़ता है।

वनस्पति में भी मन्द और तीव्र उद्दीपना-क्रिया द्वारा दो विपरीत अभिक्रियाएँ होती हैं। तीव्र उद्दीपना से वनस्पति के जीवन को भय रहता है। मैं आने वाले एक अध्याय में यह वर्णन करूँगा कि किस प्रकार लाजवन्ती अपनी विशिष्ट गतियों द्वारा तीव्र उत्तेजना के उद्गम से बचती है।

अब मैं वनस्पति की उस अभिवृत्ति का वर्णन करूँगा जिसे वह अपने लिए लाभकारी उद्दीपनाओं के अवशोषण के लिए धारण करती है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि वनस्पति द्वारा कार्बनिक एसिड के परिवाचन के लिए प्रकाश अनिवार्य है। जब इसके पर्णों का ऊपरी तल आपाती किरणों के ठीक सीध में होता है, तब प्रकाश का अधिकतम अवशोषण होता है। इस लम्ब-समायोजन की परिभाषा है, पर्ण की पार-सूर्यवर्ती अभिवृत्ति (Dia-heliotropic attitude)।

मेरे उद्यान में उत्पन्न कतिपय पौधों के चित्र (चित्र ११७) प्रकाश की इसी खोज को प्रदर्शित करते हैं। मध्य पुष्प दीवार के पास उगा हुआ एक सूर्यमुखी है। इस पौधे पर पश्चिम से प्रकाश पड़ता है। १ और ३ नम्बर के पर्ण ऐंठ गये हैं—दाहिने या बायें—इस प्रकार कि इसके पर्ण-फलक के ऊपरी तल आपाती प्रकाश के लम्ब कोण पर हैं। दाहिनी ओर के चित्र में एक भिन्न प्रजाति के सूर्यमुखी का, जो घुले में उत्पन्न हुआ था, मोड़ और समायोजन दिखाया गया है। प्रातः यह पूर्व की ओर मुड़ गया और इसके सब पर्णों में प्रकाश की ओर मुड़ने के लिए समुचित गति और मरोड़ (Torsion) हुई। अपराह्न में पौधा पश्चिम की ओर मुड़ गया। पहले वाले सब समायोजन और मरोड़ पूर्ण रूप से उलट गये। पौधे में एक के बाद दूसरे

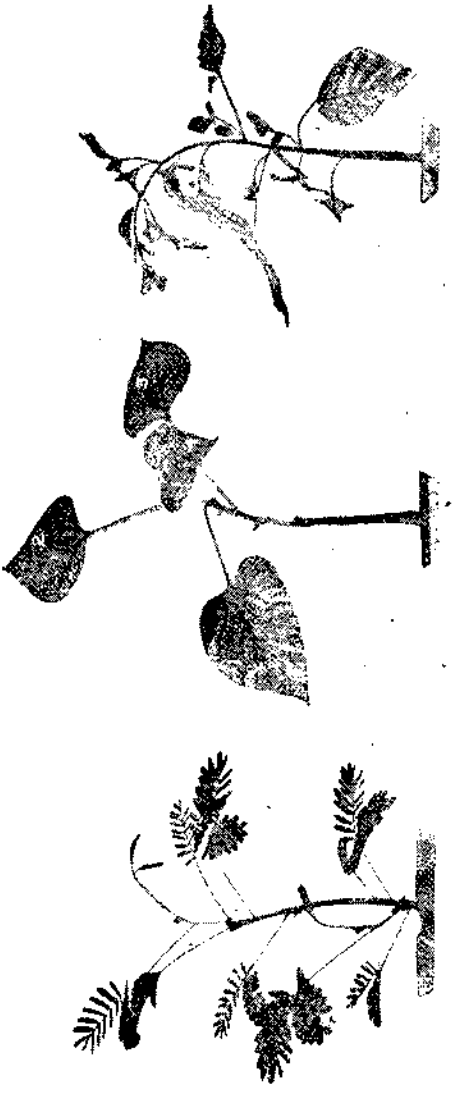

चित्र ११७—पर्व की पार-सूर्यवर्ती समायोजना। (a) लाजवन्ती में; (b) सामान्य सूर्यमुखी; और (c) सूर्यमुखी की अन्य प्रजातियों में।

दिन मुड़ने का यह क्रम तब तक चलता रहा, जब तक आयु ने इस गति को बन्द नहीं कर दिया।

लाजवन्ती का पर्ण-समायोजन और भी अधिक विस्मयकारी है। चित्र में बायीं ओर यह चित्रित है। गमले में उत्पन्न एक पौधा उत्तर दिशा से प्रकाश पाता था। यह देखा गया कि जो पत्ते प्रत्यक्ष प्रकाश की ओर थे, वे इस प्रकार उठे हैं कि उनके अधः पर्णवृन्त और छोटी पत्तियाँ तीव्रतम प्रकाश के लम्ब कोण पर हैं। दूसरी ओर पार्श्व-पर्ण उपयुक्त रूप से मुड़े हुए हैं, पत्तियों का ठीक प्रकाश के सीध में समायोजन हुआ। यह पाया गया कि दाहिनी और बायीं ओर के पर्णवृन्त में विपरीत मरोड़ हुई है। इस स्थिति की अवधारणा के पश्चात् पौधे के गमले को १८०° पर घुमाकर रखा गया। २० मिनट के भीतर इसमें एक नूतन समायोजन हुआ, सब पत्तियों के तल प्रकाश के लम्बकोण पर हो गये। इस नये समायोजन के कारण पहले की गति और मरोड़ पूर्ण रूप से विपरीत हो गयी।

सूर्य-सेवन

ये गतियाँ किस प्रकार होती हैं? पर्ण जैसे सूर्य-सेवन के लिए ही इस प्रकार घूम जाते हैं। जब हम सूर्य की ओर अपनी हथेली मोड़ते हैं तब क्या होता है? ऐसा करने के लिए बाहु की अत्यधिक जटिल पेशी-यन्त्र-रचना को क्रियाशील बनाना पड़ता है। इससे दाहिनी या बायीं ओर घुमाव होता है, या ऊपर-नीचे गति होती है। पर्ण में भी इसके पेशी-अंग-स्थूलाधार को इसी प्रकार की एक जटिल गति प्रकाश की क्रिया द्वारा लानी पड़ती है।

वनस्पति के आवश्यक प्रेक्षण के लिए मैं अब लाजवन्ती को लूँगा। इसमें स्थूलाधार की चरता अत्यधिक स्पष्ट है। यह सोचा जाता था कि पर्ण की प्रेरक यन्त्र-रचना सामान्य है और उसमें केवल एक ऊपर-नीचे गति होती है। मेरे अनुसंधानों के परिणाम से पता चलता है कि ऐसा नहीं है; कारण, यन्त्र-रचना द्वारा यथेष्ट जटिल गतियाँ हो सकती हैं। केवल ऊपर नीचे ही नहीं बल्कि दाहिनी और बायीं ओर भी मोड़ की क्रिया होती है।

स्वयं स्थूलाधार में बायें और दाहिने, ऊपरी और निचला (चित्र ११८), ये चार चतुष्कोण होते हैं जिनकी क्रमसंख्या 1, 4, 3, 2 हैं। अब यदि एक मन्द विद्युत्-आघात या प्रकाश की एक किरण द्वारा बायीं चतुष्कोण संख्या 1 को स्थानिक रूप से उद्दीप्त किया जाता है, तो पर्ण प्रत्युत्तर में गिरता नहीं बल्कि बायीं ओर मुड़ जाता है। यदि उद्दीपना बायीं ओर से दाहिने चतुष्कोण की ओर कर दी जाती है तो इसका परिणाम होगा, दाहिनी ओर को ऐंठन। ऊपरी चतुष्कोण 3 में उद्दीपना द्वारा ऊपर की ओर मन्द गति होती है, जब कि निम्न चतुष्कोण 2 में उद्दीपना द्वारा नीचे

की ओर द्रुत गति होती है। इन चारों चतुष्कोणों की पेशी-रूपी प्रतिक्रियाओं द्वारा चारों पर्णवृन्तों की पत्तियाँ चार पताकाओं की तरह लगती हैं। यदि चारों पर्णवृन्तों की हरी पत्तियाँ प्रकाश से छिपाने के लिए ढक कर रखी जायँ और यदि पूर्व से सूर्य-प्रकाश दाहिने चतुष्कोण 4 पर पड़ता है तो संपूर्ण पर्ण दाहिनी ओर मुड़ जाता है और

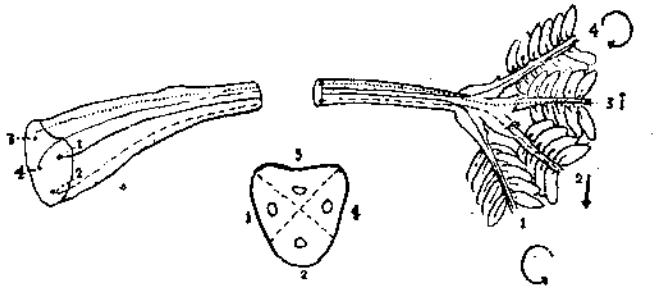

चित्र ११८--चार अधः पर्णवृन्तों से स्थूलाधार तक चार तंत्रिका-वलयकों का मार्ग (सामान्य लाजवन्ती)। निम्नस्थ चित्र अपने चारों चतुष्कोणों के साथ स्थूलाधार का आरेखी अनुभाग है। चतुष्कोण 1 और 4 का, जिसके द्वारा बायीं और दाहिनी ऐंठन होती है, क्रम से अधः पर्णवृन्त 1 और 4 से तंत्रिका-सम्बन्ध है। निम्न प्रभावी 2 अधः पर्णवृन्त 2 से संयुक्त है, इसकी अनुक्रिया द्रुत अवरोही-गति है। ऊपरी चतुष्कोण 3 अधः पर्णवृन्त 3 से संयुक्त है, इसकी अनुक्रिया है मन्द आरोही गति। अवलोकन करने वाला मूल तने की ओर देख रहा है।

अपने साथ चारों अधः पर्णवृन्तों पर लगी पत्तियों को भी ले जाता है; ऐसा लगता है मानो अदृश्य सूर्य की ओर मुड़ने के लिए। दूसरी तरफ, यदि पश्चिम से सूर्य का प्रकाश पार्श्व में बायें चतुष्कोण पर पड़ता है तो मोड़ उलट जाता है और पत्तियाँ पश्चिम की ओर हो जाती हैं।

यह तो हुई प्रकाश द्वारा चर अंग की प्रत्यक्ष उद्दीपना से मोड़ को ऐंठन की गति। किन्तु स्वाभाविक स्थिति में स्थूलाधार पर पत्तियों की छाया के कारण प्रत्यक्ष प्रकाश नहीं पड़ता। जब चर अंग को प्रत्यक्ष उद्दीपना नहीं मिलती, तब किस प्रकार पर्ण प्रकाश की ओर घूमता है?

इससे अधिक सहज क्या हो सकता है? पत्तियों द्वारा प्रेषित संवाद से स्थिति का ज्ञान स्थूलाधार को हो जाता है।

पर्ण और स्थूलाधार में तंत्रिका-सम्बन्ध,

मैंने अन्य स्थान[1] पर दिखाया है कि चारों अधः पर्णवृन्त और चारों चतुष्कोणों में निश्चित तंत्रिका-सम्बन्ध हैं। इस प्रकार बायें अधः पर्णवृन्त में मन्द विद्युत्-आघात देने पर वह एक तंत्रिका-आवेग को प्रेरित करता है, फिर यह चतुष्कोण १ में पहुँचकर लाक्षणिक अनुक्रिया बायीं ओर की ऐंठन उत्पन्न करता है। इसी प्रकार दाहिने अधः पर्णवृन्त की उद्दीपना द्वारा दाहिनी ऐंठन होती है। मध्य अधः पर्णवृन्तों की उद्दीपना द्वारा ऊपर और नीचे की गति होती है। पत्तियों वाले अधः पर्णवृन्तों को विद्युत्-आघात के स्थान पर प्रकाश की उद्दीपना देने पर भी समान परिणाम होते हैं।

बँधा हुआ शलभ

मनुष्य नाव चलाते समय यदि केवल एक ही पतवार चलाये तो वह वहीं गोलाकार घूमता रहेगा, आगे नहीं जा सकता। किसी निर्दिष्ट दिशा में उद्देश्य-पूर्ण गति तभी होती है जब दोनों पतवार समान बल से चलाये जायँ। यदि कई शलभों को एक समूह में महीन डोरे से इस प्रकार कस कर बाँध दिया जाय कि डोरा पंखों की स्वतंत्र गति में बाधक न हो, तो ये प्रकाश की ओर उन्मुख दिखाई देंगे। इसका कारण यह है कि इस दशा में इनकी दोनों आँखें प्रकाश द्वारा उद्दीप्त होंगी और जिस तंत्रिका-आवेग का पारेषण पंखों तक होता है, वह उन्हें समान गति और शक्ति से फड़फड़ाने के लिए बाध्य करता है। यदि एक आँख भी संयोगवश प्रकाश से तिरछी हो जाय तो उसे उद्दीपना कम मिलेगी। इससे शलभ को इस प्रकार घूमना पड़ता है कि दोनों आँखों को समान मात्रा में प्रकाश मिले। पर्ण उस शलभ की तरह सक्रियता दिखाता है, जो बँधा होने पर प्रकाश की ओर मुड़ता है।

अतः वनस्पति में यदि प्रकाश की एक तिरछी किरण एक अधः पर्णवृन्त पर पड़े, जैसे बायीं तरफ संख्या १ पर, तब ऐंठन होती है। इससे पर्ण तब तक घूमता रहता है जब तक चतुर्थ अधः पर्णवृन्त प्रकाश की ओर न आ जाय; किन्तु अधः पर्णवृन्त की उद्दीपना द्वारा पर्ण दाहिनी ओर ऐंठेगा और लगेगा कि पहले की गति में बाधा उत्पन्न हो गयी। दोनों अधः पर्णवृन्तों के समान प्रकाशित होने पर दोनों विपरीत अभिक्रियाओं का सन्तुलन होता है। आपाती प्रकाश के सीध में होने पर

---

१. 'The Dia-Heliotropic Attitude of Leaves as Determined by Transmitted Nervous Excitation,' *Proceedings of Royal Society*', B. Vol 93, 1922, p. 153.

ऐसा ही होता है। अधः पर्णवृन्त १ और ४ जो बाहर रहता है, उसके द्वारा सम्पूर्ण पर्ण का पार्श्वतः समायोजन होता है। दोनों मध्य अधः पर्णवृन्तों द्वारा पारेषित तंत्रिका-उत्तेजना की अभिक्रिया द्वारा ऊपर और नीचे की सन्तुलित समायोजना होती है। यह स्पष्ट है कि साम्यावस्था तभी सम्भव है, जब अधः पर्णवृन्तों पर पत्तियों से पूर्ण पर्ण-तल समान रूप से प्रकाशित हो, और यह तभी हो सकता है जब पर्ण का सम्पूर्ण तल आपाती प्रकाश की सीध में हो। इस प्रकार स्थूलाधार में दूरी पर चार प्रेरक चतुष्कोण, जो पत्तियों के प्रतिबोधी स्थान पर चार तंत्रिका-आवेगों द्वारा प्रेरित होते हैं, उनके समन्वित प्रभाव से पर्ण अन्तरिक्ष में समायोजित होता है।

इस प्रकार चार भाई हैं; सब सूर्य-प्रेमी, जो भी सूर्य-प्रकाश हो, उसको बाँटने के लिए प्रतिज्ञा किये हुए, किन्तु प्रत्येक को सम्पूर्ण गति के लिए पृथक् खिचाव होता है। कल्पना कीजिये कि वे अपना चेहरा आकाश की ओर करके लेटे हैं। पूर्व में उदय होता हुआ सूर्य एक ऐसी किरण फेंकता है जो दाहिने वाले भाई पर पड़ती है। वह तत्काल स्थूलाधार के अपने चतुष्कोण को एक सन्देश भेजता है। चतुष्कोण दाहिनी तरफ ऐंठता है और इस प्रकार न केवल उस संवाददाता चर को, जो सन्देश लाता है बल्कि सम्पूर्ण वृन्द को सूर्य की ओर घुमा देता है। यदि पर्ण दूर तक झूल जाता है तो संख्या ४ का स्काउट दूसरी तरफ उसे खींचकर मामले को ठीक कर लेता है।

अन्ततः सूर्य देवता ही तो पृथ्वी पर की सारी गति और सभी प्राणियों के स्रोत हैं। वही हमें प्रतिदिन शय्या से खींचकर उठाते हैं, वही भूमध्य-रेखा से जल खींचकर हिमालय के शिखर पर पहुंचाते हैं, हमारी नदियों को बहाते हैं और वायु को गतिमान् बनाते हैं। इस विराट् शक्तिशाली कार्य में वह क्षुद्रतम पर्ण को भी भूलते नहीं। उस पर वह अवरोहण करते हैं, उसे अपना रथ बनाते हैं। पर्ण की चारों तंत्रिकाएँ उनके रथ की रास हैं, जिनके मार्ग-दर्शन में रथ ऊपर उठता है या नीचे जाता है या दाहिनी अथवा बायीं ओर झुकता है।

अध्याय २६

वनस्पति में प्रतिवर्त चाप (Reflex Arc) की खोज

जब कोई शिशु अपनी अँगुली आग की ज्वाला पर रखता है तो इसके पहले कि वह रुदन करने की सोचे, उसकी बाँह स्वत: लौट आती है। यह एक अद्भुत प्रतिवर्त यंत्र-रचना का कार्य है। जलने की तीव्र उद्दीपना द्वारा एक अन्दर जाने वाला संवेदनात्मक अथवा अभिवाही आवेग होता है। यह प्रेरणा तंत्रिका-केन्द्र में पहुँचकर प्रतिवर्तित होकर बाहर जाने वाले प्रेरक अथवा अपवाही आवेग में रूपान्तरित हो जाती है। यह आवेग एक नये मार्ग पर चलता हुआ हाथ को तत्काल हटा लेता है जो स्वैच्छिक और स्वत:क्रिया है। लन्दन में मेरे एक भाषण के समय देर से आने वाला एक व्यक्ति यह देखकर कि सब स्थान भर गये हैं, एक ऐसे स्थान पर बैठ गया, जिसे उसने एक उठा हुआ आसन समझा था, और तत्काल कूद पड़ा। वह एक ऊष्मा जल-नली थी। यह प्रतिवर्त-क्रिया का पूर्वाभ्यास-रहित प्रयोग था।

तंत्रिका-केन्द्र में प्रतिवर्त चाप का एक रेखाचित्रीय निरूपण चित्र ११६ में दिया गया है। यह एक तीव्र उद्दीपना है जो चर्मतल पर प्रहार करती है, संवेदी तंत्रिका अभिवाही आवेग 'A' को नाड़ीकेन्द्र 'NC' तक ले जाती है। यह आवेग अब अपवाही प्रेरणा 'E' के रूप में प्रतिवर्तित हो जाता है, और प्रेरक संदेशतंत्रिका द्वारा भेजा जाता है, जिससे अन्तिम पेशी 'M' का संकुचन होता है। अभिवाही और अपवाही, दोनों तंत्रिकाएँ यद्यपि भिन्न हैं, तथापि एक साथ रहती हैं और इन्हें मिश्रित-तंत्रिका कहा जाता है।

मैंने लाजवन्ती के पर्ण में एक समानान्तर विन्यास की खोज की है। यह दिखाया जा चुका है कि चार वाहिनी-बंडल हैं, जिनके द्वारा चारों अध: पर्णवृन्तों का स्थूलाधार से तंत्रिका-सम्बन्ध है। विद्युत्-शलाका द्वारा अन्वेषण करके देखा गया है कि प्रत्येक बंडल में दो तंत्रिका-वलयक होते हैं—एक बाह्य दूसरा आन्तरिक, और इसलिए अपेक्षया अधिक सुरक्षित। चयनात्मक अभिरंजन द्वारा भी प्रत्येक बंडल में दो तंत्रिका-वलयकों का होना प्रमाणित हुआ है। इस दोहरी व्यवस्था का क्या उद्देश्य है?

इस प्रश्न पर अनुसन्धान करने के लिए बायीं तरफ वाले अधः पर्णवृन्त में उद्दीपना दी गयी और क्रमशः उसे धीरे-धीरे बढ़ाया गया। इसकी सामान्यतम और सबसे सरल रीति है, कुंडली द्वारा विद्युत्-आघात की तीव्रता को बढ़ाना। जब उद्दीपना मन्द या सामान्य होती है, जैसा कहा जा चुका है, अनुक्रिया बायीं ओर की ऐंठन-क्रिया द्वारा प्रदर्शित होती है। किन्तु जब उद्दीपना की तीव्रता बढ़ा दी जाती है, एक नूतन घटना घटित होती है।

हम बायें अधः पर्णवृन्त पर दी गयी सामान्य तीव्र उद्दीपना द्वारा घटित आवेग का अनुगमन करेंगे। अधः पर्णवृन्त के भीतर उत्तेजना का मार्ग पर्णों के ऊपर से बन्द होने के क्रम में दृष्टिगोचर होता है। स्वाभाविकतया विस्तृत पत्तियाँ ऊपर से देखने में चमकीली हरी दीखती हैं।

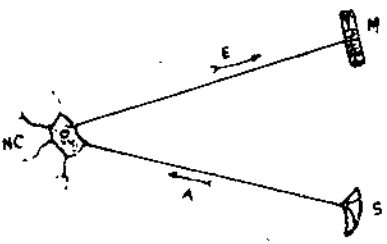

चित्र ११९—प्राणी में प्रतिवर्त-क्रिया का आरेख।

आवेग के घूमने के बाद बन्द पत्तियों में अस्पष्ट धूसर रेखा रह जाती है। जब आवेग अधः पर्णवृन्त के लघु स्थूलाधार तक पहुँचता है, उसे उसके साथी दूसरे अधः पर्णवृन्त की ओर घुमाया जाता है। तब आवेग मुख्य अधः पर्णवृन्त तक पहुँच जाता है और कुछ देर के लिए इसके जाने का कोई चिह्न नहीं दिखाई देता। कुछ देर बाद स्थूलाधार तक इसका पहुँचना पर्णों के गिरने से ज्ञात होता है। अभिवाही या भीतर जाने वाली प्रेरणा का पर्ण के स्थूलाधार तक पहुँचने का समय अति आन्तरिक पत्तियों के युग्म के बन्द होने और पर्ण के गिरने के अन्तराल का अवलोकन करने से निश्चित होता है।

अभिवाही आवेग का कार्य यहीं नहीं समाप्त होता। क्योंकि यह आवेग अब स्थूलाधार में जाकर अपवाही प्रेरणा में बदल जाता है और विपरीत दिशा में दूसरे मार्ग पर चलता है। अपवाही आवेग परिमा (Periphery) पर पहुँच जाता है। इसके प्रसरण की विपरित दिशा द्वितीय अधः पर्णवृन्त की पत्तियों के क्रम से बाहर की ओर बन्द होने से ज्ञात होती है (चित्र १२०)। अतः तह स्पष्ट है कि लाजवन्ती के पर्ण में एक प्रतिवर्त चाप है। अभिवाही तंत्रिका को संवेदी और अपवाही तंत्रिका को प्रेरक कह सकते हैं।

द्वितीय अधःपर्णवृन्त की भीतरी पत्तियों के युग्म के बन्द होने और पर्ण के गिरने के अन्तराल के माप द्वारा प्रेरक तंत्रिका-आवेग की गति का पता चलता है।

यह आवेग संवेदी आवेग से स्पष्टतः भिन्न है। मैंने पाया है कि ये दोनों आवेग दो विभिन्न तंत्रिकाओं द्वारा संवाहित हैं; अभिवाही या संवेदी प्रेरणा बाह्य तंत्रिका द्वारा और

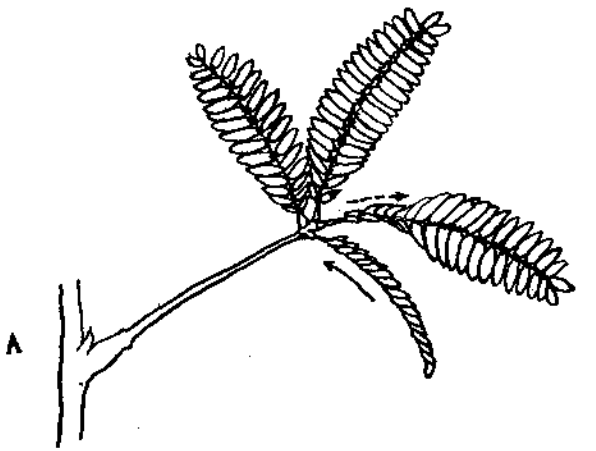

चित्र १२०—आवेग के परावर्तन का आरेख। (A), अधः पर्णवृन्त की मध्यम उद्दीपना। (१) इससे अभिवाही आवेग द्वारा पर्ण गिर जाते हैं (चित्र में दृश्य नहीं है)। स्थूलाधार से अभिवाही आवेग, अपवाही आवेग की तरह परावर्तित होते हैं, जिसके द्वारा अधः पर्णवृन्त पर पत्तियों की अनुक्रिया होती है। (२) अभिवाही आवेग सतत तीर द्वारा और अपवाही बिन्दुमय तीर द्वारा संकेतित है।

अपवाही या प्रेरक आन्तरिक तंत्रिका द्वारा। यही उस जाँच का उत्तर है जिसका सम्बन्ध वाहिनी-बंडल में दो तंत्रिकाओं की उपस्थिति के महत्त्व से है।

प्रथम अधः पर्णवृन्त में तीव्रतर उद्दीपना देने पर पारेषित प्रभाव अधिक विस्तृत रूप से किरणायित होता है और अधः पर्णवृन्त क्रमिक रूप से अनुक्रिया प्रदर्शित करते हैं। उद्दीपना की बढ़ती हुई तीव्रता में लाजवन्ती-तंत्रिका की अभिक्रिया के ये लाक्षणिक चिह्न प्राणी-तंत्रिका की अभिक्रिया के समान हैं और यह विस्मयकारी है। प्राणी-तंत्रिका की अभिक्रिया में उद्दीपना की बढ़ती हुई तीव्रता द्वारा आवेग अधिकतर तंत्रिका-कोशिकाओं में फैलता है और अधिक विस्तृत अनुक्रिया दिखाता है।

इन प्रतिवर्तनों के समय-सम्बन्ध के अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि संवेदी आवेग के स्थूलाधार तक पहुँचने और प्रेरक आवेग के वहाँ से चलने का अन्तराल निश्चित रूप से कई सेकेण्ड का होता है। प्रतिवर्तन में यह लुप्त समय है; यह स्थूलाधार में आवेग के अभिवाही से अपवाही तंत्रिका होने का अंतःकालीन समय है। इससे ज्ञात होता है कि बीच में कोई रोध या बाधा है जिसे इसको हटाना पड़ता है। प्राणी में भी समान अवस्थाएँ होती हैं, यह विदित है। यहाँ बाधा को कुचला (Strychnine) द्वारा पूर्णतः हटा दिया जाता है। मैंने पाया कि लाजवन्ती पर भी कुचला का समान प्रभाव पड़ता है। भेषज के मिश्रित घोल की एक मात्रा द्वारा बाधा पूर्णरूप से हट गयी।

निष्पादन-केन्द्र

प्राणी के संवेदी और प्रेरक आवेगों में अनिवार्य भिन्नता यह है कि एक केन्द्र की ओर जाता है और दूसरा केन्द्र से बाहर की ओर। यह कहना असम्भव है कि वे समान या भिन्न गति से जाते हैं। वनस्पति में दोनों गतियों का माप करना अधिक सरल है और यह एक विस्मयकारी तथ्य है कि बाहर जाने वाला प्रेरक आवेग, दोनों में से द्रुततर है। साधारणतया तंत्रिका-आवेग जैसे-जैसे दूर जाता है, उसकी गति घटती जाती है, और ऐसा सोचा जा सकता है कि संवेदी आवेग के केन्द्र में पहुँचते ही उसकी गति बन्द हो जाती है। क्योंकि इसको अधिक दूर जाना रहता है और इसे उलट कर पर्णवृन्त की लम्बाई का दुगुना चलना पड़ता है। किन्तु मेरे अनुसन्धानों से पता चलता है कि बाहर जाने वाले प्रेरक आवेग की गति, भीतर आने वाले संवेदी आवेग की गति से कम से कम छः गुनी है। प्रतिवर्त चाप में संवेदी आवेग का प्रेरक आवेग में परिवर्तन केवल संचरण-दिशा के उलटने का ही सूचक नहीं है, बल्कि केन्द्र में ऊर्जा का अत्यधिक निस्सारण (Discharge) होता है, जिससे मन्द संवेदी आवेग द्वारा उत्तेजित प्रेरक आवेग उससे कहीं अधिक तीव्र हो जाता है।

इस प्रकार ज्ञात होता है कि केन्द्र का एक विशिष्ट निष्पादन-कार्य होता है और वहाँ यथेष्ट मात्रा में ऊर्जा संचित रहती है। संवेदी आवेग केन्द्र पर पहुँचकर एक बटन खींचता है और इसके परिणामस्वरूप प्रेरक आवेग का निस्सारण प्रायः विस्फोटक तीव्रता और द्रुतता का होता है। अब यह दिखाया जायगा कि प्रेरक आवेग का मुख्य कार्य आसन्न संकट का सामना करने के लिए बाह्य भाग के अंगों का समयोजन है। इसको सदा अनवरत रूप से सतर्क रहना पड़ता है, और सामान्य आवश्यकता पर तत्काल क्रियाशील होना पड़ता है। क्योंकि असामञ्जस्य से वनस्पति-राष्ट्रमण्डल का विनाश हो सकता है।

जैसा पहले ही स्पष्ट किया गया है, मन्द उद्दीपना वनस्पति के कल्याण के लिए होती है। इस प्रकार की उद्दीपना द्वारा जीव को स्वस्थ बल मिलता है। दूसरी ओर तीव्र उद्दीपना जीवन के लिए घातक है। अब हम देखें कि किस प्रकार मन्द या तीव्र उद्दीपना प्राणी की अभिवृत्ति को प्रभावित करती है। जब बिल्ली के बच्चे को धीरे से थपथपाया जाता है, तो वह फूलकर गेंद जैसा बन जाता है; प्रसन्नता से घुरघुराता है और अपने प्यार करने वाले के प्रति आकर्षित होता है। किन्तु जब एक बड़े डण्डे का उपयोग होता है, तब अनुक्रिया में एक मूल परिवर्तन होता है। विस्तार के स्थान पर प्रचण्ड संकुचन होता है; प्रसन्न घुरघुराहट के स्थान पर पीड़ायुक्त चीत्कार और आकर्षण के स्थान पर द्रुत घृणा होती है, और वह खुले दरवाजे की ओर भागता है। यदि दरवाजा बन्द रहता है तो वह कुर्सी के नीचे छिप जाता है। लाजवन्ती की अभिवृत्ति पर भी मन्द या तीव्र उद्दीपना का इसी प्रकार का लाक्षणिक प्रभाव होता है। वनस्पति के लिए प्रकाश कल्याणकारी होता है, अतः पर्ण अपना समायोजन इस प्रकार करता है कि अधिकतम मात्रा में प्रकाश मिल सके। किन्तु जब प्रकाश इतना तीव्र होता है कि हानिकार हो जाय तो भय-संकेत का एक संवेदी संवाद केन्द्र में पहुँचता है और वहाँ से सब बाह्य अंगों को तत्काल हटने का आदेश मिलता है।

दुबक जाना

सामान्य लाजवन्ती (Mimosa pudica) एक ऐसा खर-पतवार है जो ऊष्ण देशों में भूमि के विस्तृत भाग को ढक देता है। इसके आनत (Procum bent) तनों में अत्यधिक पर्ण होते हैं, जिससे उतना भूमिखण्ड एक चमकीला हरा पुंज लगता है। इस वनस्पति को चरने वाले पशुओं से जीवन का भय है, जिनके आक्रमण से इसके पर्ण गिर जाते हैं। ऐसा अनुमान है कि पर्णगति द्वारा पशुओं को डराकर भगाने का प्रयोजन पूरा किया जाता है, क्योंकि पशुओं को वृक्षों के झूमने का पूर्व अनुभव होता ही है, पर गाय को इतनी बुद्धि नहीं कि वह लाजवन्ती के पर्णों का हिलना देखे और उससे डर जाय। फिर भी तंत्रिका-प्रतिवर्त वनस्पति की सुरक्षा को भिन्न प्रकार से बढ़ाता है। जब पत्तियों से भरा एक अधः पर्णवृन्त कुचला या काटा जाता है तो पौधे की सम्पूर्ण लम्बाई में तत्काल उत्तेजक आवेग का पारेषण होता है। एक पर्ण का व्यवहार इस प्रकार का होता है—संवेदी प्रेरणा उसे इस प्रकार गिराती है कि भूमि से चिपक जाता है, तब केन्द्र के प्रतिवर्त प्रेरक आवेग का उत्पादन करते हैं, जिसके द्वारा चारों अधः पर्णवृन्त पार्श्वतः एक दूसरे की ओर पहुँचते हैं और सब पर्ण ऊपर की ओर बन्द होते हैं। इस द्रुत परिवर्तन से अधिक कुछ भी विस्मयकारी

नहीं है, जिसके कारण बड़े-बड़े चमकीले हरे भूमिखण्ड मृदा के धूमिल तल पर धूमिल, धूसर और अनाकर्षक पतली रेखाओं में परिवर्तित हो जाते हैं। कुर्सी के नीचे छिपे हुए बिल्ली के बच्चे की तरह, पौधा भी अदृश्य बनकर भय से मुक्त हो जाना चाहता है।

अध्याय २७

तंत्रिका-आवेग और संवेदना का नियंत्रण

हम किस प्रकार बाह्य संसार के संपर्क में आते हैं और कैसे बाह्य आघात का अनुभव भीतर होता है, यह बहुत ही रहस्यमय है। हमारी इन्द्रियाँ उन प्रतन्तुओं की तरह हैं, जो विभिन्न दिशाओं में विकीर्ण रहते हैं और बहुत प्रकार के संवादों को चुनते रहते हैं। इन सबका विश्लेषण करने पर पाया जाता है कि इनमें भिन्न तंत्रिका-वाहिनियों में आघात के प्रभाव का पारेषण होता है। ये आघात यांत्रिक चोट से अथवा वायु या ईथरीय तरंगों द्वारा दिये जाते हैं और हमें उनसे स्पर्श, ध्वनि और प्रकाश का बोध होता है। इन संवादों में एक गुप्त शक्ति होती है, जो हमारे शरीर में ऐसी संवेदना प्रेरित करती है जो या तो लाभप्रद होती है या हानिकर। संवेदना का गुण प्रायः टक्कर से होने वाली उद्दीपना की तीव्रता पर निर्भर रहता है। यह तो भली-भाँति ज्ञात है कि यदि धीरे से स्पर्श किया जाय, या प्रकाश, ऊष्मा और ध्वनि की मन्द उद्दीपना दी जाय, तो उससे जो संवेदना होती है उसे रुचिकर कहा जायगा और यदि इसी प्रकार की तीव्र उद्दीपना दी जाय तो वह अरुचिकर होगी और दुःखदायी भी।

प्रतिबोधी अंग तक जो उद्दीपना की तीव्रता पहुँचती है, वह दो कारकों पर निर्भर है—बाह्य उद्दीपना का बल और आवेग के संवाही वहन की अवस्था। स्वाभाविक दशा में अत्यधिक मन्द उद्दीपना एक ऐसा आवेग उत्पन्न करती है जो इतनी शक्तिहीन होती है कि प्रतिबोधन नहीं कर सकती। मध्यम उद्दीपना द्वारा जो अनुक्रियात्मक संवेदना होती है वह अरुचिकर नहीं होती, दूसरी ओर यदि उद्दीपना अत्यधिक तीव्र हो तो प्रतिक्रिया अत्यधिक कष्टदायी होती है।

इस प्रकार हमारी संवेदना केन्द्रीय अंग तक जाने वाले तंत्रिका-आवेग की तीव्रता द्वारा अभिरंजित होती है। हम एक ओर अपनी इन्द्रियों के अपूर्ण होने और दूसरी ओर अपनी अति-संवेद्यता के कारण मानवीय परिसीमाओं के अधीन हैं। ऐसी घटनाएँ होती हैं जो हमें ज्ञात नहीं हो पातीं, क्योंकि उद्दीपना इतनी मन्द होती है कि हमारी इन्द्रियों को जगा नहीं सकती और बाह्य आघात इतना तीव्र हो सकता

है कि जीवन पीड़ा से भर उठे। हम में बाह्य विश्व को परिवर्तित करने की शक्ति तो है नहीं, क्या तंत्रिका-आवेग को नियंत्रित करना सम्भव है, जिससे एक मामले में यह अत्यधिक बढ़ जाय और दूसरे में घट जाय या समाप्त हो जाय? क्या विज्ञान से ऐसी किसी संभावना की आशा है? यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न है।

तंत्रिका-परिपथ

तंत्रिका-आवेग के आपरिवर्तन और उसके परिणामस्वरूप होने वाली संवेदना की समस्या का हल आवेग के पारेषण के समय और उसे प्रभावित करने के साधन के आविष्कार पर निर्भर है, ताकि इसके द्वारा आवेग बढ़ाया या घटाया जा सके। यह कैसे हो?

तंत्रिका-परिपथ एक ऐसे वैद्युत परिपथ की तरह है जिसमें पारेषण-यंत्र और रिसीवर (Receiver) एक संवाही तन्तु से युक्त रहते हैं। इस संवाहक पर भेजे हुए अदृश्य विद्युत्-आवेग का पता गैलवनोमीटर की सुई के स्फुरण से चलता है। धारा के अत्यधिक मन्द होने पर किसी भी स्फुरण की अनुक्रिया नहीं होती; गैलवनोमीटर की अनुक्रिया प्रतिबोधित होती है और फिर आघात देने वाली वैद्युत शक्ति की तीव्रता के बढ़ने पर बढ़ती है। जब यह शक्ति अत्यधिक होती है, सुई की अनुक्रिया प्रचण्ड हो जाती है।

तंत्रिका-परिपथ में समानान्तर प्रभावों का प्रदर्शन अधिक ठोस रूप में गैलवनोमीटर की सुई के स्थान पर एक संकोची पेशी को रखकर किया जा सकता है। यही प्रतिबोधी मस्तिष्क के स्थान पर भी रखा जा सकता है। तंत्रिका के अन्त में एक अत्यधिक मन्द उद्दीपना देने पर एक ऐसा आवेग होता है जो अनुक्रिया की सीमा से नीचे रहता है। मध्यम तीव्रता की उद्दीपना द्वारा एक ऐसा आवेग होता है, जो मध्यम स्फुरण करता है। अत्यधिक शक्तिशाली उद्दीपना से पेशी का प्रचण्ड संकुचन होता है। अनुक्रिया की मात्रा द्वारा पारेषित तंत्रिका-आवेग का माप होता है।

तंत्रिका-नियंत्रण की समस्या

एक धातवीय तन्तु द्वारा विद्युत्-प्रेरणा का संवाहन और तंत्रिका द्वारा उत्तेजक आवेग का संवाहन, दोनों में अत्यधिक समानता है। धातु में संवाही शक्ति स्थिर होती है और विद्युत्-आवेग की तीव्रता विद्युत्-शक्ति की प्रदत्त तीव्रता पर निर्भर है। यदि तंत्रिका की संवाहन-शक्ति स्थिर होती तो तंत्रिका-आवेग की तीव्रता और उसके परिणाम में संवेदना पूर्णरूप से आघात करने वाली उद्दीपना की तीव्रता

पर निर्भर रहती। इस प्रकार संवेदना का आपरिवर्तन असम्भव होता। किन्तु सम्भव है कि तंत्रिका की संवाहन-शक्ति स्थिर न होकर परिवर्तनशील हो, जिससे आवेग की गति का रोध बढ़ाया-घटाया जा सकता हो। यदि यह अनुमान ठीक है, तब हम इस महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष पर पहुँच सकेंगे कि संवेदना स्वयं आपरिवर्तनशील है, चाहे बाह्य उद्दीपना कुछ भी हो।

इन दोनों रीतियों द्वारा तंत्रिका-आवेग के आपरिवर्तन का प्रयत्न किया जा सकता है। प्रथम, हम तंत्रिका के मार्ग को संवाही बना दें जिसमें मन्द उद्दीपना का आवेग संवेदित हो सके। द्वितीय, तंत्रिका को असंवाही बनाकर तीव्र आघात के कष्टकर आवेग का अवरोध कर सकते हैं।

निश्चेतक (Narcotic) द्वारा तंत्रिका असंवाही हो जाती है और इस प्रकार हम पीड़ा से बच सकते हैं। किन्तु ऐसा साहसिक कार्य चरम परिस्थितियों में ही किया जा सकता है, जैसे, जब हम शल्यचिकित्सक की छुरी के नीचे हों। यथार्थ जीवन में हमें अप्रत्याशित, अरुचिकर बातों का सामना करना ही पड़ता है। एक टेलीफोन वाले की यह सुविधा है कि जब संवाद अरुचिकर हो, वह उसे बन्द कर दे। राजनीतिज्ञों का सुविधानुसार बधिर हो जाना विख्यात है। किन्तु यह केवल कहने भर की बात है, क्योंकि अरुचिकर बातें चुभती तो रहती ही हैं। कम ही व्यक्ति हरबर्ट स्पेन्सर की तरह साहसिक होंगे जो मेहमान के अरुचिकर होने पर कानों में खुल्लम-खुल्ला डाट लगा लें।

तंत्रिका का आणविक पारेषण

तंत्रिका के संग्राही बाह्य अग्रभाग की उद्दीपना द्वारा जो रोमांच होता है, वह एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु तक भीतर की ओर आणविक विक्षोभ के रूप में संवाहक तन्तु पर भेजा जाता है। कल्पना कीजिये, बिलियर्ड के कुछ गेंद एक कतार में रखे हैं। प्रथम गेंद पर आघात देने से एक के बाद दूसरे पर उसका प्रभाव जायगा, जब तक कि अन्तिम गेंद उस आघात को स्वीकृत करने के कारण पृथक् नहीं हो जाता। कोई दूसरा गेंद अपने स्थान से हटता नहीं दिखाई पड़ता। इसी प्रकार तंत्रिका का प्रत्येक कण यद्यपि अपने स्थान पर बना रहता है, किन्तु आवेग का संवाहन करता रहता है।

यह स्पष्ट है कि संवहन आवेग भेजने वाले कणों की चरता पर निर्भर है। कल्पना कीजिये, तंत्रिका के समान उद्दीपना में दो क्रमिक पारेषण हों। यदि किसी उपाय से कणों की चरता बढ़ायी जा सके तो आवेग द्रुत हो जायगा और उसकी

तीव्रता बढ़ जायगी। इसके विपरीत चरता के कम होने पर कणों द्वारा संवहन क्षीण हो जायगा और परिशमित भी हो सकता है। कणों की चरता और संवहन-शक्ति कार्यान्वित होने या न होने से बढ़ती या घटती है। उद्दीपना-रहित तंत्रिका निष्क्रिय और अचेत रहती है ; किन्तु उद्दीपना देने पर यह ऊर्जामय हो जाती है और साथ ही अत्यधिक संवाही भी। विचार द्वारा उद्दीपना हमारी विचार-शक्ति को बढ़ाती है।

इस प्रकार संवेदना करने वाले तंत्रिका-आवेग की तीव्रता न केवल उद्दीपना की शक्ति द्वारा निश्चित होती है वरन् तंत्रिका भी कणों की परिवर्ती दशा द्वारा संशोधित होती है।

तंत्रिका-आवेग पर आणविक प्रवृत्ति का प्रभाव

अधिक तर्क-वितर्क करने पर हम आवेग के आणविक विक्षोभ के प्रसारण से विपरीत आणविक प्रवृत्तियों के अंतर्गत आवेग की वृद्धि या अवरोध तक पहुँच जाते हैं। गेंदों की कतार के स्थान पर अब हम पुस्तकों की कतार की कल्पना करें। दाहिने छोर की अन्तिम पुस्तक पर यदि हम आघात करें तो वह बायीं ओर गिरेगी, अपने निकट वाली पुस्तक को भी धक्का देकर गिरायेगी और इस प्रकार क्रम से सब पुस्तकें लुढ़क जायँगी। यदि पुस्तकों को बायीं ओर झुकाकर रखा जाय तब उनका विन्यास ऐसा होगा कि एक मन्दतर आघात द्वारा वे उलट-पलट जायँगी और आवेग की गति को बढ़ा देंगी। विपरीत दिशा में उनका झुकना, उनकी पूर्व प्रवृत्ति को ऐसा कर देगा कि आवेग घट जायगा या समाप्त हो जायगा।

क्या तंत्रिका में विपरीत आणविक विन्यास लाना सम्भव है, जिससे एक स्थान पर अधिसंवाही उद्दीपना का परिषण दक्षता से होगा और वह संवेदक होगा और दूसरे स्थान पर एक प्रचण्ड उद्दीपना द्वारा एक तीव्र तरंग ले जाते समय समाप्त हो जायगा, और इस प्रकार लुप्त हो जायगा ? इन सैद्धान्तिक कल्पनाओं का अब संपरीक्षण होना चाहिये।

तंत्रिका के परमाणुओं को आवेग के जाने के अनुकूल होने के लिए बाध्य करना होगा। इसके लिए एक ध्रुवीय विद्युत्-शक्ति की आवश्यकता है। विद्युत्-धारा की ध्रुवण (Polarising) क्रिया इस तथ्य द्वारा दिखायी गयी है कि जब जल से भरी एक नाँद के भीतर वह बायीं ओर से दाहिनी ओर जाती है तो उद्जन अणु दाहिनी ओर मुड़ जाते हैं और जब धारा को उलट दिया जाता है तब वे बायीं ओर मुड़ जाते हैं। इसी प्रकार तंत्रिका के परमाणु-विद्युत्-धारा के जाने के समय

अनस्थापित किये जा सकते हैं, जिससे वे तंत्रिका-आवेग को सुविधाजनक बनाने या विरोध करने के लिए पूर्व प्रवृत्त हो सकें।

इनके परिणाम अत्यन्त विस्मयकारी हैं। वनस्पति-तंत्रिका पर एक अनुकूल आणविक विन्यास देने पर एक प्रतिबोधन-रहित मन्द उद्दीपना अब अत्यधिक बृहत् अनुक्रिया दिखाती है। इसके विपरीत एक प्रचण्ड उद्दीपना द्वारा उत्पन्न तीव्र उत्तेजना तंत्रिका-ऊतक के विपरीत आणविक विन्यास द्वारा पारेषण के समय रुक जाती है। अब पौधा आघात की ओर ध्यान नहीं देता।

इसकी पराकाष्ठा तब हुई जब मैं समान विधि द्वारा प्राणी-तंत्रिका को इच्छानुसार अधिसंवाही या असंवाही गुण देने में सफल हुआ। इस प्रकार तंत्रिका के एक विशिष्ट आणविक विन्यास में संपरीक्ष्य मेढक ने एक ऐसी उद्दीपना का, जो अब तक उसके प्रतिबोधन के अन्तर्गत नहीं थी, प्रत्युत्तर दिया। विपरीत विन्यास में, लवण (Na Cl) द्वारा एक तीव्र उद्दीपना देने पर जो प्रचण्ड अंग-संकोचन हुआ था, वह तत्काल रुक गया, जैसे कोई जादू हो गया हो।[1]

इच्छा द्वारा निर्देशक नियंत्रण की शक्ति

पूर्वगामी संपरीक्षणों द्वारा यह प्रदर्शित किया गया है कि दो विपरीत आणविक विन्यासों को एक सतत विद्युत्-धारा की ध्रुवीय क्रिया द्वारा तंत्रिका में प्रेरित किया जा सकता है। इससे तंत्रिका-आवेग के गमन को बढ़ाया या रोका जा सकता है। अब स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि शरीर की तंत्रिका पर इच्छा (Will) की क्रिया की भी यही प्रकृति है या नहीं। अब तक सब शारीरिक कार्यों पर नियंत्रण करने की हमारी इच्छाशक्ति पर पूरा वैज्ञानिक ध्यान नहीं दिया गया है। उदाहरण के लिए, पेशी-प्रणाली को ऐच्छिक या अनैच्छिक माना गया है। अनैच्छिक को नियंत्रण के परे माना गया है। फिर भी मैं जानता हूँ कि अनैच्छिक पेशियों को भी मनुष्य की इच्छा द्वारा नियंत्रित किया गया है; इतना कि हृदय का स्वतः स्पन्दन बन्द हो गया और फिर उसे पुनर्जीवित किया गया। मैंने इच्छा से आहार-नलिका के सामान्य और विपरीत क्रमिक संकुचन का प्रदर्शन एक्स-किरण-चित्र द्वारा होते देखा है। बहुत कम लोग सोच पाते हैं कि इच्छाशक्ति क्रिया और संकुचन द्वारा कितनी बढ़ जाती है। इसमें संदेह नहीं है कि इच्छा की आन्तरिक शक्ति द्वारा तंत्रिकाओं में पूर्व प्रवृत्ति

---

१. 'The Influence of Homodromous and Heterodromous Current on Transmission of Excitation in Plant and Animal' *Proccedings of Royal Society*, B. Vol. 88 1974

कराकर तंत्रिका-आवेग को बढ़ाया या बन्द किया जा सकता है। प्रबोधन को बढ़ाने में ध्यान और आशा का प्रभाव तो ज्ञात है, और सुझाव की शक्ति भी। निम्नोक्त घटना से तंत्रिकाओं के नियंत्रण में इच्छा के प्रभाव का पता चलेगा।

मैं कुमायूं की ओर हिमालय की तराई की सीमा पर एक अभियान में गया था। ग्रामीण भयग्रस्त थे, क्योंकि एक मनुष्यभक्षी शेरनी वन में आ गयी थी और अब तक वह असंख्य जानें ले चुकी थी। वन की हत्यारिन दिन के प्रकाश में भी आकर उनमें से किसी एक को आराम से अपना शिकार बनाती और उठा ले जाती थी। जब मुक्ति की सब आशा लुप्त हो गयी तब ग्रामीणों ने एक सामान्य कृषक कालूसिंह से, जिसके पास एक तोड़दार बन्दूक थी, प्रार्थना की। इस बाबा आदम के जमाने की बन्दूक लेकर और अपने साथी ग्रामीणों की प्रार्थना की गूंज अपने कानों में भरे हुए कालूसिंह इस संकटमय साहसिक कार्य के लिए चल पड़ा।

शेरनी ने एक बैल को मार डाला था और उसे एक खेत में छोड़ दिया था, कालूसिंह वहाँ उसके लौट आने की प्रतीक्षा करता रहा। वहाँ आस-पास कोई वृक्ष नहीं था, केवल एक नीची झाड़ी थी, उसी के पीछे वह छिपा हुआ लेटा रहा। घंटों प्रतीक्षा करने के बाद जब सूर्यास्त हो रहा था, वह एकाएक अपने से छः फुट दूरी पर शेरनी की छाया देखकर चौंक पड़ा। उसने अपनी बन्दूक उठाकर निशाना लेना चाहा, किन्तु असफल रहा, क्योंकि उसका हाथ अनियंत्रित भय से काँप रहा था।

कालूसिंह ने बाद में मुझसे बताया कि किस प्रकार उसने अपनी मृत्यु के भय पर विजय पायी। उसने स्वयं अपने आपसे कहा: 'कालूसिंह, कालूसिंह, तुम्हें यहाँ किसने भेजा? क्या ग्रामवासियों ने तुम्हारे ऊपर विश्वास नहीं किया था? तब मैं छिपा न रह सका और उठ खड़ा हुआ, और तभी एक आश्चर्यजनक घटना घटी। सब कम्पन समाप्त हो गया, और मैं फौलाद की तरह कठोर हो गया। शेरनी तप्त आँखों से पूँछ फटकारती हुई छलाँग मारने के लिए झुकी हुई थी, केवल छः फुट का फासला हमारे बीच था। उसने छलाँग मारी और इधर मेरी बन्दूक ठीक उसी वक्त छूटी, शेरनी अपना निशाना चूक गयी और मेरे पास मृत होकर गिर गयी।"

परिस्थितियों पर विजयी मनुष्य

अतः संवेदना को निश्चित करने में इच्छा की आन्तरिक उद्दीपना बाह्य आघात के ही समान आवश्यक है और इस प्रकार तंत्रिका के आन्तरिक नियंत्रण द्वारा परिणामी संवेदना के स्वरूप में अत्यधिक सुधार होता है। इसलिए बाह्य परिस्थितियाँ इतनी अधिक प्रभावी नहीं हैं। मनुष्य भाग्य के हाथ में एक निष्क्रिय

खिलौना मात्र नहीं है। एक ऐसी शक्ति उसमें छिपी हुई है, जो उसे उसके आस-पास के विद्वेषी वातावरण के भय से बचायेगी। जिन वाहिनियों से बाह्य संसार का परिचय उसे होता है, उन्हें वह स्वेच्छापूर्वक विस्तृत करे या बन्द, यह शक्ति उसमें रहेगी। इस प्रकार अब तक उसके लिए जो अस्पष्ट संवाद अप्रतिबोधित थे, उन्हें जानना उसके लिए सम्भव हो जायगा या वह अपने आप में सिमट जायगा, जिससे उसके आन्तरिक राज्य में विश्व का कर्कश स्वर और उसका कोलाहल उसे प्रभावित नहीं कर सकेगा।

वनस्पति से प्राणी तक जीवन के आरोह के लम्बे सोपान का हमने अनुगमन किया। प्राणोत्सर्ग करने वालों की उच्च आध्यात्मिक विजय में, साधु के आह्लाद में, हम उस उच्चतर और उच्चतम विकास-प्रक्रिया की अभिव्यक्ति पाते हैं, जिसके द्वारा जीवन पर्यावरण की सब परिस्थितियों से ऊपर और परे उठ जाता है, और उन पर नियंत्रण करने के लिए अपने को दृढ़ बनाता है।

पदार्थ की पुलक, जीवन की धड़कन, वृद्धि का स्पन्दन, तंत्रिका में प्रवहमान प्रेरणा और परिणामी संवेदना, ये कितनी भिन्न हैं, फिर भी कितनी समान। यह कितना आश्चर्यजनक है कि चेतनामय पदार्थ में उत्तेजना का कम्पन केवल पारेषित नहीं होता, बल्कि रूपान्तरित और परावर्तित भी होता है, उसी प्रकार जैसे दर्पण में छाया। जीवन के भिन्न तलों पर यह संवेदना, स्नेह, विचार और गति के रूप में प्रतिबिम्बित है। इनमें से कौन अधिक सत्य है—भौतिक शरीर, या इससे स्वतंत्र छाया? इनमें कौन अक्षय है और कौन मृत्यु की पहुँच के परे है?

अतीत में बहुत-से राष्ट्रों का उदय हुआ और उन्होंने विश्व-साम्राज्य स्थापित किया। उन लौकिक शक्ति धारण करने वाले राजवंशों के स्मारक केवल कुछ मिट्टी में दबे हुए टुकड़े हैं। फिर भी, एक ऐसा तत्व भी है जो पदार्थ में अवतरित होता है, किन्तु उसके बाद रूपान्तर और स्पष्ट विनाश के परे हो जाता है। यह विचार से उत्पन्न जाज्वल्यमान ज्योति है, जो युग-युग से पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रज्वलित होती चली आ रही है।

पदार्थ में नहीं, अपितु विचार में, स्वत्व में नहीं और उपलब्धि में भी नहीं, अपितु आदर्शों में अमरत्व के बीज पाये जा सकते हैं।

परिशिष्ट

बोस संस्थान

जीवन तरंग[1]

अपने अनुसन्धानों का अनुसरण करते हुए मैं अनजाने, भौतिकी और दैहिकी के सीमा-क्षेत्र में पहुँच गया और जीव एवं निर्जीव के प्रदेशों के बीच रेखाओं को लुप्त होते और उनके बीच संस्पर्श के चिह्नों को उभरते हुए देखकर विस्मित हो गया। अकार्बनिक पदार्थ निष्क्रिय नहीं पाया गया। यह उन अगणित शक्तियों की, जो उस पर क्रियाशील थीं, क्रिया का कम्पन भी था। धातु, वनस्पति और प्राणी, सब एक समान अभिक्रिया द्वारा एक ही नियम के अधीन थे। वे सब थकावट और अवसाद एवं साथ-साथ पुनरुन्नयन और उत्कर्ष की सम्भावना का भी प्रदर्शन करते थे, और उस स्थायी अनुक्रियाहीनता का भी जो मृत्यु से सम्बन्धित है।

जायमान विज्ञान की अनेक और सदा नूतन समस्याओं का और अधिक एवं विस्तृत अनुसन्धान, जिसमें जीव और निर्जीव दोनों ही सम्मिलित हैं, मेरी इस संस्था के, जिसका मैं आज उद्घाटन कर रहा हूँ, ध्येय हैं। यह समय कोई नया कार्य प्रारम्भ करने के अनुपयुक्त माना जा सकता है, जब मानव-नियति पर घोर विपत्ति की छाया मँडरा रही है। किन्तु ऐसे ही संकट में मनुष्य सत्य से असत्य का विभेद करना सीखते हैं, जिसमें वे सत्य का, जो शाश्वत है, अनुसरण करने में अपने आप को समर्पित कर सकें।

दो आदर्श

इस समय देश के सामने दो आदर्श हैं जो सम्पूरक हैं, न कि प्रतिरोधी। प्रथम है, सभी मामलों में सफलता प्राप्त करने, भौतिक दक्षता पाने और व्यक्तिगत आकांक्षा को सन्तुष्ट करने का वैयक्तिक आदर्श। ये आवश्यक हैं, लेकिन केवल ये स्वयं देश का जीवन सुनिश्चित नहीं करते। इन भौतिक क्रियाकलापों का परिणाम हुआ है, अपार शक्ति और धन की प्राप्ति। विज्ञान के साम्राज्य में भी परिज्ञान का

---

१. 'बोस-संस्थान' के समर्पण-उद्घाटन-अभिभाषण से उद्धृत, ३० नवम्बर १९१७।

लाभ उठाने के लिए एक दौड़-भाग मची, जो प्रायः उन्नति के लिए न हो कर विध्वंस के लिए थी। संयम की किसी शक्ति के अभाव में सभ्यता आज विनाश के कगार पर अस्थिरावस्था में डगमगाती खड़ी है।

इस उद्देश्यरहित दौड़-भाग से, जिसका अन्त विनाश होता है, बचने के लिए एक सम्पूरक आदर्श की आवश्यकता है। मनुष्य ने किसी अतृप्त आकांक्षा के प्रलोभन और उसकी उत्तेजना का अनुगमन किया है और एक क्षण के लिए भी रुककर उस चरम लक्ष्य के बारे में नहीं सोचा जिसे अस्थायी प्रोत्साहन के रूप में सफलता प्राप्त होती। वह भूल गया कि जीवन की योजना में पारस्परिक सहायता और सहयोग स्पर्धा से कहीं अधिक शक्तिशाली है।

फिर भी कुछ ऐसे भी लोग हुए हैं जो तात्कालिक मनोहारी पुरस्कार से अलग रहकर निष्क्रिय त्याग द्वारा नहीं अपितु सक्रिय संघर्ष द्वारा जीवन के उच्चतम आदर्श को प्राप्त करने का प्रयास करते रहे हैं। दुर्बल व्यक्ति जो संघर्ष से विमुख रहता है, कुछ भी प्राप्त नहीं करता और इसलिए उसके पास त्याग करने के लिए कुछ नहीं होता। केवल वही व्यक्ति जिसने संघर्ष कर विजय पायी है, अपने विजयी अनुभवों के फल को देकर विश्व को समृद्ध कर सकता है।

मानवता की उच्चतम पुकार के प्रत्युत्तर में, उसे सम्पन्न बनाने और आत्मत्याग का आदर्श-एक अन्य पूरक आदर्श है। इसकी प्रेरणा व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा में नहीं, अपितु समस्त क्षुद्रता को मिटाने और उस अज्ञान का उन्मूलन करने में पायी जाती है, जो किसी की हानि करके क्रय किये गये लाभ को उपलब्धि समझे। यह तो मुझे ज्ञात है कि जब तक ध्यानापकर्षण के सब कारण लुप्त नहीं होते और मन शान्त नहीं होता, सत्य का दर्शन नहीं होता। मेरे जो थोड़े से शिष्य हैं उनसे मैं अनुरोध करूंगा कि वे सबल चरित्र और दृढ़ प्रयोजन से ज्ञान पर विजय प्राप्त करने और सत्य का साक्षात् करने के लिए अनन्त संघर्ष में आजीवन लगें।

ज्ञान की उन्नति और प्रसार

मेरी प्रयोगशाला में अब तक पदार्थ की अनुक्रिया पर जो कार्य किये गये हैं और वनस्पति-जीवन में जो अप्रत्याशित रहस्योद्घाटन हुए हैं, वे उच्चतम प्राणि-जीवन के आश्चर्यों को भी पार कर गये हैं। इन सबका परिणाम यह हुआ है कि भौतिकी, दैहिकी, आयुर्विज्ञान, कृषिविज्ञान और मनोविज्ञान में भी अन्वेषण का विस्तृत क्षेत्र उन्मुक्त हो गया है। ये अन्वेषण भौतिकीविज्ञों और दैहिकीविज्ञों के प्रथागत अन्वेषणों से कहीं अधिक विस्तृत हैं, क्योंकि इन लोगों को जिन रुचियों और अभिवृत्तियों की अपेक्षा

रहती है, वे अब तक उनके बीच न्यूनाधिक विभक्त रहीं हैं। प्रकृति के अध्ययन में एक द्वैत दृष्टिकोण—भौतिक अध्ययनों के साथ जैविक विचार की और जैविक अध्ययनों के साथ भौतिक विचार की प्रत्यावर्तित किन्तु लयबद्ध रूप में एकीकृत पारस्परिक क्रिया की आवश्यकता है।

भविष्य का वैज्ञानिक अपने भौतिकी के नूतन ज्ञान और "जीवन की संभावना तथा शक्ति से कम्पित" अकार्बनिक विश्व की पूर्णतर अवधारणा से, कार्य और विचार में दुगुनी शक्ति से कार्यशील होगा। इस प्रकार वह अपने पुरातन ज्ञान को महीन छलनी से छानेगा और उसका नयी उमंग से अधिक सूक्ष्म यंत्रों द्वारा अन्वेषण करेगा। उसकी इन यंत्रों की पकड़ तत्क्षण अधिक जानदार होगी, अधिक गतिक और अधिक व्यापक और अधिक एकीकृत होगी।

इस संस्था का मुख्य ध्येय है—विज्ञान की उन्नति और ज्ञान का प्रसार। इस ज्ञान-गृह के अनेक कक्षों में से सबसे बड़े कक्ष, व्याख्यान-कक्ष में हम उपस्थित हैं। इस बृहत् सभा-भवन को बनाने में मेरा विचार स्थायी रूप से ज्ञान की वृद्धि को जनता में प्रसारित करने का रहा है।

इसके लिए कोई शैक्षिक परिसीमा नहीं है। अतः यह सभी जातियों और भाषाओं, नर-नारियों और भविष्य के सब समयों के लिए है। अभी इन पन्द्रह सौ श्रोताओं के समक्ष जो भाषण दिये जायेंगे, उनमें जनता के सामने नये आविष्कारों का पहली बार प्रदर्शन होगा। इस प्रकार ज्ञान की वृद्धि और प्रसारण दोनों में सक्रिय भाग लेकर हम एक श्रेष्ठ ज्ञान-संस्था के उच्चतम आदर्श का सातत्य बनाये रखेंगे।

मेरी एक और इच्छा है; जहाँ तक इस सीमित स्थान में सम्भव होगा, इस संस्था की सभी सुविधाएँ, सभी देशों के कार्यकर्ताओं को उपलब्ध होनी चाहिये। इस कार्य में मैं अपने देश की परम्पराओं पर चलने का प्रयास कर रहा हूँ, जिन्होंने पचीस शताब्दी पहले भी शिक्षा की अपनी प्राचीन संस्थाओं—नालन्दा और तक्षशिला में विश्व के विभिन्न भागों से आने वाले विद्वानों का स्वागत किया।

दृष्टिकोण

इस विस्तृत दृष्टिकोण द्वारा हम न केवल प्राचीन परम्पराओं को बनाये रखेंगे, अपितु विश्व की सेवा उदात्ततर ढंग से कर सकेंगे। जीवन की समान तरंगों के अनुभव तथा शिव, सत्य और सुन्दर के प्रति समान प्रेम का अनुभव करने में हम इसके साथ होंगे।

इस संस्था में, जीवन की इस अध्ययनशाला और उद्यान में, कला का अधिकार विस्मृत नहीं किया गया है, क्योंकि इस कक्ष में नींव से शिखर तक, फर्श से छत तक, कलाकार हमारे साथ कार्यशील रहा है। उस तोरण के आगे प्रयोगशाला अप्रत्यक्ष रूप से उद्यान में मिल जाती है, जो जीवन के अध्ययन के लिए यथार्थ प्रयोगशाला है। वहाँ लताएँ, पौधे और वृक्ष अपने स्वाभाविक पर्यावरण-सूर्यप्रकाश, वायु और नक्षत्रखचित अन्तरिक्ष के वितान के नीचे अर्धरात्रि के अति शीत से प्रभावित होते हैं। और भी परिवेश हैं, जहाँ वे विभिन्न प्रकार के प्रकाश से लेकर अदृश्य किरणों तक तथा विद्युत्-प्रभृति वातावरण की वर्णीय (Chromatic) क्रिया से प्रभावित होंगे। वे सर्वत्र स्वतःलेख द्वारा अपने अनुभव का इतिहास लिखेंगे। वृक्षों की छाया में अपने अवलोकन के उच्च बिन्दु से छात्र जीवन का यह दृश्य देखेगा। सब ध्यानापकर्षणों से दूर, वह प्रकृति के स्वर में अपना स्वर मिलायेगा; अन्धकार का आवरण उठ जायगा और वह क्रमशः देखेगा कि किस प्रकार बृहत् जीवन-जगत् में ऊपर से दिखाई पड़ने वाली असमानता की अपेक्षा संगठन कितना अधिक है। विरोध में उसे सामंजस्य का आभास होगा।

अनेक पिछले वर्षों से, मेरे जाग्रत जीवन के चारों ओर ताना-बाना बुनने वाले ये ही मेरे स्वप्न हैं। दृष्टिकोण अनन्त हैं क्योंकि उद्देश्य अपरिमित हैं।

किसी एक व्यक्ति अथवा निधि के माध्यम से संपूर्ण सफलता नहीं मिल सकती, अनेक व्यक्तियों और अनेक निधियों के सहयोग की आवश्यकता है, साथ ही पूर्ण विस्तार की सम्भावना विशाल सम्पत्ति पर ही निर्भर रहेगी। किन्तु प्रारम्भ तो करना ही चाहिये और इस संस्था की नींव का यही आधार है।

मैं कुछ लेकर नहीं आया और न कुछ लेकर जाना है। यदि इस अन्तराल में कुछ प्राप्त कर सकूँ, तो यह वस्तुतः मेरे लिए गौरव की बात होगी। जो कुछ मेरे पास है वह मैं समर्पित करूँगा; और उसने (पत्नी) भी, जिसने मेरे साथ सब संघर्षों और कठिनाइयों में जो कुछ भी सहना पड़ा था, सहा, जो कुछ उसके पास है, इसी उद्देश्य से समर्पित करने की इच्छा प्रकट की है।

व्यापक संश्लेषण

आधुनिक विज्ञान में अत्यधिक विशेषज्ञता के कारण इस आधारभूत तथ्य को भूल जाने का खतरा पैदा हो गया है कि केवल एक ही सत्य, एक ही विज्ञान हो सकता है, जिसमें ज्ञान की सब शाखाएँ सम्मिलित हैं। प्रकृति में घटित होने वाली घटनाएँ कितनी अव्यवस्थित दिखती हैं? क्या प्रकृति वह ब्रह्माण्ड है जिसमें एक दिन

मानव-मस्तिष्क क्रम-व्यवस्था और नियम के समरूप प्रयाण को समझ पायेगा ? भारत अपने स्वभावानुसार एकता के आदर्श को समझने और घटनाप्रधान विश्व-में व्यवस्थित संसृति को देखने के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है। विचार की यही प्रवृत्ति मुझे अनजाने ही विभिन्न विज्ञानों के सीमान्तों पर ले गयी और अकार्बनिक संसार के अन्वेषण से संघटित जीवन और उसके बहुविध कार्यकलापों—वृद्धि, गति और संवेदन—के अन्वेषणों तक सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक के भव्य सतत फेर-बदल करते हुए उसने मेरे कार्य के पथ का निर्माण किया। इस प्रकार भौतिकी, दैहिकी और मनोविज्ञान की रेखाएँ एकस्थ होकर आपस में मिल जाती हैं। और यहाँ पर वे लोग एकत्र होंगे जिन्हें अनेकत्व में एकत्व की खोज की ओर प्रवृत्त होना है।

हमारे नवीनतम प्रकाशन

भारतीय पक्षी
—सुरेश सिंह २०-००

विज्ञानका दर्शन
—अजित कुमार सिन्हा ६-००

समाचार संकलन और लेखन
—नन्दकिशोर त्रिखा ८-००

पाश्चात्य जीवनी-कला
—डॉ० सरला शुक्ल ५-००

वाष्पचालित तथा अन्य इंजन
—ओंकारनाथ शर्मा १७-००

नर और नारी (परिवार-नियोजन)
—डॉ० सुरेन्द्रनाथ गुप्त ८-००

धर्मशास्त्रका इतिहास, भाग-४
—पा० वा० काणे १८-००

धर्मशास्त्रका इतिहास, भाग-५
—पा० वा० काणे १८-००

धर्मशास्त्र का इतिहास,
(पाँचों भाग की शब्दानुक्रमणिका)
२-५०